मध्यकालीन नारी भावना के परिप्रेक्ष्य में संत कवयित्रियों का योगदान

(शोध प्रबन्ध)

निर्देशिका

डा० शैल पाण्डेय

रीडर, हिन्दी विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

शोध कर्त्री

आभा त्रिपाठी
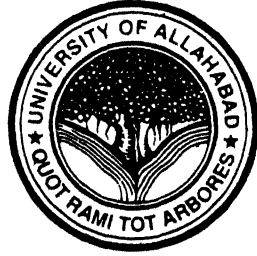
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

नवम्बर, १९९८

विषय सूची

भूमिका

मनुष्य एक चेतना शील प्राणी है। मनुष्य के समस्त कार्य चेतन एव अचेतन जगत के तत्वो से अनुप्राणित है। यही चेतना जागतिक कार्य व्यापारो से ऊपर उठकर परम चेतन तत्व से अपनी सम्बद्धता स्वीकार करने की स्थिति मे स्वय परम चेतन हो जाती है। ससीम से असीम होने की यहीं साधना भारतीय मनीषा का अन्त प्राण है। सन्तो ने भी अपनी चेतना को यही तात्विक ऊँचाई दी। इन्हीं सन्तो के सरल, निस्पृह जीवन ने हिन्दी साहित्य की धारा को नया मोड दिया, जिसके प्रेम, भक्ति, सर्वसमभाव आदि गुणो से रसाप्लावित हो जन- जीवन नवीन स्फूर्ति एव चेतना से भर उठा, एव इस वेगवान धारा मे उसके समस्त कल्मष, समस्त विकार चूर-चूर हो कर बह गये। सत मार्ग का पहला सूत्र वाक्य ही है अहकार का नाश। यही अहकार (कर्त्ता स्वरूप मै) समस्त दोषो का कारण स्वरूप है। स्वय के दोषो, दुर्बलताओ को दूर करके दृढ विश्वास, प्रेम एव हृदय की शुद्धता के द्वारा ईश्वर की प्राप्ति मनुष्य के अत्यन्त निकट उसके शरीर मे निहित अन्त करण मे ही सम्भव है, यह तत्कालीन अनेक मत-मतान्तरो, बाह्यचारो मे उलझे जनमानस के लिये सर्वथा नवीन अनुभव था। सम्पूर्ण भारत मे पुरुष सन्तों की तरह स्त्री सन्तो की भी श्रेष्ठ परम्परा रही है, जिन्होने अपने चारित्रिक गुणो से न केवल स्वय को उच्च भावभूमि पर प्रतिष्ठित किया वरन् समाज का मार्गदर्शन करते हुये उसकी बर्हिमुखी प्रवृत्तियो को अन्तर्मुखी करने का प्रयास किया।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, "मध्यकालीन नारी भावना के परिप्रेक्ष्य मे सत कवयित्रियो का योगदान" मे मध्यकाल से पूर्व नारी की स्थिति एव उसके प्रति समाज का दृष्टिकोण, मध्यकाल मे नारी की स्थिति एव उसके प्रति सामाजिक दृष्टिकोण एव सन्त परम्परा मे उसके प्रति सन्तो के दृष्टिकोण पर विचार करते हुये सत कवयित्रियो के व्यक्तिव एव कृतित्व पर विचार किया गया है। विषय सर्वथा नवीन होते हुये मेरी मनोवृत्ति के भी अनुकूल है, क्योकि परिवार के धार्मिक परिवेश के कारण बाल्यकाल से ही मेरी रूचि धार्मिक साहित्य मे थी। पुन शोध के लिये जब मुझे यह रोचक विषय दिया गया तो जैसे मेरी चिर वाछित अभिलाषा को विराम मिल गया। इस शोध प्रबन्ध की सकल्पना पूर्णतया मौलिक है, इसमे नारी के प्रति दृष्टिकोण को विविध कालो के आयाम मे विभक्त करते हुये विशाल विचार राशि को एक लघु फलक पर चित्रित करने का प्रयास किया गया है, यह चित्रण कितना सही है, इसका मूल्याकन तो गुरुजन ही कर सकते है, अल्पज्ञान की सीमा मे बधी मै क्या कह सकती हूँ।

शोध प्रबन्ध को पॉच अध्यायो मे विभक्त किया गया है। इसके साथ एक परिशिष्ट भी दिया गया है। प्रथम अध्याय मे प्राचीन काल मे नारी के प्रति दृष्टिकोण एव उसकी स्थिति को कालानुसार वैदिक युग, ब्राह्मण-उपनिषद् युग, स्मृति-पुराण-बौद्ध युग में विश्लेषित किया गया है।

द्वितीय अध्याय मे मध्यकाल मे नारी की स्थिति एव उसके प्रति दृष्टिकोण का राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक बिन्दुओ के माध्यम से आकलन किया गया है।

तृतीय अध्याय मे सत शब्द, सतपरम्परा सत परम्परा मे नारी के प्रति दृष्टिकोण और सन्तो की नारी निन्दा के कारणो का विश्लेषण किया गया है।

चतुर्थ अध्याय मे हिन्दीतर प्रदेश की सत कवयित्रियो के व्यक्तित्व, कृतित्व एव उनके योगदान को निरूपित किया गया है। इसमे कश्मीर की लालदेद एव देवी रूप भवानी, महाराष्ट्र की मुक्ताबाई, बहिणाबाई बयाबाई, महदायिसा, जनाबाई आन्ध्र प्रदेश की मल्ला एव गुजरात की इन्द्रामती पर विचार किया गया है।

पञ्चम अध्याय मे हिन्दी प्रदेश की सत कवयित्रियो, सहजोबाई, दयाबाई, बावरी साहिबा, उमा और पार्वती के व्यक्तित्व एव कृतित्व का मूल्याकन करने का प्रयास किया गया है। हिन्दी प्रदेश की सत कवयित्रियो के साथ मीराबाई का मूल्याकन नहीं किया गया है। मीराँबाई हिन्दी आलोचना मे स्वीकृत सत शब्द की परिधि मे नहीं आती हैं। वे तो गिरधर नागर के गुण गाने वाली, पति रूप मे उनका वरण करने वाली, सगुणोपासक भक्त है, यद्यपि उनके नाम से प्रचलित कुछ पदो मे सत मत मे प्रयुक्त शब्दावली परिलक्षित होती है, जिनके कारण मीराबाई को भी सतमतावलम्बिनी कहने की प्रवृत्ति बनती दिखती है, किन्तु ये पद प्रामाणिक न होकर प्रक्षिप्त माने जाते है। अत इन प्रक्षिप्त पदो के आधार पर मीरा को सत मतावलम्बिनी सिद्ध नहीं किया जा सकता है। इसके साथ ही एक परिशिष्ट भी दिया गया है, जिनमे उन सत कवयित्रियो का उल्लेख किया गया है, जिनके बारे मे वृहद् सूचना का अभाव है। इस तरह से पॉच अध्यायो मे विभक्त उक्त शोध प्रबन्ध नारी भावना के परिप्रेक्ष्य मे इन हिन्दी एव हिन्दीतर प्रदेश की सत कवयित्रियो के योगदान को लक्ष्य करके निरूपित किया गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध मे हिन्दीतर प्रदेश की सत कवयित्रियो के मूल्याकन मे विभिन्न भाषा–भाषी होने के कारण अनेक कठिनाइयो का सामना करना पडा। विषय से सम्बन्धित प्रभूत सामग्री अगेजी भाषा मे मुझे मिली तथापि अनुवादो के जरिये, जिनमें मुझे गुरुजनों का विशेष सहयोग प्राप्त हुआ, उक्त समस्या को सुलझा लिया गया। विद्वान आचार्य डा० रमाशकर मिश्र, विभागाध्यक्ष, सस्कृत विभाग मुनीश्वरदत्त महाविद्यालय, प्रतापगढ के प्रति मैं अपना आभार किन शब्दों में व्यक्त करूँ, जिन्होंने सस्कृत मे अनूदित लालदेद की "लल्लेश्वरी वाक्यानि" का हिन्दी अनुवाद सशोधित करने मे मेरा मार्गदर्शन किया। उनके प्रति आभार व्यक्त करना अत्यत समीचीन लगता है क्योंकि "लल्लेश्वरी वाक्यानि" के निहितार्थ का बोध इसी कारण हो सका, जिससे वेदान्त का गूढ सदेश जो लोक भाषा काश्मीरी मे था, प्रकाशमान हो सका।

विदुषी निर्देशिका डा० शैल पाण्डेय, रीडर, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद के प्रति आभार शब्दो मे व्यक्त किया ही नहीं जा सकता हे। उनके प्रति आभार व्यक्त करना मात्र औपचारिकता होगी। उनकी स्वय की सत प्रवृत्ति ही यह गुरुतर कार्य सम्पन्न करा सकी है। उनके सानिध्य में रहकर यह शोध कार्य करने मे मूझे उनके सात्विक गुणों से बडी प्रेरणा मिली, तथा उनकी आध्यात्मिक भावभूमि के सस्पर्श से इस दिशा में आलोक मिला, जो अपतिम है।

उक्त शोध कार्य को पूर्ण करने मे विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की भी महत्ती भूमिका है, जिसकी तीन वर्ष तक कनिष्ठ अनुसधान छात्रवृत्ति एव दो वर्ष तक वरिष्ठ अनुसधान छात्रवृत्ति प्राप्त होने से उक्त शोधकार्य सुचारू रूप से सम्पन्न हो सका है।

उक्त शोध कार्य को पूर्ण करने मे मुझे हिन्दी साहित्य सम्मेलन के पुस्तकालय, एव इलाहाबाद विश्वविद्यालय के पुस्तकालय से बहुत सहायता मिली। इन पुस्तकालयो के प्रबन्धको के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना मै अपना कर्तव्य समझती हूँ।

इन्हीं शब्दो के साथ मै अपना यह शोध प्रबन्ध सुधीजनो के सम्मुख प्रस्तुत करती हूँ, जो सत साहित्य की दिशा मे किया गया प्रयास है।

दीपावली
१९ अक्टूबर १९९८

आभा त्रिपाठी
(आभा त्रिपाठी)

प्रथम अध्याय

प्राचीन भारत में नारी के प्रति दृष्टिकोण

सृष्टि चक्र के प्रवर्तन के लिये ईश्वर ने स्त्री एव पुरुष के रूप मे दो भिन्न तत्यो की रचना की। प्रकृति रूप एव गुण मे एक दूसरे से भिन्न ये तत्व मानवी सृष्टि के आधार है। किसी भी एक तत्व के बिना सृष्टि की कल्पना नहीं की जा सकती है। सृष्टि की यही सकल्पना भगवान् शिव के 'अर्धनारीश्वर' रूप मे अन्तर्निहित है। पुरूष यदि बल, पराक्रम एव शौर्य की प्रतिमूर्ति माना जाता है तो शुम्भ-निशुम्भ, मधु-कैटभ, महिषासुर आदि दैत्यो का दलन करने वाली शक्ति स्वरूपा महामाया भी स्त्री स्वरूपा ही है। वह पुरूष को आनन्दित करने वाली रमा, सबका भरण-पोषण करने वाली अन्नपूर्णा एव रण मे शत्रुओ का सहार करने वाली चण्डी है। यह सृष्टि का स्त्री रूप ही है जिसमे एक साथ दया, माया, ममता, करूणा, शौर्य, शक्ति, स्निग्धता एव सुकुमारता विद्यमान् है।

मध्यकालीन नारी भावना का अध्ययन करने के लिये उसकी परम्परा पर दृष्टिपात् करना आवश्यक है, क्योकि दृष्टि सरचना किसी एक दिन की उपज नहीं होती है, उसके पीछे परम्परा का हाथ होता है। इसी परम्परा को जानने के लिये हम कालानुसार निम्नाकित बिन्दुओ पर विचार करेगे।

(क) वैदिक युग

(ख) ब्राह्मण–उपनिषद् युग

(ग) स्मृति–पुराण–बौद्ध युग

(क) वैदिक युग

वेद हमारे आदि उपदेष्टा, आदि नियामक है। समस्त सर्जनात्मक प्रक्रिया का मूल एव आदि स्वरूप वैदिक वाङ्मय मे प्राप्त होता है। वेदो से पूर्व किसी भी रचना का उल्लेख नहीं मिला है। किसी भी विषय का अध्ययन करते समय उसके सन्दर्भ सूत्र वेदो मे खोजे जाते है, और उनके समाधान की चेष्टा की जाती है। अत स्त्रियो की दशा की चर्चा करते समय भी यही दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिये।

ऋग्वेद ससार का प्राचीनतम ग्रथ है। इसमे स्त्री एव पुरूष का लिग भेद की दृष्टि से विभेद नहीं है। इस युग मे स्त्रियॉ पुरूषो के समकक्ष ही मानी गई हैं और कहीं–कहीं तो उनका स्थान पुरूषो से भी ऊँचा माना गया है। इस युग मे स्त्रियो का भी उपनयन सस्कार होता था और वे ब्रह्मज्ञान एव ब्रह्मचर्य के लिये पुरूषो के समान ही योग्य समझी जाती थीं। बालको को पुरुष एव बालिकाओ को स्त्रियॉ शिक्षित करती थीं। ऋग्वेद के दूसरे मडल के ४१ वें सूक्त के १९ वे मन्त्र में इसका निर्देश मिलता है। स्त्रियॉ विदुषियो से ब्रह्मचर्य नियम के अनुसार भूगर्भादि विषयो से लेकर ब्रह्मज्ञान विषयक शिक्षण ग्रहण करती थीं।[1] उषा के सदृश विदुषी स्त्रियॉ अविद्या निद्रास्थ स्त्रियो को ज्ञान के आलोक से जागृत करके उन्हे सत्कार्यों में प्रेरित करती थी।[2] वेदो मे ऐसे अनगिनत उदाहरण मिलते है जो यह प्रमाणित करते हैं कि न केवल स्त्रियो ने वेदो का अध्ययन किया अपितु अनेक मत्रो का साक्षात्कार भी किया। इन मन्त्रद्रष्टा ऋषिकाओं मे शची

---

[1] ऋग्वेद ७/३४/१ और ७/३५/९

[2] ऋग्वेद ७/४१/७ और यजुर्वेद ३४/४०

पौलोमी[1] जो पुलोम ऋषि की पुत्री एव इन्द्र की धर्मपत्नी है, मयी[2] जो मय दानव केकुल मे मय से पूर्व उत्पन्न हुईं थी, मनु की सहधर्मिणी श्रृद्धा कामायनी[3] वागम्भृणी[4] अदिति दाक्षायणी[5] ऋजिष्वा[6] घोषा काक्षीवती[7], सरस्वती[8], यमीवैवस्वती[9] विश्ववारा[10] विश्वसामा[11] रोमशा ब्रह्मवादिनी[12]

घृताची[13] सर्पराज्ञी कद्रूऋषि[14] लोपामुद्रा[15] नोधा[16] गौरिवी[17] रम्याक्षी[18] लोगाक्षी[19] बादरायणि[20] सूर्यासावित्री[21] वृषाकपिरिन्द्राणी[22] रेणु[23] सिकतानिवावरी[24] आकृष्टमाषा[25]

---

[1] ऋग्वेद १०/१५९/– (मदुरै एव कन्याकुमारी के बीच मे शचीतीर्थ नामक स्थल है, हो सकता है वहीं इस ऋषिका ने मन्त्रो का साक्षात्कार किया हो। मेरठ के पास हस्तिनापुर मे ी शतीतीर्थ नामक सरोवर का उल्लेख अभिज्ञान शाकुन्तलम् मे है। इस तरह यह सुदूर दक्षिण एव उत्तर मे ख्याति प्राप्त सिद्ध होती है।

[2] ऋग्वेद १०/१५४/१ २,३,४ ५

[3] ऋग्वेद १०/१५१/१,२,३,४,५

[4] ऋग्वेद १०/१२५/१,२,३,४,५ ६,७ ८

[5] ऋग्वेद १०/७२/१ २ ३,४,५,६,७,८ ९

[6] ऋग्वेद ६/४९ ५० ५१,५२

[7] ऋग्वेद १०/४०

[8] ऋग्वेद ७/९५/१,२,३,४,५,६ और ७/९६/१,२,३

[9] ऋग्वेद १०/१०/१,३,५,६,७,११,१३

[10] ऋग्वेद ५/२८

[11] ऋग्वेद ५/२२

[12] ऋग्वेद १/१२६/७

[13] यजुर्वेद २/६,१८

[14] यजुर्वेद ३/६,७,८ सामवेद– पूर्वार्चिक, आरण्यक पर्व, षष्ठ अध्याय पॉचवी दशती ६३० ६३१

[15] यजुर्वेद १७/११,१२,१३,१४,१५ ३६/२०

[16] यजुर्वेद ३४/१६,१७ अथर्ववेद– २०/९/१ २,और २०/३५/१–१६ सामवेद –पूर्वार्चि – ऐन्द्रपर्व तृतीय अध्याय पहली एव आठवीं दशती उत्तरार्चिक– पञ्चमखण्ड–१४१८ १४१९ १४२०

[17] यजुर्वेद – २६वॉ अध्याय ६४ वॉ मन्त्र
सामवेद –पूर्वार्चिक– पवमान पर्व, पञ्चम अध्याय ११ वीं दशती ऐन्द्रपर्व तृ०अ० द० दशती,

[18] यजुर्वेद – २६वॉ अध्याय –४,५

[19] यजुर्वेद – २६ वॉ अध्याय–२

[20] अथर्ववेद– ४/३७,३८

[21] अथर्ववेद – १४/१/१/१–६४, १४/२/२/१–७५

गार्गी[1] तिरश्ची[2] पृष्णयोऽजा[3] कुत्सा[4] रेभा[5] नीपातिं[6] कुसीदी[7] देवजामि[8] आदि है जिन्होने अपनी तेजस्विता एव ब्रह्मवर्चस्व के बल पर निम्नाकित मन्त्रो का साक्षात्कार किया। बाद मे इन मन्त्रो को पवित्र नियमो के रूप में सकलित किया गया।

वैदिक शिक्षा उपनयन सस्कार से प्रारम्भ होती थी, जो सम्भवत आठ वर्ष की अवस्था से प्रारम्भ होती थी। वैदिक शिक्षा उपयुकत जीवन साथी के चुनाव मे एक अनिवार्य योग्यता होती थी। विवाह युवावस्था मे दीर्घ ब्रह्मचर्य के साथ शिक्षा ग्रहण करने के उपरान्त ही होते थे।[9] स्वय के सदृश विद्यायुक्त ब्रह्मचारिणी, सुन्दर रूप, बल, पराक्रम वाली, अच्छे स्वभाव वाली, सुख देने वाली युवती से विवाह सबध करने का निर्देश है।[10] ऐसा भी कथन है कि जो विद्वानो के कुल की कन्या, विद्वानों की बन्धु हो और ब्रह्मचर्य से विद्या प्राप्त की हो ऐसी स्त्री को

---

[22] अथर्ववेद –२०/१२५/१–२३

[23] सामवेद – उत्तरार्चिक –११/५/१४२३,१४२४,१४२५
पूर्वार्चिक – ऐन्द्रपर्व – ३/११/३३९

[24] सामवेद – उत्तरार्चिक – ८/४/११५२–११५४, ३/५/८२१ ८२२

[25] सामवेद – उत्तरार्चिक – ७/१/१०३१–१०३३, ५/१/८८६–८८८

[1] अथर्ववेद – १९/७,८

[2] सामवेद – उत्तरार्चिक – ४/६/८८३–८८५ पूर्वार्चिक – ऐन्द्रपर्व – ३/१२/३४६ ३४९

[3] सामवेद – उत्तरार्चिक – ३/५/८२३

[4] सामवेद – पूर्वार्चिक – आरण्यकपर्व – ६/५/६२९

[5] सामवेद – पूर्वार्चिक – ऐन्द्रपर्व – ४/१२/४६०

[6] सामवेद – पूर्वार्चिक – ऐन्द्रपर्व – ३/१२/३४८

[7] सामवेद – पूर्वार्चिक – ऐन्द्रपर्व – २/५/१६२, २/६/१६७

[8] ऋग्वेद –१०/१५३/१

[9] ऋग्वेद – ७/४/१४

[10] ऋग्वेद १/११३/७, १/५६/२

पत्नी बनाना चाहिये।[1] अति उत्तम विवाह वह है जिसमे तुल्य रूप स्वभाव युक्त कन्या और वर का सबध हो, परन्तु कन्या से वर का बल, आयु डेढ गुना या दुगुना होना अभीष्ट है।[2] सुशिक्षित वाणी के तुल्य[3] अखण्डित आनन्द देने वाली[4] प्रशस्त विज्ञान युक्त[5] शिरोवेष्टन अर्थात पगडी के तुल्य[6] भूमि के सदृश पोषण करने वाली[7] प्रसिद्ध अप्रसिद्ध सुख देने वाली[8] पृथ्वी के तुल्य क्षमाशील[9] जल के तुल्य शान्तिशील[10] वैद्य के तुल्य हितकारिणी[11] रोगहीन, सुन्दर-सुन्दर रत्नो वाली, बिना अश्रुओ वाली[12] होना चाहिये। स्त्री की दशा का अनुमान यजुर्वेद के एक प्रसग से आसानी से लगाया जा सकता है, जब विवाह के अवसर पर पुरूष स्त्री से कहता है कि जैसे सूर्य भूगोलो को, प्राण शरीर का और उपदेशक सत्य का ग्रहण करते हैं वैसे ही तुझे मैं ग्रहण करता हूॅ।[13] विवाह आत्मिक उन्नति के लिये किया गया पवित्र बन्धन होता था[14], जिसमे वे गार्हस्थिक कर्तव्यों को करते हुये धर्म के द्वारा आत्मिक उन्नति करते थे इसे धर्माधि-सम्बन्ध कहा जाता था। पाणिग्रहण के अवसर पर वर वधू से कहता है कि भग, अर्यमा, सविता और

---

1. ऋग्वेद २/३२/६
2. ऋग्वेद १/५६/३
3. यजुर्वेद अध्याय ३८/२
4. यजुर्वेद अध्याय ३८/२
5. यजुर्वेद अध्याय ३८/२
6. यजुर्वेद अध्याय ३८/३
7. यजुर्वेद अध्याय ३८/३
8. यजुर्वेद अध्याय ३८/३
9. यजुर्वेद अध्याय ३६/१३
10. यजुर्वेद अध्याय ३६/१४
11. यजुर्वेद अध्याय ३३/
12. अथर्ववेद १०/३/५७
13. यजुर्वेद अध्याय ३८/१
14. कल्चरल हेरिटेज ऑफ इन्डिया पृ०-१९४

पुरन्धि गृहस्थ धर्म के लिये तुम्हे मुझे देते है, मै सौभाग्य के लिये वृद्धावस्था पर्यन्त के लिये तुम्हारा पाणिग्रहण करता हूँ[1] तुम मेरी धर्मपत्नी हो और मै तुम्हारा गृहपति हूँ।[2] विवाह बधन मे परस्पर एक दूसरे को बाधने वालाा सस्कार "उपयम" कहलाता है और बॅधने वाले स्त्री-पुरूष यम और यमी है।[3] दम्पत्ति शब्द पति-पत्नी के सम्मिलित स्वामित्व का द्योतक था।[4] विवाह स्वयवर विधान से होते थे।[5] विवाह के पश्चात वधू पितृगृह से पतिगृह जाती थी और नवीन घर मे सास-ससुर, ननद देवर सब पर शासन करती हुई श्वसुर कुल की साम्राज्ञी होती थी।[6]

सामान्यतया वैदिक बलि पति और पत्नी सम्मिलित होकर देते थे लेकिन वैदिक युग मे विवाह अनिवार्य नहीं होते थे। ऐसे भी बहुत उदाहरण मिलते है जहॉ अविवाहित स्त्रियॉ सोमलता की डाल लेकर इन्द्र के लिये बलि देती थी। कुछ बलि जैसे फसल कटने के समय सीता बलि और रूद्र बलि केवल स्त्रियो के द्वारा ही सम्पादित की जाती थी। स्त्रियॉ पुरूषो की ही भॉति धार्मिक कार्यों का आयोजन करती थी। असमर्थता के निर्बल बिन्दु से उनका साक्षात्कार नहीं हुआ था। बलि के अवसर पर स्त्रियॉ पुरोहित का कार्य भी करती थी।[7] अम्भृण ऋषि की कन्या वाक् द्वारा रचित देवी सूक्त अपने मे अप्रतिम है। विश्ववारा को भी हम अकेले ही दैनिक प्रार्थना करते हुये पाते है।[8] आरण्यक और श्रौत सूत्र मे

---

[1] ऋग्वेद १०/८५/३६

[2] अथर्ववेद १४/१५०/५१

[3] ऋग्वेद १०/८०/१०

[4] मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में नारी भावना पृ०-१५ डा० उषा पाण्डेय

[5] ऋग्वेद १/१५५/६

[6] ऋग्वेद १०/८५/४६

[7] पोजीशन ऑफ विमेन इन एनाशियेन्ट इन्डिया पृ०- २१६

[8] पोजीशन ऑफ विमेन इन एनाशियेन्ट इन्डिया पृ०-२१७

बलि के अवसर पर पति द्वारा पत्नी से मन्त्रोच्चारण के लिये कहा जाता है।[1] स्त्रियाँ विद्याध्ययन, अध्यापन, पौरोहित्य, गार्हस्थिक कार्यों के अतिरिक्त वैद्यकी और न्याय का कार्य भी करती थी। स्त्रियो द्वारा वैद्यकशास्त्र के अध्ययन का उल्लेख यजुर्वेद मे है।[2] न्याय के सदर्भ मे ऋग्वेद के प्रथम म० मे एक उल्लेख आया है, जिसमें राजा के प्रति रानी का कथन है कि, मैं आपसे न्यन नहीं हूँ, जैसे आप पुरूषो के न्यायाधीश है वैसे ही मैं स्त्रियो का न्याय करने वाली हूँ और जैसे पहले राजा महाराजाओ की स्त्री प्रजास्थ स्त्रियो की न्याय करने वाली हुई वैसी मैं भी होऊँ।[3] पहले की रानियो के उल्लेख से इसकी दीर्घकालीन परम्परा का बोध होता हैं। ऋग्वेद के द्वितीय मडल मे इसी तरह का उल्लेख आया है कि जिस देश और नगर में विदुषी स्त्री, स्त्रियों का न्याय करने वाली हो उस देश और नगर मे दिन रात निर्भय होते हैं विशेषकर चोर आदि के भय से रहित सुखपूर्वक रात्रि व्यतीत होती है।[4] रानी दुष्टा स्त्रियो को मारकर अन्य स्त्रियो की रक्षा भी करती थी।[5] वे शान्ति के समय समृद्धि मे योगदान देती थी और युद्ध मे विजय दिलाने का कार्य करती थीं। ऋग्वेद के दशम म० मे हम इन्द्रसेना मुद्गलानी का आख्यान पाते है, जिसने अपने पति मुद्गल की सहायता के लिये स्वय रथ का सचालन किया और वीरतापूर्वक युद्ध करते हुये हजारो पशुओं को जीत लिया।[6] इसी प्रकार ऋग्वेद के ही प्रथम म० में हम रानी विश्पला का

---

१ पोजीशन ऑफ विमेन इन एनाशियेन्ट इन्डिया पृ०- २१८

२ यजुर्वेद ११/४८

३ ऋग्वेद १/१२६/७

४ ऋग्वेद २/२७/१४

५ ऋग्वेद २/३०/८

६ ऋग्वेद १०/१०२/२-६

आख्यान पाते है जिसने युद्ध करते समय अपना एक पैर गॅवा दिया।[1] राजा के अभाव मे रानी के सेनापति होने का भी उल्लेख मिलता है।[2]

स्त्रियो को समाज मे सम्मानजनक स्थान प्राप्त था। स्त्रियॉ औद्योगिक जीवन मे भी क्रियात्मक भूमिका निभाती थी। के तीर और धनुष का निर्माण करती थीं, टोकरियॉ बनाती थी, कपडे बुनती थी, घर के बाहर कृषिकार्य मे भी भाग लेती थीं। इस काल मे तीर -धनुष का निर्माण करने वाली स्त्रियो के लिये प्रयोग किया जाने वाला शब्द "इषुकत्री" परवर्ती साहित्य में नहीं मिलता है।

स्त्रियॉ ललित कलाओ जैसे सगीत गायन, वादन और नृत्य मे निपुण होती थी। आमोद-प्रमोद के लिये मुक्त होती थी। वे "सवन" नाम के सार्वजनिक उत्सव मे भी भाग लेती थी। सभाओं का सचालन उसी कुशलता के साथ करती भी जैसे पुरूष करते थे। इन्हीं विशेषताओं के कारण गृहपत्नीको नाविक से उपमित किया गया है। खान-पान आदि आवश्यक सामग्री से युक्त जलयात्रियों की नौकाको नाविक के सदृश गृहिणी भी धन-धान्य एव ऐश्वर्य से पूरित और दृढरख कर पति को नियम में बाधकर, पूरे प्रेम से प्रसन्न रखकर ग्रहस्थाश्रम से पार लगाती है।[3] इन्द्राणी भारतीय पत्नी की प्रतीक है, वह घर की एकछत्र स्वामिनी, पति में शक्ति का सचार करने वाली, एव उसक सम्पूर्ण ह्रदय के प्रेम की अधीश्वरी है।[4] परिवार पितृसत्तात्मक होते थे, तथापि सम्पत्ति पर पति पत्नी का सयुक्त रूप से स्वामित्व होता था। ऋग्वेद में अनेक ऐसे उदाहरण है जो यह

---

[1] ऋग्वेद १/११६/१५

[2] ऋग्वेद ६/७६/१३

[3] अथर्ववेद २/३६/५

[4] मध्ययुगीन साहित्य में नारी भावना से उद्‌घृत पृ-१४

सिद्ध करते है कि उस समय स्त्रियॉ घर की स्वामिनी होती थी। माता के रूप मे स्त्री श्रद्धा एव आदर की पात्र होती थी।[1]

युद्ध के लिये बडी-बडी सेनाओ की आवश्यकता होती थी इसलिये स्त्रियॉ बडे परिवार का बोझ सम्हालती थी और दस-दस पुत्रो की माता बनती थीं[2] (यहॉ-यह उल्लेखनीय है कि वे पुत्रो की माता बनती थी पुत्रियों की नहीं क्या यह सम्भव है? शायद नही, फिर भी यह उल्लेख पुत्र की पुत्री की अपेक्षा उच्च स्थिति का परिचायक है।)

स्त्रियों की कानूनी स्थिति भी अत्यन्त सुदृढ थी। विवाह के अवसर पर प्राप्त स्त्रीधन पर उनका ही अधिकार होता था। वे लाभ वाले व्यवसाय अपनाती थी और वे जो भी उत्पादित करती थी उसके विक्रय का अधिकार भी उन्हीं का था। अविवाहित कन्याओं को पिता की सम्पत्ति में अधिकार प्राप्त था। विवाहित पुत्रियों को चूँकि विवाह के अवसर पर पर्याप्त घनराशि दहेज के रूप में दे दी जाती थी, अत उनका पिता की सम्पत्ति पर कोई अधिकार नही होता था। पुत्रहीन पिता अपनी पुत्री को "पुत्रिका" निर्देशित करता था और ऐसी पुत्री पुत्र के ही समकक्ष मानी जाती थी।[3] जिन स्त्रियों के भाई नही होते थे उनसे विवाह करने में लोग हिचकते थे क्योंकि उस स्थिति में उस स्त्री का पहला पुत्र स्त्री के पिता के अधिकार में रहता था। सयुक्त परिवार प्रथा होने के कारण न तो पुरूष

---

[1] विमेन इन एनशियेन्ट इन्डिया पृ-६३

[2] ग्रेट विमेन ऑफ इन्डिया पृ-२९

[3] पोजीशन ऑफ विमेन इन एनाशियेन्ट इन्डिया पृ-२१९

की ही और न स्त्री की ही कोई वैयक्तिक सम्पत्ति होती थी। विधवाओ को पति की सम्पत्ति मे कोई अधिकार नहीं था।

विधवा विवाह भी प्रचलित थे। ऋग्वेद की एक ऋचा में उपमा अलकार के माध्यम से सकेत किया गया है कि एक विधवा अपने पति के भाई को अपनी शय्या की और खीच रही है। इसी प्रकार श्मशान मे पति के शव के पास पडी हुई विधवा को सबोधित करते हुये कहा गया है कि, "हे नारी तू जीवित जनो को लक्ष्य कर उठ खडी हो। तू इस निष्प्राण के समीप पडी है। उठ कर आ।[१]" अथर्ववेद मे भी ऐसा उल्लेख है कि पति की मृत्यु के पश्चात पत्नी अन्तिम सस्कार की भूमि पर उसके पास लेट जाती है, वहॉ से वह पति के भाई द्वारा उठाकर ले जाई जाती है जिससे वह उसकी पत्नी बन सके[२]।

अथर्ववेद मे ही एक अन्य सन्दर्भ में मृत पति की पत्नी के प्रति कथन है कि, "हे नारी, जीवित पुरूषों के समाज की और चलो। इस गये हुये प्राण वाले पति को सराहती हुई तू पडी है।[३]" नियोग की प्रथा भी प्रचलित थी। ऋग्वेद के दशम् म० के १८ वे सूक्त के नवें मन्त्र में नियोग प्रथा का उल्लेख है। अथर्ववेद के अनेक मन्त्रों में नियोग प्रथा का उल्लेख है।[४] नियोग प्रथा से उत्पन्न सन्तान स्त्री के मृत पति की ही सन्तान मानी जाती थी। नियुक्त पुरूष से सन्तान का कोई सम्बन्ध नहीं रहता था। अथर्ववेद के एक उदाहरण से इसकी पुष्टि होती है।

---

[१] ऋग्वेद १०/८/९

[२] ग्रेट विमेन ऑफ इन्डिया पृ-११

[३] अथर्ववेद -१८/३/२

[४] अथर्ववेद - १८/३/१, १८/३/२, १८/३/३, १८/३/४

मृत पति की पत्नी के प्रति कथन है कि, "हे स्त्री नियुक्त पति से अपने विवाह मे हाथ पकडने वाले पति की सन्तान को शास्त्रानुसार तू प्राप्त करे।"[1]

उक्त विश्लेषण से इतना तो निश्चित होता ही है कि स्त्रियो की धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक दशा अत्यन्त सुदृढ थी। तथापि ऋग्वेद की विवाह सम्बन्धी ऋचाओ मे दस पुत्रो के लिये प्रार्थना और कन्या का कोई सन्दर्भ उल्लिखित न होना यह द्योतित करता है कि कन्या से पुत्र का स्थान ऊँचा और सम्मानजनक माना जाता था।

पुत्र जन्म अधिक आनन्द जनक अवश्य था, किन्तु उत्पन्न होने के उपरान्त पुत्री असीम ममता एव स्नेह की भागिनी हो कर कनिका नाम से अभिहित होती थी।[2] कन्या की तुलना ऋग्वेद के अनेक मन्त्रों में उषा से की गई है। ऋग्वेद के प्रथम म० के ४८ वे सूक्त के १४ वे मन्त्र में कहा गया है कि जैसे उषा अपने प्रकाश से सब पदार्थो को प्रकाशित करती है वैसे ही विदुषी स्त्रियॉ विश्व को सुभूषित करती रहें। यह विश्व कल्याण-कामना वह भी स्त्री के माध्यम से हो, ही उनकी समाज में वास्तविक वस्तुस्थिति का परिचायक है।

(ख) ब्राह्मण - उपनिषद् युग

ब्राह्मण - उपनिषद् युग में आर्यों का साम्राज्य विस्तार सम्पूर्ण उत्तर भारत में हो गया था, और उनकी स्थिति अत्यन्त सुदृढ हो गई थी। सभी कार्यों के लिये विजित जनसामान्य का सस्ता श्रम उपलब्ध था, अत स्त्रियों के द्वारा किये

---

[1] अथर्ववेद - १८/३/२

[2] मध्ययुगीन हि० सा० में नारी भावना डा० उषा पाण्डेय पृ० १५

जाने वाले कार्यो मे काफी कमी आई। स्त्रियॉ कताई, बुनाई, कढाई वस्त्र रगाई आदि कार्यो के अतिरिक्त खेती, तीरधनुष के निर्माण आदि कार्यो से विरत हुई।

इस युग मे वैदिक युग को समान ही स्त्रियो की समाज मे सम्मानजनक स्थान प्राप्त था, किन्तु वर्ण व्यवस्था के कारण उनकी स्थिति में कमश ह्रास होने लगा। स्त्रियो की धार्मिक स्थिति इस समय भी अच्छी ही कही जा सकती है। उपनयन सस्कार वैदिक युग की ही तरह अब भी होता था। वैदिक युग के बाद शिक्षित स्त्रियो के दो वर्ग मिलते है। (१) ब्रह्मवादिनी (२) सद्योद्वाह ब्रह्मवादिनी स्त्रियॉ अविवाहिता रहकर जीवन पर्यन्त धर्मशास्त्र एव दर्शन का अध्ययन एव अध्यापन करती थीं। सद्योद्वाह स्त्रियॉ विवाह होने तक अपनी शिक्षा जारी रखती थी।[1] और आठ-नौ वर्ष तक सस्कारो की विधि तथा वैदिक ऋचाओं की उच्चारण विधि सीख कर गृहस्थ धर्म अपनाती थी।[2] स्त्रियों की शिक्षा का उत्तम प्रबन्ध होता था और ज्ञान प्राप्ति के लिये वे भी पुरूषों के समान ही शिक्षा के केन्द्रो मे जाया करती थी।[3] वैदिक युग मे पिता ही सन्तान का शिक्षक होता था। इस युग में शिक्षको का एक वर्ग जिन्हे आचार्य कहा जाता था, सामने आया स्त्री शिक्षको का भी उल्लेख मिलता है जिन्हें "आचार्या" कहा जाता था, ये उन आचार्यो को स्त्रियों से भिन्न होती थी जिन्हें आचार्यानी कहा जाता था।[4] बालिकाओं की शिक्षा घर पर ही पिता, चाचा या भाई के सरक्षण मे होती थी,

---

[1] आइडियल एण्ड पोजीशन ऑफ इन्डियन विमेन इन डॉमेस्टिक लाइफ पृ०-५

[2] मध्ययुगीन हिन्दी सा० में नारी भावना पृ०-१७

[3] पोजीशन ऑफ विमेन इन एनशियेन्ट इन्डिया पृ०-२१८

[4] आइडियल एण्ड पोजीशन ऑफ इन्डियन विमेन इन लाइफ सोशल पृ०-३०

कुछ बालिकाये बाहर के शिक्षको से भी पढती थी और कुछ छात्रावासो जिन्हे उस समय "छात्रीशाला" कहा जाता था, मे रहकर शिक्षा प्राप्त करती थी।[1]

इस काल मे वेदो की शिक्षा पीछे छूटने लगी क्योंकि वैदिक साहित्य अधिक विस्तृत एव जटिल हो गया था। उसकी शाखाये प्रशाखायें एव उपशाखायें विकसित हो गई थी। तत्कालीन जनभाषा और वैदिक ऋचाओं की भाषा मे अन्तर बढता जा रहा था। वैदिक कर्मकाण्डो की जटिलता भी बढती जा रही थीं उनका सम्यक सम्पादन उन्हे अच्छी तरह से जानने वाला ही कर सकता था। वैदिक काल के सरल कर्मकाण्डों का अध्ययन स्त्रियॉ १६-१७ वर्ष की अवस्था तक कर लेती थी।[2] इस युग के विस्तृत कर्मकाण्ड के वृहत साहित्य का अध्ययन तभी सम्भव था जब स्त्री २२ या २४ वर्ष की अवस्था तक अविवाहित रहती। देश की समृद्धि और आर्थिक उन्नति के साथ विलासिता की प्रवृत्ति बलवती हो रही थी, अत स्त्रियों के उपनयन और शिक्षा पर आघात पहुँचा[3] तथापि हम गार्गी, वादवा प्रातिथेयी सुलभा और मैत्रेयी जैसी विदुषी स्त्रियो के उदाहरण पाते है। स्त्रियॉ मीमासा जैसे गूढ दार्शनिक विषयों में भी रूचि लेती थीं। काशकृत्सन के मीमासा दर्शन का अध्ययन करने वाली स्त्रियों को "काशकृत्सना" कहा जाता था। दार्शनिक शिक्षा के लोकप्रिय होने के कारण सन्यास धर्म के प्रति स्त्रियों का झुकाव परिलक्षित होता है। और बौद्ध-धर्म से पहले ही कम सख्या मे ही सही, सन्यासिनियो का अस्तित्व प्रकाश में आया। वे दार्शनिक वाद-विवाद मे भाग लेती थीं इस सन्दर्भ में याज्ञवल्क्य से गार्गी द्वारा पूछे गये प्रश्नो का उल्लेख आवश्यक

---

[1] वही पृ०-३०

[2] पोजीशन ऑफ विमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन पृ०-२३

[3] मध्ययुगीन हिन्दी सा० में नारी भावना पृ०-१८

है जो कठिन ही नहीं तथ्यपूर्ण भी है।[१] इस शास्त्रार्थ मे यद्यपि गार्गी पराजित हुई थी तथापि समस्त भारत से आये विद्वानो को उनकी विद्वत्ता का लोहा मानना पड़ा था।[२] आश्वलायन गृह सूत्र मे गार्गी, वादवा प्रातिथेयी, सुलभा मैत्रेयी आदि स्त्री शिक्षको के नाम प्राप्त होते हैं।[३] वे शिक्षा की कुछ शाखाओं की विशेषज्ञ भी हुआ करती थीं[४] पातञ्जलि के महाभाष्य में भी स्त्री शिक्षको और विशेषज्ञो का निर्देश मिलता है। रामायण में सीता को भी हम साध्य-प्रार्थना करते हुये पाते हैं[५] जिससे उनके शिक्षित होने का परिचय प्राप्त होता है। पाण्डवों की माता कुन्ती भी अथर्ववेद में पारगत थी। स्त्रियो की शिक्षा और समाज में उनके स्थान का निर्धारण ऐतरेय उपनिषद मे आये एक आख्यान से किया जा सकता है जिसके अनुसार सुसतति विज्ञान पर हो रही परिचर्चा में भाग लेने के लिये स्त्रिया उस स्थान पर जाती हैं और परिचर्चा समाप्त होने पर ही वापस आती हैं।[६]

स्त्रियों को विवाह करने की बाध्यता नहीं थी। ब्रह्मवादिनी स्त्रियॉ आजीवन ब्रह्मचारिणी रहकर ब्रह्मज्ञान प्राप्त करतीं थीं। इस युग मे कन्या की विवाह की आयु १५-१६ वर्ष हो गई थी, अत उनका ब्राह्मचर्य जीवन वैदिकयुग की अपेक्षा छोटा हो गया था।[७] बहुविवाह प्रथा भी थी, एक पुरूष कई स्त्रियों से विवाह कर सकता था। इतिहास में द्रौपदी से पॉच पाण्डवों के विवाह के आख्यान से बहुपति प्रथा का उल्लेख भी मिलता है। आर्य पुरूषों के अनार्य स्त्रियों से विवाह के भी

---

१ आइडियल एण्ड पोजीशन ऑफ इन्डियन विमेन इन सोशल लाइफ पृ०-३०

२ पोजीशन ऑफ विमेन इन एनाशियेन्ट इन्डिया पृ०-२१८

३ आइडियल एण्ड पोजीशन ऑफ इन्डियन विमेन इन डॉमेस्टिक लाईफ पृ०-५

४ पोजीशन ऑफ विमेन इन एनशियेन्ट इन्डिया पृ० - २१८

५ सध्याकाल मना श्यामा ध्रुव मेष्यति जानकी - रामायण ६१४ ४९

६ पोजीशन ऑफ विमेन इन एनाशियेन्ट इन्डिया पृ० - २१८

७ आइडियल एण्ड पोजीशन ऑफ इन्डियन विमेन इन सोशल लाईफ पृ०-३२

कुछ उदाहरण प्राप्त होते हैं। महाभारत में भीम का अनार्य हिडिम्बा और अर्जुन का अनार्य उलूपी से विवाह सबध होता है। जैसे-जैसे आर्य और अनार्यो का सम्पर्क बढता गया और ऐसे सबध बहुत सामान्य होते गये आर्य स्त्रियों का सामाजिक स्तर गिरता गया।[1]

वैदिक बलि पति-पत्नी के द्वारा सम्मिलित रूप से दी जाती थी। आरण्यक और श्रौत सूत्र में स्त्रियों के द्वारा वैदिक बलि के अवसर पर उपस्थित रहने और सम्मिलित रूप से पति-पत्नी द्वारा बलि देने का उल्लेख है। वे पुरूषों की ही भॉति अकेले भी अपनी दैनिक वैदिक प्रार्थना कर सकती थीं। राम के राज्याभिषेक के अवसर पर कौशल्या राम के सौभाग्य और कुशल, मगल के लिये बहुत सी बलि देती हैं। तारा भी सुग्रीव के बालि से द्वन्द्व युद्ध के समय बलि कार्य में सलग्न दिखती हैं। रामायण में सीता भी सध्या काल में वैदिक प्रार्थना करती हैं।[2] किन्तु स्त्री के व्यक्तित्व को दबाने का प्रयास गृहसूत्र से मिलता है जहॉ उसे वैदिक मन्त्रों की रचना और उच्चारण न करने की चेतावनी कठोरता से दी जाती है।[3] अब वह घर की अग्निपूजा तो पहले की ही भॉति कर सकती थी, किन्तु बडे धार्मिक कृत्यो से, जो सार्वजनिक रूप से आयोजित होने थे, के लिये आयोग्य मान ली गई।

ए० एस० अल्टेकर स्त्रियों के इस अपकर्ष के लिये आर्यों के साथ अनार्य स्त्रियों का सम्पर्क मानते हैं। उनके अनुसार आर्यो की दस्यु विजय के उपरान्त

---

१ आइडियल एण्ड पोजीशन ऑफ इन्डियन विमेन इन सोशल लाईफ पृ०-३२

२ आइडियल एण्ड पोजीशन ऑफ इन्डियन विमेन इन सोशल लाईफ पृ०-३०

३ पोजीशन ऑफ विमेन इन एनशियेन्ट इन्डिया पृ०-२१७

ही अनुलोम विवाह प्रचलित हो गये थे। इन अनार्य स्त्रियो की विद्यमानता ने नारी के पतन मे योग दिया। अनार्य स्त्री सस्कृत भाषा के ज्ञान के अभाव मे धार्मिक प्रक्रियाओ मे भाग लेने में असमर्थ थी। उसे धार्मिक कृत्यों के लिये अयोग्य घोषित कर दिया गया था, किन्तु आर्य अपनी विशेष प्रिय अनार्य पत्नी को ही यज्ञ मे सहयोगिनी बनाना चाहता होगा। अत इसके समाधान में समस्त स्त्री जाति को ही धार्मिक प्रक्रियाओं की अनाधिकारिणी घोषित कर दिया गया।[1]

गान्धारी, द्रौपदी, कौशल्या, कुन्ती आदि रानियो का प्रभाव हम राजदरबार में तो देखते हैं किन्तु पूर्ण अधिकार से शासन करने वाली स्त्रियो का कहीं उल्लेख नहीं है। महाभारत के युद्ध के पश्चात भीष्म युधिष्ठिर को सलाह देते हैं कि युद्ध में पुत्रों के मारे जाने पर राजा पुत्री का राज्याभिषेक करे, किन्तु यह कहीं भी व्यवहार मे परिलक्षित नहीं होता है। समाज का अपना जो विचार था उसके अनुसार स्त्रियो की अपनी प्राकृतिक कमजोरियॉ हैं और वे एक योग्य रानी (राजा जैसी) और प्रशासिका नहीं बन सकती हैं।

सम्पत्ति के सम्बन्ध में उसकी स्थिति वैदिक युग के समान ही थी। विधवा को पति की सम्पत्ति में कोई अधिकार नहीं था न ही पुत्री का भाईयो के रहते पिता की सम्पत्ति पर अधिकार था। स्त्रीधन की भी व्यवस्था वैदिक युग के ही समान थीं। ब्राह्मण सहिताओं के अनेक उदाहरणों से पता चलता है कि स्त्रियों का बडा आदर एव सम्मान था। ऐतेरेय उपनिषद् में नारी के प्रति कर्त्तव्य निर्वाह का कथन है। ऐतेरेय उपनिषद् एव वृहत् उपनिषद मे विद्वान पुत्री की प्राप्ति की

[1] "पोजीशन ऑफ विमेन इन हिन्दु सिविलाईजेशन" पृ०-२४३

इच्छा का भी सकेत मिलता है।[1] छादोग्य उपनिषद मे भी जानश्रुति-पौत्रायण एव रौक्व प्रसग मे कन्या की उच्चस्थिति का उल्लेख है।[2] विवाह के बाद पति का पत्नी को अरून्धती आदि नक्षत्र दिखलाने का अभिप्राय कन्या की कामना है।[3] इसी प्रकार विवाह सस्कार मे पति का स्त्री की अगुलियों को पकडने का अभिप्राय भी कन्या की कामना ही है।[4] अथर्ववेद में उत्पन्न कन्या की रक्षा तथा उसे विक्षिप्त या दुखी न करने का विवरण प्राप्त होता है।[5] तैत्तरीय समाहित के एक प्रसग से पुत्र एवं पुत्री के लिग-भेद विषयक भिन्न स्थिति का भी परिचय प्राप्त होता है जिसमे कहा गया है कि जब शिशु पुत्र होता था तो उसे उल्लास से उठा लिया जाता था, और जब कन्या होती थी तो उसे मॉ के पास ही रहने दिया जाता था। इससे यह प्रतीत होता है कि पुत्री के जन्म पर असन्तोषजनक स्थिति पैदा हो जाती थी।

इस युग के ग्रन्थों का अवलोकन करने से बडी भ्रमात्मक स्थिति उत्पन्न होती है। एक ओर तो उसकी स्थिति बहुत ही उच्च दिखाई देती है वहीं कहीं-कहीं उसका स्थान बुरे शुद्र से भी नीचा बताया गया है।[6] मैत्रायणी सहिता मे स्त्रियो को मद्य एव जुये के सदृश कहा गया है। इसी सहिता में उसे अनृत्य, नैऋति और आयन्ति भी कहा गया है।[7] शतपथ ब्राह्मण के अनुसार स्त्री शूद्र,

---

[1] ऐतेरेय उपनिषद २/५, वृहद उपनिषद् ६/४/१७

[2] छादोग्य उपनिषद् ४/२१५

[3] काठकगृहसूत्र २५/४५

[4] आश्वलायन गृहसूत्र

[5] अथर्ववेद ८/६/२५

[6] तैत्तिरीय सहिता

[7] मैत्रायणीसहिता १/१०/११

कुता एव कौआ मे असत्य, पाप और अधकार विराजमान रहता हैं[1] और उनके हृदय भेडिये के हृदय हैं।[2] महाभारत के अनुशासन पर्व मे तो उन्हें एक साथ ही उस्तुरा की धार, (क्षुरे की धार) विष, सर्प और अग्नि कहा गया है।[3]

उक्त विश्लेषण से इतना तो अवश्य ही कहा जा सकता है कि स्त्रियो के बारे मे ये परस्पर भिन्न मतवाद चौकाने वाले है। जहॉ तक चरित्र, स्वभाव, गुण-दोष का तात्पर्य है तो यह किसी काल विशेष की सापेक्षिक उपज नही हैं। और ऐसा भी नही है कि किसी वर्ग विशेष मे ही ये हो सकते है अन्य में नहीं। अन्तर केवल दृष्टि का है। अत केवल स्त्री मे ही दोष है ऐसा नही है चूँकि ये शास्त्रकार अधिकतर पुरूष थे और समाज में व्याप्त समस्त कुविचारों, दोषो को स्त्रियो के मत्थे मढकर स्वय को निर्दोष साबित करके दोषमुक्त हो जाते थे, और जब दोषमुक्त हो जाना इतना आसान हो तब स्वय के ऊपर दोष लगाना किसी को भी क्यों अच्छा लगेगा? इन शास्त्रकारों ने नारी की केवल निन्दा ही नही की है, अपितु स्थान-स्थान पर प्रशसा भी की है। इन शास्त्रकारों का कार्य समाज मे व्याप्त दोषों का निवारण करना था, समाज को नियम बद्ध करना था, अत इस प्रक्रिया मे अत्यन्त कटु भाषा के द्वारा समाज को सन्मार्ग पर लाने की चेष्टा में किसी वर्ग विशेष पर यदि अनावश्यक टिप्पणी इनके द्वारा की जाये तो यह इन शास्त्रकारों की अनाधिकृत चेष्टा ही कही जायेगी। वैसे पत्नी को पुरूष का अर्घांग[4] और "जाया"[5] कहकर स्वय के पुत्र रूप मे उत्पन्न होने की उच्च

---

[1] १४/१/१/३१

[2] ११/५/१/९

[3] महाभारत-अनुशासन पर्व २८/२९

[4] तैत्तिरीय ब्राह्मण ३/३ ३ ५

[5] शतपथ ब्राह्मण-कल्चरल हेरिटेज ऑफ इन्डिया से उद्घृत पृ०-२००

सकल्पना भी इन्हीं ग्रन्थों की देन है। ऐतेरेय ब्राह्मण और गोपथ ब्राह्मण में भी स्त्री को पुरूष का अर्धांग कहा गया है और उस अर्धांग की प्राप्ति के बिना वह (पुरूष) पूर्ण नही हो सकता है।

(ग) स्मृति-पुराण-बौद्ध युग

स्मृति-पुराण-बौद्ध युग में स्त्री की दशा में उत्तरोत्तर अपकर्ष होता रहा अब वे विवेकहीन करार दे दी गई। समाज, परिवार मे उनका स्थान दूसरे दर्जे का हो गया। उपनयन सस्कार औपचारिक मात्र रह गया। यदि स्त्री का उपनयन न हो तो वह शूद्र हो जाती है, और ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य के लिये यह कष्ट की बात थी कि वे शूद्रा मॉ से उत्पन्न है अत मनु ने यह व्यवस्था दी कि स्त्रियों के सस्कार बिना मत्र के हो-

नास्ति स्त्रीणा किया मन्त्रैरिति धर्मे व्यवस्थिति।

निरिन्द्रिया ह्यन्मन्त्राश्च ऽनृतामिति स्थिति।।[1]

शास्त्र की मर्यादा के अनुकूल स्त्रियों का सस्कार मन्त्रों से नही होता है। स्मृति, धर्मशास्त्र और किसी मन्त्र में इनका अधिकार नही है, अत इनकी स्थिति असत्य के सदृश है। अमन्त्रक उपनयन अपने आप में विरोधाभास हो गया। यद्यपि कुछ स्मृतिकारों ने उपनयन सस्कार को आने वाले समय में भी जारी

---

[1] मनुस्मृति (पृ० ४३४) ९/१८

रखने की वकालत की, फिर भी याज्ञवल्क्य और परवर्त्ती स्मृतिकारो ने उपनयन सस्कार की आज्ञा नही दी।[1] स्त्रियो द्वारा बलि देने की प्रक्रिया भी अमन्त्रक होती थी।[2] उपनयन मे रुकावट आने से और इसके विवाह सस्कार के साथ ही सम्पादित होने से स्त्रियों की सामाजिक और पारिवारिक दशा में ह्रास हुआ। इस सबध में अल्टेकर का मत है कि, "मनु और याज्ञवल्क्य यहॉ से एक नवीन सिद्धान्त की शुरूआत करते है कि कन्याओं के सन्दर्भ में विवाह उपनयन सस्कार के लिये सम्पादित किया जायें। उनका पति उनका गुरू हो, उनकी सेवा गुरु-सेवा और सम्पूर्ण ग्रह-प्रबन्ध के माध्यम से बलि कार्य हो।[3] पूर्ववर्तीकाल मे अनार्यों को उपनयन का अधिकार नही था और जब स्त्रियों को भी इससे वचित कर दिया गया तो उनका स्तर शूद्रो के बराबर हो गया ।

३०० ई० पू० मे यह प्रतिपादित किया जाने लगा कि स्त्रियॉ शूद्रवत् वेदो का अध्ययन करने लिये अनुपयुक्त है। स्त्रियों के सबध में यह कितने दुर्भाग्य की बात है कि वे उस भाग का भी अध्ययन भी नही कर सकती हैं जिसकी रचना उन्होने स्वय की है। यह उपनयन सस्कार के क्रम-भग का तार्किक उपसहार था।[4] ऐतिशायन ने स्त्रियों द्वारा पति के साथ वैदिक बलि में भाग न लेने की व्यवस्था दी। जैमिनी ने यद्यापि बलि-कार्य पति-पत्नी द्वारा सयुक्त रूप से सम्पन्न करने की बात कही तथापि उन्होने यह प्रतिपादित किया कि पत्नी पति की बराबरी नही कर सकती क्योकि वह अज्ञानी है, और उसका पति विद्वान।[5] वेदों

---

[1] ग्रेट विमेन ऑफ इन्डिया पृ०-३३

[2] मनुस्मृति ३/१२९

[3] आइडियल एण्ड पोजीशन ऑफ इन्डियन विमेन इन सोशल लाईफ पृ०-३४

[4] वही पृ०-३४

[5] पूर्व मीमासा ६/१/२४

की विवाह सबधी ऋचाओ मे आशा की जाती है कि वधू अपने नये गृह की स्वामिनी होगी । स्मृति मे विवाह सबधी श्लोको मे कहा गया है कि पत्नी पति के लिये वैसी ही है जैसे एक शिष्य आचार्य के लिये। ३०० ई० से औसत स्त्रियॉ चाहे वे समाज के सस्कारित भाग की हो, फिर भी अपने पति से कम शिक्षित होती थी। अल्पायु मे विवाहित हो जाने पर उन्हें विकास के अवसर नही मिलते थे। उनकी मानसिक और बौद्धिक प्रगति बौनी हो गई और इस तरह वे न केवल शिक्षा मे अपने पति की तुलना मे हीन हो गई, अपितु अपने दृष्टिकोण में भी सकुचित हो गईं।[1] पुरूष के मुकाबले स्त्रियो की इसी हीनतर स्थिति ने मनु और अन्य स्मृति कारो द्वारा उसे सरक्षण की वस्तु बनाने की वकालत करने दी। मनु के मतानुसार स्त्री की रक्षा कौमार्यावस्था मे पिता करे, युवावस्था में पति करे और वृद्धावस्था मे पुत्र करे, क्योकि स्त्री स्वतत्रता प्राप्त करने योग्य नही है।[2] अरक्षित स्त्री पिता और पति दोनो के कुले को सतापित करती है।[3] न तो वह रूप की परीक्षा करती है, न अवस्था पर ध्यान देती है, सुरूप वा कुरूप कैसे भी पुरूष को पाकर उससे प्रणयरत होती है।[4] पुरूष को देखते ही भोग की इच्छा, चित्त की चञ्चलता और स्वाभाविक हीनता के कारण पति से उत्तम रीति से शिक्षित होने पर भी पति के विरूद्ध आचरण करती है।[5] विधाता ने ही स्त्रियो को ऐसा बनाया है, इस प्रकार का स्वभाव जानकर पुरूष को स्त्री की रक्षा के लिये यत्न करना चाहिये।[6]

---

[1] आइडियल एण्ड पोजीशन ऑफ इन्डियन विमेन इन सोशल लाईफ पृ०-३५

[2] मनुस्मृति ९/३

[3] वही ९/५

[4] वही ९/१४

[5] वही ९/१५

[6] वही ९/१६

बालिका, युवती व वृद्धा तीनो को किसी भी अवस्था मे घर के किसी कार्य मे स्वतत्रता का अधिकार नही है।[१] याज्ञवल्क्य का भी यही मत है, वे भी नारी को प्रति पल रक्षणीय मानते है। यदि पति समीप न हो तो पिता, भाई, माता, पुत्र, सास-ससुर, मामा की निगरानी में रहे।[२] मनु तो स्त्री को इतना विवेक शून्य मानते है कि वे पुरूषो को अनायास ही दोष लगा देती हैं, उनका स्वभाव ही ऐसा है, अत बुद्धिमान व्यक्ति स्त्रियों के बीच असावधानी से नही रहते है।[३] माता, बहिन, पुत्री के साथ भी एकान्त वास नहीं करना चाहिये।[४] पत्नी के लिये पति ही सर्वस्व है, अत कन्या को पिता या पिता की सलाह पर भाई इत्यादि जिसको दे दे उसकी जीवन पर्यन्त सेवा करे और मरने के बाद भी उसका उल्लघन न करे।[५] स्त्रियों को पति के बिना यज्ञ, व्रत, तथा उपवास नही करना चाहिये।[६] पतिलोक की इच्छा करने वाली साध्वी स्त्री जीते हुये अथवा मरे हुये पति का कुछ भी अप्रिय आचरण न करें।[७] पवित्र पुष्प, मूल और फलों से अवश्य शरीर को कृश कर दे, किन्तु पति के मरने के पश्चात दूसरे पुरूष का नाम भी न ले।[८] जो स्त्री अपने नीच वर्ण वाले पति को त्याग कर उत्तम वर्ण वाले दूसरे पुरूष की इच्छा करती है, वह ससार मे निन्दा का पात्र बनती हैं। उसको मनुष्य परपूर्वा कहते हैं। अत स्त्री नीच वर्ण वाले पति की ही सेवा करें।[९] मनु का तो

---

१ मनुस्मृति-५/१४७

२ याज्ञवल्क्य समृति पृ० २३-श्लोक ८५-८६

३ मनुस्मृति २/११३

४ वही २/२१५

५ वही ५/१५१

६ वही ५/१५५

७ मनुस्मृति- ५/१५६

८ मनुस्मृति - ५/१५७

९ मनुस्मृति - ५/१६३

यहा तक कथन है कि यदि कोई स्त्री पिता, भाई आदि लोगों के अभिमान पर अपने पति की आज्ञाकारिणी नहीं होती तो उसे राजा बहुत से आदमियों के सामने कुत्तो से नुचवावे।[1] पति का उल्लघन करने से स्त्री की इस लोक मे निन्दा होती है और मरने के बाद वह सियार योनि में उत्पन्न होती है तथा बडे-बडे रोगो से पीडित होती है।[2] नारद स्मृति के व्याख्याकार असहाय ने इस सिद्धान्त को प्रतिपादित किया कि स्त्री उच्च शिक्षा के योग्य नहीं है, क्योंकि क्या सत्य है और क्या असत्य है, इसका समुचित ज्ञान इन्हें नहीं है। यह गहन शास्त्रीय अध्ययन पर आधारित है। इसलिये वे पुरूषों, जो कि ज्यादा शिक्षित है और विकसित प्रज्ञा वाले हैं के सरक्षण में रहें।

इस समय वैदिक धर्म का ह्रास और स्मार्त्त-पौराणिक धर्म का उदय हुआ। यह आश्चर्य की बात है कि स्त्रियॉ स्मार्त्तों की पारिवारिक बलि और पौराणिक व्रतों से वचित नहीं की गई। अल्टेकर के मत में तो वे पुरूषों की तुलना में इस नये लोकप्रिय पौराणिक धर्म की सरक्षक थी।[3]

बौद्ध धर्म और जैन धर्म के प्रसार स्वरूप भारतीय समाज में सन्यास धर्म का प्रभाव बढा। इससे भी स्त्रियों की दशा में अपकर्ष हुआ। समस्त विश्प के पुरुष सन्यासी स्त्रियों को सभी पापों और कष्टों का मूल कारण मानते हैं। सुकरात स्त्री को सभी पापों का मूल एव टर्टलिन 'नरक का द्वार' मानते है।

---

[1] मनुस्मृति- ८/३७१

[2] मनुस्मृति - ९/३०

[3] आइडियल एण्ड पोजीशन ऑफ इण्डियन विमेन इन सोशल लाईफ पृ०-३७

वराहमिहिर ने वृहत् समाहित मे उल्लेख किया है कि सन्यास धर्म को मानने वाले स्त्रियो की निन्दा मे अभ्यस्त थे।

बौद्ध धर्म मे स्त्रियों को आध्यात्मिक उच्चादर्शों की प्राप्ति के लिये साध्वियो के रूप मे आने की आज्ञा मिली। बौद्ध साध्वियों की रचना थेरी गाथा में उनकी आध्यात्मिक उपलब्धियों का प्रकाशन है। अपने उच्च आध्यात्मिक स्तर के कारण ये "थेरी" का पद प्राप्त करने मे समर्थ हुई थीं । इनमे से ३२ थेरियॉ आजीवन ब्रह्मचारिणी रही थीं। इनमे शुभा, सुमेधा, तथा अनुपमा के नाम उल्लेखनीय हैं। मठों मे उनका स्थान पुरूषो से निम्न था। वे नवागन्तुक स्त्रियों की शिक्षिका हो सकती थीं, पुरूषो की नहीं। मठ सबधी प्रबन्धन में भी उन्हे पुरूषों की तुलना में हीनतर स्थिति प्राप्त थी।

जैन धर्म मे भी स्त्रियो के दीक्षित होने का उदाहरण प्राप्त है। कौशाम्बी के राजा सहस्रानीक की पुत्री जयन्ती और कुण्डलकेशा के सन्दर्भ उल्लिखित है।

स्त्रियों के लिये विवाह सस्कार आवश्यक कृत्य था। स्वयवर की प्रथा पूर्णतया समाप्त हो गई। विवाह की उम्र कन्याओं के लिये १२ वर्ष निश्चित कर दी गई। मनु ने तीस वर्ष का पर और बारह वर्ष की कन्या तथा चौबीस वर्ष का वर और आठ वर्ष की कन्या के विवाह की व्यवस्था दी।[1] बालिकाओं की शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं थी। औसत स्त्रियॉ बडी मुश्किल से किसी प्रकार की शिक्षा प्राप्त कर पाती थीं। बौद्ध युग में स्त्री शिक्षा का कुछ प्रचार-प्रसार परिलक्षित होता है। अशोक की पुत्री सघमित्रा बौद्ध धर्म के प्रसार के लिये ही

---

[1] मनुस्मृति- ९/९४

श्रीलका गई थी, यह उसके शिक्षित होने का प्रमाण है। थेरीगाथा की थेरियॉ भी शिक्षित एव काव्य कला मे निपुण थीं। यद्यपि बौद्ध साहित्य में भिक्षुणियों की शिक्षा और उसकी पद्धति के विषय मे कोई सूचना नहीं मिलती है तथापि इतना तो निश्चित है कि उनकी शिक्षा उपेक्षित नहीं रही होगी।

स्त्रियॉ किसी प्रकार का व्यवसाय नहीं करती थीं। सुसस्कृत परिवारो मे कुछ स्त्रियॉ ऐसी भी थी, जिन्होने लेखिका और कवयित्री के रूप मे अपने को स्थापित किया। इस युग मे किसी स्त्री शिक्षिका का उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। कुछ स्त्रियॉ सगीत और नृत्य कला का सवर्धन कर रही थीं, जो उनके पारिवारिक लाभ के लिये था। सगीत और नृत्य को व्यवसाय के रूप मे अपनाना तत्कालीन वर्जनापूर्ण समाज मे सभव न था। कताई, बुनाई, पति की मृत्यु के पश्चात दुर्भाग्य के समय जीविका का एकमात्र सहारा थे।

सम्पूर्ण अधिकार के साथ शासन करने वाली किसी रानी का उल्लेख नहीं मिलता है। स्वत्वाधिकारिणी विधवा रानियॉ अवश्य थीं जैसे-- नायनिका और प्रभावती गुप्ता आदि। इन्होने लम्बे समय तक कुशलतापूर्वक बडे-बडे राज्यों पर शासन किया। राज्यों के प्रशासन में किसी स्त्री अधिकारी का उल्लेख नहीं मिलता है।

पर्दे का प्रचलन प्रारम्भ हो गया था, किन्तु अभी इसका प्रचलन राज्यों के अत पुर तक ही सीमित था। सम्पूर्ण समाज इससे अछूता था,लगभग सभी क्षेत्रो में नारी की स्थिति सन्तोषजनक न कही जा सकने पर भी, सम्पत्ति के अधिकार के सबध में उसकी स्थिति काफी सुदृढ थी। पुत्रहीन पिता की सम्पत्ति मे पुत्री

को पहले की ही तरह अधिकार प्राप्त था। इस सबध मे मनु का कथन है कि जैसे पुत्र आत्मा के तुल्य होता है, वैसी कन्या भी पुत्र के समान है, इसलिये पुत्रिका कन्या के होते अन्य कोई धन का भागी कैसे हो सकता है।[१] अविवाहित पुत्रियो को सम्पत्ति में अधिकार का प्रश्न ही नहीं उठना था, क्योंकि इस युग में स्त्रियो के लिये विवाह आवश्यक हो गया था। सन्तानहीन पुत्र की सम्पत्ति माता को मिलती थी, माता के मरने पर दादी को मिलती थीं।[२] पुरुष यदि मृत्यु से पूर्व सयुक्त परिवार से पृथक हो जाये तो उसकी विधवा को उसकी सम्पत्ति का अधिकार था।[३] ४०० ई० पू० के धर्मसूत्रो के लेखको ने विधवा के अधिकार का उल्लेख नहीं किया है। ३०० ई० पू० मे मनु ने भी लिखा है कि पुत्रहीन व्यक्ति की सम्पत्ति दूर के सपिण्डो मे बाट दी जाये। माता का धन पुत्रियो को मिलता था।[४] सर्वप्रथम विष्णु स्मृति मे (ई० पू० १०० श० मे) विधवाओ के अधिकार का समर्थन किया गया जिसमें यह कहा गया कि पुत्रो के अभाव में विधवा को अपने पति की सम्पत्ति पर पूरा अधिकार है। याज्ञवल्क्य (२००ई०) ने भी विष्णु के समान विधवा के सम्पत्ति अधिकार का समर्थन किया। उनके मत से पिता के मरने पर यदि भाई लोग धनादि का विभाग करें तो माता को सबके बराबर हिस्सा मिलना चाहिए।[५] विष्णु और याज्ञवल्क्य द्वारा विधवा को पति की सम्पत्ति का उत्तराधिकार देना क्रान्तिकारी था। नारद जैसे लेखको ने इस नई व्यवस्था का विरोध किया, उन्होने दृढतापूर्वक घोषित किया कि सन्तानहीन व्यक्ति की

---

[१] मनुस्मृति- ९/१३०

[२] मनुस्मृति - ९/२१७।

[३] ग्रेट विमेन आफ इण्डिया पृ०-३८

[४] याज्ञवल्क्य स्मृति - पृ०-१३५

[५] याज्ञवल्क्य स्मृति- दायभाग प्रकरण- १२३

सम्पत्ति शीघ्र ही राजसत्ता को प्राप्त हो और उनसे विधवाओ के केवल जीविकानिर्वाह के प्रबन्ध की अपेक्षा थी। इन दोनों विचारो के अतिरिक्त मध्य मार्ग भी है। जिसके अनुसार विधवा को केवल चल सम्पत्ति का ही अधिकार होगा। वह अस्थगित वारिस होगी और सास-ससुर, देवर-जेठ के न रहने पर ही सम्पत्ति की अधिकारिणी होगी।

स्त्रियो का विवाह-विच्छेद या पुनर्विवाह नहीं होता था, किन्तु कुछ प्रकरणो से विधवा विवाह का सकेत मिलता है। कहीं-कहीं विवाह न करने वाली विधवाओ को सम्पत्ति मे अधिकार देने की वकालत भी की गई हैं।'' यदि एक विधवा विवाह न करे या उसके नियोग से एक पुत्र हो तो उसे परिवार की सम्पत्ति में उचित भाग मिलना चाहिए, ताकि वह स्वय को सम्मानजनक जीवन जीने के योग्य बना सके।[१] सगाई के पश्चात वर की मृत्यु हो जाने पर उस कन्या का विवाह उसके देवर के साथ कर देने का विधान था।[२]

नियोग का भी प्रचलन था। अपने पति से सन्तान न होने पर स्त्री पति की आज्ञा से देवर या अन्य सपिण्ड पुरुष से पुत्र की अभिलाषा कर सकती थी।[३] और यदि कोई सम्पत्ति छोडकर नि सन्तान मर जाये तो उसका छोटा भाई उसके धन और स्त्री की रक्षा करता था तथा उसकी स्त्री में पुत्र उत्पन्न करके ज्येष्ठ भाई की सारी सम्पत्ति उसको दे देता था।[४]

---

[१] आइडियल एण्ड पोजीशन ऑफ इण्डियन विमेन इन सोशल लाईफ पृ०-३८

[२] मनुस्मृति- ९/६९

[३] मनुस्मृति - ९/५९

[४] मनुस्मृति- ९/१४६

स्त्रीधन को भी अच्छी तरह से व्याख्यायित किया गया। याज्ञवल्क्य ने तीन प्रकार के धन को स्त्रीधन कहा है। कन्या की माता और पिता ने, बन्धुओ ने जो धन दिया वह बन्धुदत्त, वर से धन लेकर जो कन्या दी जाय वह शुल्क, विवाह के पीछे मुँहदिखरौनी आदि में जो धन पति के कुल से मिले वह अन्वाधेयक कहलाता है, ये तीनो प्रकार के धन "स्त्रीधन" कहलाते हैं[1] और स्त्रीधन केवल पुत्रियो को ही मिल सकता है।[2] देवल स्मृति (६०० ई०) मे स्त्रीधन का विस्तार किया गया। जीविका निर्वाह के साधन, गहने, दुर्घटना के समय प्राप्त धन भी स्त्रीधन है।[3] स्त्रियो को इस बढे हुये स्त्रीधन के विक्रय का अधिकार नहीं था जैसा कि "सौदायिक" सम्पत्ति का था। स्त्रियो के द्वारा अर्जित मजदूरी को इसके अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता था।

जहॉ नीच वर्ण वाले पति को भी स्त्री द्वारा न त्यागने की व्यवस्था दी जाती है, वहीं पुरुषो के लिये यह भी व्यवस्था थी कि वे मद्य पीने वाली, दुश्चरित्रा, पति से द्वेष करने वाली, असाध्य रोग वाली, सदा धन नष्ट करने वाली स्त्री के रहते हुये भी दूसरा विवाह कर ले।[4] याज्ञवल्क्य स्मृति में तो जिस स्त्री के कन्या ही उत्पन्न होती हो उसके रहते दूसरा विवाह कर लेने का विधान बताया गया है।[5] मनु तो सभी स्त्रियों को छ दोषों से युक्त मानते हैं- मद्यपान, दुर्जनों का

---

[1] याज्ञवल्क्य स्मृति- दायभाग प्रकरण- १४४

[2] याज्ञवल्क्य स्मृति- दायभाग प्रकरण- १४४

[3] आइडियल एण्ड पोजीशन ऑफ इण्डियन विमेन इन सोशल लाईफ पृ०- ४०

[4] मनुस्मृति - ९/-

[5] याज्ञवल्क्य स्मृति- पृ०-२० श्लोक- ७३

सम्पर्ग, पति का विरह, इधर-उधर घूमना, कुसमय मे सोना, और दूसरे के घर मे रहना।[1]

स्त्रियो के प्रति इस प्रकार के विचार रखते हुये भी मनु ''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता'' कहकर स्त्रियों के सत्कार एव सत्कारित स्थान पर देवता के निवास की बात कहते हैं और यह भी प्रतिपादित करते हैं कि जहॉ उनका सत्कार नहीं होता है, वहॉ सभी क्रियाये निष्फल हो जाती है।[2] जहॉ स्त्रियॉ शोक करती हैं वह कुल विनष्ट हो जाता है और जहॉ स्त्रियॉ शोक नहीं करती है वहॉ सर्वदा वृद्धि होती है।[3] अत सम्पत्ति चाहने वाले मनुष्यों को उचित है कि उत्सव और आदर के समयों पर वस्त्र, आभूषण और भोजन से स्त्रियों का सदा आदर करें।[4] स्त्रियों के श्रृंगार करने से कुल सुन्दर मालूम होता है और उनके श्रृंगार न करने से सब नीरस (फीका) लगता है।[5] पिता द्वारा उचित समय पर विवाह न कर देने पर मनु कन्या को स्वय वर चुनने की आज्ञा देते है।[6] जो कन्या उत्तम वर्ण के पुरुष को प्राप्त करती हैं उसे कुछ भी दोष नहीं है, पर जो नीच वर्ण के पुरुष का साथ करे उसे बन्द कर देना चाहिये।[7] स्मृतिकार यद्यपि दुर्गुणी स्त्री के रहते दूसरे विवाह की सलाह देते हैं, तथापि वे उसको घर से न निकालने की व्यवस्था देते है। उनके अनुसार मद्यादि का सेवन करने वाली को भी निकाल देने पर बडा अपराध लगेगा, अत उसे भी भोजन वस्त्रादि देना

---

[1] मनुस्मृति- ९/१३

[2] मनुस्मृति ३/५६

[3] मनुस्मृति-३/५७

[4] मनुस्मृति-३/५९

[5] मनुस्मृति-३/६२

[6] मनुस्मृति ९/-

[7] मनुस्मृति -८/३७९

चाहिये।[1] यदि स्त्री आज्ञाकारिणी प्रिय भाषिणी, चतुर और वीर सन्तानो को जन्म देने वाली हो तो भी पत्नी का यदि पति त्याग करे तो राज्य उस पुरुष के धन मे से तृतीयाश स्त्री को दिलाये और यदि पुरुष निर्धन हो तो भी राजनियम से स्त्री को भोजन वस्त्र दिलाना चाहिये।[2]

स्त्री के प्रति सम्मानीय भाव भी इन स्मृतिकारो ने व्यक्त किये हैं। मनु के अनुसार देवर के लिये ज्येष्ठ भाई की पत्नी गुरूपत्नी के समान होती है और छोटे भाई की स्त्री बडे भाई के लिये पुत्रवधू के समान है।[3] मनु तो स्त्री और लक्ष्मी मे कोई भेद नहीं करते हैं, क्योंकि घर बिना लक्ष्मी के शोभा नहीं पाता और लक्ष्मी बिना स्त्री के शोभित नहीं होती है।[4] मनु पुरुष शब्द की व्याख्या करते हुये कहते है कि स्त्री, अपनी देह और सन्तान मिलकर पुरुष होता है, यह वेदज्ञ पण्डित कहते हैं अर्थात जो भर्त्ता है वही भार्या है। इन दोनो मे कुछ भी भेद नहीं है।[5]

स्मृति-पुराण बौद्ध युग के बाद और मध्यकाल से पूर्व की स्त्रियों की दशा की चर्चा कर देना भी यहा अभीष्ट है। वैदिक काल से चली आ रही दीर्घकालीन स्वस्थ परम्परा मे कालानुसार जो विकृतियॉ परिलक्षित होती है, यह काल भी उसका अपवाद नहीं है, शिक्षा, विवाह, सम्पत्ति आदि व्यवस्थाओं में कोई प्रगति नहीं दिखाई देती। सातवीं शती मे मुस्लिमो के आक्रमण के साथ ही हिन्दू स्त्रियों

---

[1] याज्ञवल्क्य स्मृति विवाह प्रकरण- ७४

[2] याज्ञवल्क्य स्मृति विवाह प्रकरण- ७६

[3] मनुस्मृति - ९/५७

[4] मनुस्मृति - ९/२६

[5] मनुस्मृति ९/४५

का कष्ट और बढ गया। यद्यपि बलपूर्वक धर्मान्तरण स्त्री पुरूष दोनो मे समान था तथापि स्त्रियो को स्त्री होने का अतिरिक्त मूल्य चुकाना पडता था। १००० ई० से पूर्व की स्मृतियों मे स्त्री के बलपूर्वक सतीत्वहरण के पश्चात भी उसके सामाजिक बहिष्कार की वर्जना थी। प्रायश्चित एव शुद्धीकरण के पश्चात उनके समाज और परिवार में पुनर्प्रवेश की व्यवस्था थी। देवल स्मृति मे तो इन दुर्भाग्यशालिनी स्त्रियों के बारे मे यहॉ तक कहा गया है कि यदि वे इस प्रकार के अत्याचार से गर्भवती भी हो जाये तो भी उन्हे हिन्दू धर्म में पुनर्प्रवेश मिलना चाहिए। यह उदारवादी दृष्टिकोण १००० ई० से त्याग दिया गया। अब जो स्त्री इस्लाम धर्म मे अन्तरित की जा चुकी हो, उसके हिन्दू धर्म मे पुनर्प्रवेश की कोई गुजाइश नहीं रह गई थी। अब वे उन्हीं आक्रमणकारियो के साथ समझौता करके कष्टपूर्ण जीवन जीने को बाध्य थीं जो एक रखैल के घृणास्पद जीवन से अच्छा नहीं था।

इस काल मे स्त्रियो के सम्पत्ति सबधी अधिकारों मे अवश्य वृद्धि हुई, जिसका श्रेय सुधारवादी स्मृतिकारों, वृहस्पति प्रजापति और कात्यायन को जाता है। ये स्मृतियाँ आज उपलब्ध नहीं है और इनके सदर्भ के लिये मध्यकालीन सग्रहों का आश्रय लेना पडता है। वृहस्पति पुरुष और स्त्री को शास्त्रानुसार विधिज्ञ व्यक्तित्व मानते हैं और पत्नी के जीवित रहते हुये पति मृत नहीं कहा जा सकता है, इस मत के पक्षधर हैं। लेकिन भोज (१०५० ई०) के अनुसार नि सन्तान विधवा को पति की सम्पत्ति मे तब तक अधिकार नहीं है जब तक वह नियोग से पुत्र न प्राप्त करे। यह नियम अपने आप में घृणित था, अत समस्त सुधारवादी विचार स्वय में ही विरोधमूलक थे।

इस घटाटोप अधेरे मे भी राजपरिवारो की कुछ स्त्रियॉ एव राजकुमारियॉ शिक्षा, शासन, सैन्य सचालन की अपनी प्रतिभा से विद्युत समान क्षणिक ही सही परन्तु अपनी उपस्थिति का आभास कराती है। इनमें विजय भट्टारिका (६५० ई०), दिद्दा (११वीं शताब्दी) ने बडे-बडे राज्यो पर शासन किया। रानियो एव राजकुमारियो द्वारा नगरो के शासन का भी उल्लेख मिलता है। इनमें जयसिम्ह तृतीय की बहन अक्कादेवी (१०५० ई०), सोमेश्वर की रानी मेलादेवी (१०५० ई०), विक्रमादित्य चतुर्थ की पटरानी लक्ष्मीदेवी (११०० ई०) उल्लेखनीय है। कुतुबुद्दीन के आक्रमण का प्रतिरोध करने वाली राजा समरसी की, पत्नी कुर्मा देवी भी उल्लेखनीय है।

उक्त कालावधि को दृष्टिगत करते हुये इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि स्त्रियो की दशा मे उत्तरोत्तर ह्रास होता गया। धार्मिक, सामाजिक दोनों स्थितियो में उसका स्थान नगण्य रह गया, केवल पुरुष की अनुरजनकारी व्यवस्था के रूप मे ही उसका स्थान सुरक्षित रह सका। आर्थिक स्थिति मे अवश्य सुधार परिलक्षित होते हैं, किन्तु ये सुधार वास्तव में केवल सिद्धान्त रूप ही रहे होंगे, क्योंकि व्यवहार में इन्हें प्रयोग करना, किसी स्त्री के लिये वह भी तत्कालीन समाज में कठिन ही नहीं असम्भव भी रहा होगा। यह तो किसी रुग्ण व्यक्ति को चिकित्सा के स्थान पर मधुपान कराने के सदृश अवाछनीय है, फिर भी इसका कुछ अच्छा प्रभाव तो अवश्य पडा।

—✿—

द्वितीय अध्याय

मध्यकाल में नारी के प्रति दृष्टिकोण एवं उसकी स्थिति

वैदिक युग की प्रशस्तिमती शूर-वीर बाला मध्यकाल मे अवगुण्ठनमती नारी मे परिणत हो गई। राजनैतिक पराभव के इस युग मे साहित्य एव समाज दोनो मे नारी ने ही अपनी सर्वाधिक मर्यादा खोयी है। नैतिक मानदण्ड शिथिल हो रहे थे। तन्त्रयान एव वज्रयान मे स्त्रियो का सहज प्रवेश एव साधना मे उनकी अनिवार्यता पर बल भी उनके पतन का कारण बने। इससे उनकी आध्यात्मिक उपलब्धियॉ चाहे जो भी रही हो, लेकिन यह उनके शारीरिक एव मानसिक शोषण मे अधिक सहायक हुआ। देवदासी प्रथा के द्वारा मन्दिरो मे भी भक्ति की ओट मे वे प्रच्छन्न शोषण का पात्र बनीं। ११वीं शती के आचार्य क्षेमेन्द्र की कृतियो ' समय-मात्रिका' एव कुट्टनी मित्तम'' से तकालीन सामाजिक स्वरूप का दिग्दर्शन होता है।

आलोच्यकाल की प्रथम शती मुस्लिम आक्रमणो के आतक की शताब्दी थी। उत्तर भारत मे १४वीं शताब्दी के बाद ही मुसलमानो की सत्ता सुदृढ हा गई थी। एव दक्षिण मे वे सत्ता के लिये सघर्षरत थे।

इस अध्याय मे हम इस युग मे नारी की स्थिति का आकलन राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक एव धार्मिक दृष्टिकोण से करेगे।

(क) राजनैतिक

राजनैतिक रूप से यह युग हिन्दुओ के पराभव का है। आलोच्य काल मे केवल कुछ समय (लोदी वश के शासन की अवधि) छोडकर अधिकाश समय

सगुण एव निर्गुण साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन आशा गुप्ता पृ २७

मुगलो का ही शासन था। दिल्ली पर मुगलो का शासन था, तथापि बहुत से स्वतंत्र राज्य थे। राजस्थान, मध्यप्रदेश में राजपूतो के कई राज्य थे। बगाल, बिहार उडीसा मे अफगानो का शासन था। मराठा शक्ति भी समन्वित हो रही थी। दक्षिण मे मुस्लिमों के छोटे-छोटे कई राज्य थे।

इस प्रकरण मे अध्ययन का विषय है- राजनीति को महिलाओ ने प्रभावित किया तो किस तरह और राजनीति ने महिलाओ को किस तरह प्रभावित किया। यहॉ पर यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि मध्ययुग मे स्त्रियो की राजनीति मे भागीदारी विशेष परिस्थितियों की ही उपज है। केवल राजपरिवार की रानियॉ और राजकुमारियॉ ही राजनीति से प्रभावित थीं, साधारण स्त्रियों के लिये राजनीति मे कोई स्थान नहीं था।

प्रारम्भ मुस्लिमो से ही करते हैं, क्योकि केन्द्र मे उन्हीं का शासन था। इस्लाम मे स्त्री को पत्नी, पुत्री, बहन के रूप में सम्मान प्राप्त था और "इस्मत पनाह" एव "इफतमाब" जैसे रक्षात्मक सूचक भारी भरकम शब्द उसके विशेषण थे।[१] सईद और लोदी शासकों को छोडकर अधिकतर शासक तुर्क और मगोल वश के थे। तुर्क महिलाये अन्य महिलाओं की अपेक्षा अधिक स्वतत्रता का उपभोग करती थीं। युद्ध और शान्ति की समस्या पुरुषो की ही तरह उनके लिये भी थी।[२] अपने पुरुष सम्बन्धियो पर इनका बहुत प्रभाव था और वे महत्वपूर्ण मसलो पर अपनी राय देती थीं। फरगना के राज्य को हस्तगत करने मे बाबर के बुद्धिमान सलाहकारों में उसकी मॉ "कुतलक निगार" और बहन "खानजादे

---

[१] ग्रेट विमेन ऑफ इण्डिया के, ग्रेट मुस्लिम विमेन ऑफ इण्डिया से - पृ०-३७८

[२] ग्रेट विमेन ऑफ इण्डिया के ग्रेट मुस्लिम विमैन ऑफ इण्डिया से - पृ-३७९

बेगम'' भी थी।[1] हुमायूँ अपने घर की स्त्रियो से सलाह-मशविरा करता था और उसने उनसे मिलने के लिये तीन दिन निश्चित किये थे।

मुगलों से पूर्व सुल्तानो के शासन काल में स्त्रियो का कोई योगदान नहीं था। रजिया सुल्तान इसका अपवाद थी। गुलामवश के शासक इल्तुतमिश की पुत्री रजिया दिल्ली के सिहासन पर बैठने वाली एकमात्र स्त्री है। इल्तुतमिश पुत्रो की योग्यता के बारे मे शकित थे अत उन्होने रजिया सुल्तान को योग्य उत्तराधिकारी मानते हुये शासक नियुक्त किया। वह बुद्धिमान शासिका ही नहीं वरन् साहसी भी थी। फरिश्ता के अनुसार स्त्री के रूप मे जन्म लेने के अतिरिक्त उसमें कोई दोष नहीं थी। (स्त्री योनि में जन्म लेना भी दोष की श्रेणी मे गिना जाता था) जहॉगीर के शासन काल में नूरजहॉ का राजनीति में बहुत हस्तक्षेप था। इसका कारण जहॉगीर का राजनैतिक अकौशल एव उसका विलास-वैभव की तन्द्रा मे डूबा रहना था। नूरजहॉ फारस के दरिद्र और बहिष्कृत सामत मिर्जा घयात बेग की पुत्री थी, जिसने अपने बुद्धि कौशल एव चातुर्य के बल पर न केवल जहॉगीर के हृदय अपितु परोक्ष रूप मे साम्राज्य पर भी गयारह वर्ष तक शासन किया। उसका असली नाम ''मिहर-उन-निसा बेगम'' था जिसे जहॉगीर ने नूरमहल (महल का नूर) एव नूरजहॉ (ससार का नूर) से अभिहित किया।[2] जहॉगीर केवल उसके बाह्य गुणों से ही प्रभावित नहीं था, अपितु उसके बौद्धिक गुणो से भी प्रभावित था। भारतीय इतिहास में नूरजहॉ की तरह की कोई दूसरी स्त्री नहीं हुई जिसने अपने पति को इस तरह प्रभावित किया। वह अत्यन्त

---

[1] ग्रेट विमेन ऑफ इण्डिया के ग्रेट मुस्लिम विमेन ऑफ इण्डिया से- पृ० -३७९

[2] ग्रेट विमेन ऑफ इण्डिया- पृ०-३८४

रणकुशल भी थी। उसकी वीरता का प्रमाण उसका जहाँगीर को महावत खाँ की कैद से छुडाना है।

शाहजहाँ की पुत्री जहाँआरा बेगम (१६१३-८३) ने राजनीति मे शाहजहाँ की बहुत सहायता की। जहाँआरा में सौन्दर्य और बुद्धिमत्ता का अद्‌भुत सम्मिश्रण था। "बेगम साहिब" के नाम से प्रसिद्ध जहाँआरा ने जीवन का बहुत सा समय निराश पिता और महत्वाकाक्षी भाइयो की सेवा मे बिताया। वह बहुत दयालु थी, उसके कोष का बहुत सा भाग जरूरतमद लोगों की आर्थिक सहायता पर खर्च होता था। औरगजेब ने उसे "बादशाहे बेगम" का सम्मानजनक खिताब और सत्रह लाख रूपये सालाना वाली जागीर दी। जहाँआरा की बहन रोशनआरा का भी राजनीति मे प्रभाव था। अकबर के शासनकाल मे सलीमा बेगम, माहम अनग, हमीदाबानो का राजनीति मे प्रभाव था।

शाहजहाँ के दरबार के एक अमीर अली मरदान खान की पुत्री साहिबा जी भी कुशल शासक थी। वे काबुल के गवर्नर आजम खाँ की पत्नी थीं। अपने पति की मृत्यु के उपरान्त नया गवर्नर नियुक्त होने तक उन्होंने अफगानों के समान दुर्दान्त और सघर्षप्रिय जाति पर नियन्त्रण करते हुये शासन किया।[1]

भारत की मुस्लिम नारियो में चादबीबी (१५४७-९९) अद्वितीय स्थान रखती हैं। वे अहमद नगर के हुसैनशाह की पुत्री और बीजापुर के अली आदिल शाह की पत्नी थीं। उनके पति उनकी बुद्धिमत्ता से प्रभावित थे और सभी शासकीय मामलो में उनका परामर्श लेते थे। वे घोडे पर सवार होकर सैन्य शक्ति का

---

[1] मध्ययुगीन हि०सा० में नारी भावना- पृ०- ३२।

सचालन करती थीं। १५८० मे एक हिजडे द्वारा अली आदिलशाह की हत्या कर दिये जाने पर, इब्राहिम आदिल शाह की सरक्षिका के रूप में शासन की पूरी बागडोर उनके हाथ में आ गई। अहमद नगर और बीजापुर में उसे अनेक बार विश्वासघात और षड्यन्त्रों का सामना करना पडा। अहमदनगर में वहा के अमीर मियान मन्झू ने शाहजादा मुराद से सहायता मॉग कर किले पर घेरा डाल दिया। चॉदबीबी की दूरदर्शिता एव सैन्य सचालन से उन्हे अपना घेरा उठाना पडा। मुराद उनकी वीरता एव साहस से इस प्रकार प्रभावित हुआ कि उसने उन्हे "चॉदसुल्तान" की पदवी दी और अहमद नगर छोड दिया।[1] अपने जीवन के इन उतार-चढावों में वह सदैव जागरूक और प्रयत्नशील रही। अपने ही एक दास के विश्वासघात के कारण मुगल सेना-नायकों से लोहा लेने वाली इस वीर नारी का जीवन असफलता की करूण गाथा मात्र रह गया।[2]

सम्पूर्ण मध्यकाल हिन्दू जाति के लिये पराभव का काल है, तथापि कुछ स्त्रीरत्न उत्तरोत्तर अवनति के इस काल में भी अपने प्राजल आदर्श, प्रशासनिक क्षमता एव सैन्य सचालन की योग्यता से क्षणिक चमक पैदा करते हैं। यह आश्चर्यजनक बात है कि हिन्दू स्त्रियॉ ऐसे समय में स्वय को सफल शासक सिद्ध करती हैं, जब उनका सामान्य सामाजिक स्तर गिर गया था। सुदूर उत्तर से दक्षिण एव पूर्व से पश्चिम तक ऐसी स्त्रियों के उदाहरण इतिहास में उपलब्ध हैं जिन्होंने न केवल शासन ही किया, बल्कि युद्ध की उत्कट विभीषिका भी झेली है।

---

[1] ग्रेट विमेन ऑफ इण्डिया पृ०-३९२

[2] मध्ययुगीन हि० सा० में नारी भावना- पृ०-३१

जीजाबाई (१५९४-१६७४) अहमद नगर के सरदार जाघवराव की पुत्री और पूना एव सुपा के जागीरदार मालोजी के पुत्र शाहजी की पत्नी थीं। उनके पिता दिल्ली के मुगल शासको के पक्षधर थे और पति निजाम के दृढ समर्थक। जीजाबाई को पिता और पति के बीच कर्त्तव्य का चुनाव करना था और उन्होने जन्मभूमि के प्रति अपना कर्त्तव्य स्वीकारते हुये पति का पक्ष ग्रहण किया। अन्य अनेक भावनाओ के समक्ष कर्त्तव्य निर्वाह का उनका दृढनिश्चय साहस, धैर्य और आत्मसम्मान उनके चरित्र के वे महान गुण हैं, जिनका उन्होंने मराठा शक्ति के उन्नायक शिवाजी मे पूर्णतया आरोपण किया। शासन के सिद्धान्त भी शिवाजी ने उन्हीं से सीखे थे। शाह जी की अनुपस्थिति मे पूना की जागीर का प्रबन्ध उन्हीं के हाथ मे था।

हिन्दू जाति मुस्लिमों के द्वारा बलपूर्वक धर्मान्तरित की जा रही थी। एक बार जब किसी हिन्दू का मुस्लिम धर्म में अन्तरण हो जाता था तो उसका पुन हिन्दू धर्म में प्रवेश असम्भव था, वह सदा के लिये बहिष्कृत हो जाता था, इस अपकारक विचार को गलत सिद्ध करने के लिये उन्होंने इस्लाम धर्म में अन्तरित बाला जी निम्बालकर को पुन हिन्दू धर्म में प्रवेश देकर उससे अपनी पौत्री सरवूबाई का विवाह किया।[1] यह उनके हिन्दू धर्म के उन्नयन के लिये किये गये प्रयासो का प्रमाण है।

ताराबाई (१६७५-१७६१) हम्बीरराव मोहिते की पुत्री और शिवाजी के पुत्र राजाराम की पत्नी थीं। वे राजाराम से अधिक योग्य मानी जाती हैं। बुद्धिमत्ता

---

[1] ग्रेट विमेन इन महाराष्ट्र पृ०-३८५
कमला बाई देशपाण्डे।

और प्रशासकीय गुणो से सम्पन्न ताराबाई महत्वाकाक्षी स्त्री थी। उनके साहस और वीरता के ही कारण राजाराम की मृत्यु के सात वर्ष उपरान्त तक औरगजेब दक्षिण के राज्य पर अधिकार न कर सका। उनके सैन्य सचालन एव प्रबन्धन के उत्तम गुणो के कारण मुगल सेना किले में प्रवेश न कर सकी।

इन्दौर की अहिल्याबाई (१७३५-९५) भी कुशल प्रशासिका थीं। वे अल्पायु मे ही विधवा हो गई थी। ससुर मल्हारराव की मृत्यु के पश्चात अपने पुत्र मालेराव की सरक्षिका नियुक्त की गई। मालेराव की मृत्यु के पश्चात् राज्य का सम्पूर्ण प्रबन्ध उनके हाथ मे आ गया।[१] उसकी चरित्र विषयक समीक्षा करते हुये कहा जा सकता है कि अपने सीमित क्षेत्र में वह अत्यन्त पवित्र एव आदर्श शासक थीं।[२]

गोडवाने के माडलिक साम्राज्य की स्वामिनी रानी दुर्गावती केवल जननी जन्मभूमि हित आत्मोत्सर्ग करने वाली वीरागना ही नहीं थी, प्रत्युत शासन और राजनीति में भी निपुण थी। पति की मृत्यु के पश्चात उसने साहस और निपुणता के साथ शासन किया। आसफ खॉ के आक्रमण का वीरता से प्रतिरोध कर उसने मुगल आक्रमणकारियों को हराया।[३] उसके राज्य में ७०००० ग्राम और कस्बे थे। उसका शासन प्रबन्ध सम्राट अकबर से भी अच्छा था।[४]

---

१ ग्रेट हिन्दू विमेन इन महाराष्ट्र पृ०-३५९

२ मध्ययुगीन हि० सा० में नारीभावना- पृ० ३३

३ मध्ययुगीन हि० सा० में नारीभावना- पृ० ३२

४ ग्रेट विमेन ऑफ इण्डिया- पृ०-४३

मेवाड के राणा सागा की विधवा रानी कर्णावती का व्यक्तित्व भी देशप्रेम के गौरव से अभिभूत था। उन्होंने उदास सामत वर्ग मे पुन देश भक्ति की भावना जाग्रत की, और गुजरात के सुल्तान बहादुरशाह के चित्तौड मे आक्रमण का कडा मुकाबला किया।[1] राणा सॉगा की दूसरी पत्नी जवाहिर बाई ने भी सेना की प्रधान के रूप मे युद्ध करते हुये किले को बचाने के लिये प्राणोत्सर्ग किया। इस प्रसग मे फत्ता की मॉ भी स्मरणीय है उन्होने अपने सोलह वर्षीय पुत्र के साथ युद्धस्थल मे जाकर अपूर्व साहस का परिचय दिया।[2]

दक्षिण मे केलडी पर दो भाइयो भद्रप्पा नायक एव सोमेश्वर नायक का राज्य था। १६६१ तक दोनो ने साथ-साथ शासन किया। चेनम्मा जी सोमेश्वर की पत्नी थीं। उनमे प्रशासनिक क्षमता थीं, यही कारण है कि उनके पति ने स्वय के एव अपने भाई के शासन काल मे भी शासन सूत्र उन्हे सभालने की अनुमति दी।[3] १६७७ मे पति की मृत्यु के पश्चात उन्होंने २५ वर्षों तक बुद्धिमानी से शासन किया। ''केलडी नृप विजय'' और 'शिव तत्व रत्नाकर से उनके बारे मे वृहद् सूचना मिलती है। उन्होने शिवा जी के पुत्र राजाराम को शरण देकर अतीव साहस का परिचय दिया था। राजाराम औरगजेब के सैनिको द्वारा पीछा किये जाने पर रायगढ से भागकर आये थे और जब मुगलो ने उन्हे पकडने के लिये उनके राज्य मे घुसने की कोशिश की तो उन्हे हार का सामना करना पडा।

---

[1] ग्रेट विमेन ऑफ इण्डिया- पृ०-४३

[2] मध्यकालीन भारतीय सस्कृति - पृ०-३९
डॉ० दिनेश चन्द्र भारद्वाज।

[3] ग्रेट हिन्दू विमेन इन साउथ इण्डिया पृ०-३३९

औरगजेब उनकी वीरता से इतना प्रभावित हुआ कि उसने उन्हे बहुमूल्य उपहार भेजकर उनका सम्मान किया।[1]

रानी उमायम्मा का भी उल्लेख मिलता है जिन्होने १६७८-८४ ई० तक आटिगल और त्रावणकोर पर सम्मिलित रूप से शासन किया।[2]

मगम्मा चदगिरी के नायक तुपाकुलालिगम और तिरूवेल्लोर की वेश्या की बेटी थी। मगम्मा ने मदुरा के चोक्काथनायक से विवाह किया था, और पति एव पुत्र की मृत्यु के पश्चात अपने पौत्र विजयरग चोक्काथ नायक की सरक्षिका के रूप मे शासन किया।[3]

पूर्व मे तिरहुत के राजा शिवसिह के छोटे भाई पद्मसिह की मुख्य पत्नी विश्वास देवी अत्यन्त प्रवीण और सुसस्कृत महिला थी। उन्होने पति के जीवनकाल मे एक राज्य प्रतिनिधि के रूप मे सफलतापूर्वक योगदान दिया।

१६वीं श० के मध्य मे राजा सुकलेन मग की पत्नी चाउचिग असम के इतिहास मे पहली महिला राजनीतिज्ञ हैं। उनकी सलाह पर दरबार के तीसरे सदस्य के रूप मे 'वरपात्र'' का पद सृजित किया गया। गहरी खाई के साथ दुर्ग का निर्माण भी उन्हीं की सलाह पर हुआ था।[4]

---

1 ग्रेट हिन्दू विमेन इन साउथ इण्डिया पृ०-३३९
2 ग्रेट हिन्दू विमेन इन साउथ इण्डिया पृ०-३३९
3 ग्रेट हिन्दू विमेन इन साउथ इण्डिया पृ०-३३९
4 ग्रेट हिन्दू विमेन इन ईस्ट इण्डिया पृ०-३६९
5 ग्रेट हिन्दू विमेन इन ईस्ट इण्डिया पृ०-३६९

निष्कर्षत हम कह सकते है कि मध्ययुग के गहन तिमिराच्छन्न समय मे भी स्त्रियॉ पुरुषो की केवल राजनीतिक सलाहकार ही नहीं होती थीं अपितु समय आने पर शासन एव युद्ध जैसी स्थिति से अधिक योग्यता एव क्षमता से रूबरू होती थीं। इसका कारण सामान्य बालिकाओ की अपेक्षा उनका विशेष राजनैतिक परिवेश मे पालन-पोषण एव शिक्षा है।

(ख) सामाजिक

आलोच्य युग मे स्त्री का सामाजिक जीवन अत्यन्त ही क्लेश, उपेक्षा एव विषमताओ का पर्याय है। राजनीतिक अस्थिरता एव पराभव के युग मे सबसे त्रासद स्थिति स्त्रीवर्ग की ही होती है। मध्य युग भी इससे अछूता न रहा। अब वह अपहरण एव क्रय-विक्रय की वस्तु बन गई। रूपवती स्त्रियो की प्राप्ति के लिये युद्ध होते थे और उनकी प्राप्ति हो जाने पर जीवन का विलास पक्ष अपने चरमोत्कर्ष पर होता था। दोनो ही स्थितियॉ नारी को मनुष्य की कोटि मे नहीं, वस्तु रूप मे प्रस्तुत करती हैं।

मुस्लिम राज्य की स्थापना के फलस्वरूप सामान्य रूप में हिन्दुओ की दशा बहुत शोचनीय हो गई थी।[1] हिन्दुओं की दुर्दशा का अनुमान बरनी के इन शब्दो से हो जाता है, 'वे हिन्दू खिराजगुजार कहे जाते हैं, और जब तहसीलदार उनसे चॉदी मॉगता है तो वे बिना उज्र किये बडी नम्रता तथा आदर के साथ सोना भेट करते हैं। जब कर वसूलने वाला अधिकारी हिन्दुओ के मुँह मे थूकना

---

[1] मध्यकालीन भारत- पृ०-२७२ हरिशकर शर्मा।

चाहे तो उन्हे बिना किसी हिचकिचाहट के अपना मुँह खोल देना चाहिए।[1] हिन्दू प्रजा को मुसलमान शासक की पीडन नीति से छुटकारा नहीं था, उनके व्यथित जीवन का उपयोग केवल कर चुकाने वाली ईकाइयो के रूप मे रह गया था।[2]

हिन्दुओ की दशा इतनी शोचनीय हो गई थी कि उनकी स्त्रियो को मुसलमानो के घर सेवा कार्य के लिये जाना होता था।[3] तुर्क सुल्तानो को हिन्दू सुन्दरियो को अपनी बेगम बनाने का विशेष शौक था। अपनी इस इच्छा की पूर्ति वे उच्च सामन्तो के माध्यम करते थे। ये सामन्त अच्छे घराने की सुन्दर लडकियो को साम-दाम-दण्ड-भेद की नीति द्वारा फॅसाकर, सुल्तानो की सेवा मे प्रस्तुत करते थे। सर्वप्रथम हिन्दू लडकियो को इस्लाम धर्म मे परिवर्तित किया जाता था, त्तत्पश्चात उनसे विवाह कर लिया जाता था।[4] दासियो के रूप मे बिकने को भी वे बाध्य थीं।[5] विदेशियो के युद्धो के ही कारण नहीं, वरन् राज्यो के आन्तरिक युद्धो के कारण भी उनकी दशा शोचनीय थी। सयोगिता-अपहरण केवल इतिहास की एकमात्र घटना नहीं है, कन्या अपहरण उस युग मे छोटी सी बात थी। अत अराजकतापूर्ण तथा उच्छृखल राजनीति तथा शासन से स्त्रियों की रक्षा के लिये और उनके जीवन को सुरक्षित बनाने के लिये आवश्यक था कि उसे घर की दीवारो मे बन्दी बनाकर रखा जाता, इस प्रकार राजनीतिक परिस्थितियॉ नारी के जीवन क्षेत्र को सकुचित बनाने मे प्रधान कारण बनीं।[6] मुस्लिम आक्रमण ईसा की ७वीं शती से प्रारम्भ होते हैं, और स्त्रियो की दुर्दशा का अध्याय भी यहीं से

---

१ मध्यकालीन भारतीय सभ्यता एव सस्कृति - पृ०-४६ दिनेश चन्द्र भारद्वाज

२ मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियॉ - पृ०-४३ डॉ० सावित्री सिन्हा।

३ मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियॉ पृ०-४३ डॉ० सावित्री सिन्हा।

४ मध्यकालीन भारत।य सभ्यता एव सस्कृति- पृ०-१५ डॉ० दिनेश चन्द्र भारद्वाज।

५ मध्यकालीन भारत- पृ०-२७२ हरिशकर शर्मा

६ मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियॉ पृ०-४४ डॉ० सावित्री सिन्हा

प्रारम्भ होता है, बलपूर्वक धर्मान्तरण उनके लिये कष्टकारी सिद्ध हुआ। पहले की स्मृतियो मे बलात्कृत स्त्री का सामाजिक बहिष्कार नहीं होता था, किन्तु यह उदारवादी दृष्टिकोण मध्यकाल मे पूर्णतया समाप्त हो गया यह स्त्रियो की दुर्दशा पर समाज का पटाक्षेप ही है।

सामाजिक सन्दर्भ मे स्त्रियो की दशा पर विचार करते समय निम्नाकित बिन्दुओ पर चर्चा करना आवश्यक है।

(अ) परिवार

(ब) विवाह

(स) शिक्षा

(द) पर्दाप्रथा

(य) वेश्यावृत्ति

(र) सती एव जौहर।

(अ) परिवार

मध्ययुग मे सयुक्त परिवार प्रणाली थीं। वे प्रत्येक अवस्था मे पुरुष पर अवलम्बित थीं। सामन्तवादी व्यवस्था मे नारी का स्थान दोयम दर्जे का था। उनका एकमात्र कर्त्तव्य पति सेवा था। स्मृतिकारो ने इसमे बहुत योगदान दिया। स्मृतिकारो के वचन समाज मे बहुत गहरे पैठकर लोकोक्तियो का स्थान पा चुके थे। जिनमे स्त्रियो का एकमात्र कर्त्तव्य पति सेवा और पति का अनुरजन था। मनु

---

[1] ग्रेट विमेन ऑफ इण्डिया पृ०-४४

के अनुसार, "पति का उल्लघन करने से स्त्री की इस लोक मे निन्दा होती है और मरने के बाद वह सियार योनि मे उत्पन्न होती है, तथा बुरे-बुरे रोगो से पीडित होती है।[1] जो स्त्री पिता भाई आदि लोगो के अभिमान पर पति की आज्ञाकारिणी नही होती उसे राजा बहुत से आदमियो के सामने कुत्ते से नुचवावे।[2] ऐसे भयोत्पादक मत जिस समाज मे प्रचलित हो, और जिन अशिक्षित स्त्रियो के लिये इन्हे रचा गया हो, उस वर्ग पर इनका प्रभाव न पडे, यह तो अत्यन्त आश्चर्य की बात होती, अत प्रभाव पडा और ऐसा पडा कि स्त्रियो का कर्त्तव्य पति सेवा ही रह गया। पति की मृत्यु होते ही या तो वे जल कर सती हो जाती थीं और यदि जीवित रहती थीं तो अपना स्वरूप ही बिगाड लेती थीं। सिर मुडा कर धर्म चर्चा एव अनेकानेक व्रत उपवासो मे अपने को सलग्न रखती थीं।

पुत्री का जन्म अशुभ माना जाता था। जिस स्त्री के पुत्र ही पुत्र होते थे, उसे भाग्यवान कहा जाता था। पुत्र के उत्पन्न होने पर जितना हर्ष होता था, उतना ही कष्ट पुत्री जन्म पर होता था। राजपूताने के इतिहास मे कर्नलटाड का मत है कि, "वह पतन का दिन होता था, जब एक कन्या का जन्म होता था। पुत्र जन्म पर दावते होती थीं, मगलगीत गाये जाते थे, परन्तु कन्या के जन्म लेने पर दु ख के से बादल छा जाते थे। मुख्यतया यदि एक स्त्री बार-बार कन्याओ को जन्म देती थी तो उसे पग-पग पर अपमानित होना पडता था और कभी-कभी उसे तलाक भी दे दिया जाता था।[3] कुछ वर्ग जैसे राजपूतो मे तो

---

[1] मनुस्मृति - ९/३०

[2] मनुस्मृति - ८/३७

[3] मध्यकालीन भारतीय सस्कृति पृ०-३२ दिनेश चन्द्र भारद्वाज

जन्मते ही लडकी को मार डालते थे। गुजरात मे भी यह प्रथा ''दूधपीती' के नाम से प्रचलित है।[1]

गृहकार्य की छुद्र सीमा मे बॉध दी गई नारी सामाजिक, सास्कृतिक क्षेत्र से तो बहिष्कृत हुई ही परिवार मे भी उसका स्थान आदरणीय नहीं रह गया।

(ब) विवाह

कन्या के माता-पिता कन्या का विवाह छ से दस वर्ष की आयु तक कर देने की कोशिश करते थे, क्योकि शास्त्र वचन इससे बडी आयु की कन्या का विवाह धर्म विरूद्ध कहते है-

अष्ट वर्षा भवेद् गौरी, नव वर्षा तु रोहिणी ।

दश वर्षा भवेद् कन्या, उर्ध्वं रज स्वला ।।

अत समाज मे बाल विवाह की प्रथा प्रचलित थी। कुछ विवाह तो गोदी में अथवा गर्भस्थ शिशुओं तक के हो जाते थे। परिणामस्वरूप बाल विधवाओ की सख्या समाज मे अत्यधिक होती थी।[2]

शास्त्र वचन के अतिरिक्त मुस्लिमों का आक्रमण भी बाल विवाह का कारण था युद्ध के पश्चात वे स्त्रियों के अपहरण से बिल्कुल नहीं हिचकिचाते थे, इस कारण भी तरूण होने से पूर्व ही उन्हें विवाह बधन में बॉध दिया जाता था। आक्रमणकारियो के लिये विवाहित और अविवाहित मे कोई अधिक अन्तर का

---

[1] सतकाव्य मे नारी डॉ० कृष्णा गोस्वामी। पृ०-१७१

[2] सत काव्य मे नारी - पृ०-१७१, डॉ० कृष्णा गोस्वामी।

कारण दिखाई नहीं देता तथा इस विषाक्त प्रथा का अकुर पौरुष की चरम और हेय स्वार्थवृत्ति मे ही फूटता हुआ दिखाई देता है। बालविवाह एक दोषपूर्ण प्रणाली थी। अकबर ने इस प्रथा पर प्रतिबन्ध लगाने के लिये आदेश दिया था कि कोई भी व्यक्ति अपनी लडकी का विवाह बारह वर्ष एव लडके का विवाह सोलह वर्ष से कम आयु मे न करे।[2] विवाहो मे दहेज का भी प्रचलन था। उच्च जातियो मे कन्या पक्ष वाले दहेज देते थे। कुलीन वर्ग के लोग दहेज के लोभ के कारण भी कई विवाह करते थे।[1] बहुविवाह प्रथा भी चलन मे थी। हिन्दू मुसलमान दोनो म ये प्रथाये समान रूप से प्रचलित थीं। बहुविवाह प्रथा ने भी स्त्रियो का पक्ष बिल्कुल हल्का कर दिया, क्योकि जब कोई वस्तु सुलभ हो जाती है तो उसका मूल्य कम हो जाता है और यही स्त्रियो के सन्दर्भ मे हुआ। प्राय पुरुष सुन्दरी दासी को पत्नी की अपेक्षा अधिक महत्व दते थ। आचार के बधन पुरुष के लिये न के बराबर और स्त्रियो के लिये अत्यन्त कठोर थ। स्त्रियो का पुनर्विवाह हिन्दुओ मे नहीं होता था।

(स) शिक्षा

स्त्रियो की शिक्षा के प्रति लोग जागरूक नहीं थ। उनकी शिक्षा के लिये अलग से कोई प्रबन्ध नहीं था। बालक-बालिकाये साथ-साथ प्राथमिक पाठशालाओ मे अध्ययन करते थे। प्राथमिक स्तर के पश्चात बालिकाओ की शिक्षा

मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियॉ पृ० ४४

मध्यकालीन भारतीय सस्कृति- पृ०-३५

[3] मधकालीन भारत- पृ०-४०६ पी०डी० गुप्ता और एम०एल० शर्मा।

की कोई व्यवस्था नहीं थी।[1] जो लोग अपनी कन्याओ को शिक्षित करना चाहते थे, वे घर पर ही उनके लिये शिक्षा का प्रबन्ध करते थे।[2] मध्यवर्ग की विधवा स्त्रियॉ आस-पडोस की बालिकाओ को पुण्य के निमित्त शिक्षित करती थीं। गयासुद्दीन ने सारगपुर मे एक मदर से की स्थापना की थी, जिसमे स्त्रियो को नृत्य गान, सीना-पिरोना, बुनना आभूषण गढना, धर्मकला तथा सैन्य शिक्षा दी जाती थी।

हिन्दुओ मे इस काल मे केवल राजपूत और ब्राह्मण स्त्रियो मे ही शिक्षा का प्रचार था। नर्तकी वर्ग एव वेश्याओ मे ही शिक्षा एव ललित कलाओ के प्रचार के कारण शिक्षित होना असम्मान की दृष्टि से देखा जाता था।[3] राजपूत परिवारो मे स्त्रियो मे शिक्षा अनेक स्तरो पर प्रचलित थी। वे केवल साक्षर ही नहीं अपितु शासन, प्रबन्धन एव सैन्य सचालन मे भी उतनी ही निपुण होती थीं। इसका कारण उनकी शिक्षा के लिये किये गये समुचित प्रबन्ध एव उनके विवाह की आयु (१६-१७ वर्ष) का सामान्य बालिकाओ की विवाह की आयु से अधिक होना था। स्त्रियो की अशिक्षा का एक कारण पर्दे की प्रथा का प्रचार और सार्वजनिक जीवन मे उनकी हीनतर स्थिति भी थीं, तथापि स्त्री शिक्षा के बहुत से उदाहरण हैं। रजिया सुल्तान विदुषी महिला थी, उसने अश्वारोहण, युद्धकला आदि की विशेष शिक्षा ली थी, वह विद्वानो को आश्रय भी देती थी। हुमायूँ की बहन

---

[1] मध्यकालीन भारतीय सभ्यता एव सस्कृति- पृ०-१७४, डॉ० दिनेश चन्द्र भारद्वाज।

[2] मध्यकालीन भारतीय सभ्यता एव सस्कृति- पृ०-१५९ डॉ० दिनेश चन्द्र भारद्वाज।

[3] ग्रेट विमेन ऑफ इण्डिया पृ०-४२

[4] ग्रेट विमेन ऑफ इण्डिया- पृ०-४३

[5] मध्यकालीन भारतीय सभ्यता एव सस्कृति- पृ०-१५९, डॉ० दिनेश चन्द्र भारद्वाज।

गुलबदन बेगम ने ''हुमायूँनामा'' लिखा। जहाँआरा बेगम, जिबुन्निसा उच्च कोटि की कविता करती थी।[1] जिबुन्निसा के पास तो स्वय का एक पुस्तकालय था।[2]

हिन्दू स्त्रियो मे राम भद्राम्बा ने सस्कृत भाषा मे ''रघुनाथ अभ्युदय'' की रचना की। मधुरवाणी नामक स्त्री ने आन्ध्रभाषा मे रामायण का अनुवाद किया।[3] राजकुमारी विद्या एक महान विदुषी थी। वह दर्शन, धर्म पर अधिकार पूर्वक वाद-विवाद करती थी। रूक्मिणी नामक स्त्री, व्याकरण, पुराण तथा स्मृति की विद्वान थी, वेदो की व्याख्या करने में निपुण थी।[4] इन उल्लेखनीय नामों के होते हुये भी इतना तो स्वीकार करना ही पडेगा कि औसत स्त्रियाँ अशिक्षित थीं। स्त्रियो की शिक्षा के प्रति जागृति नहीं थी।

(द) पर्दा

मध्यकाल मे हम एक अन्य प्रथा का प्रचलन बहुतायत में देखते हैं। मध्यकाल से पूर्व इसका अधिक प्रचलन नहीं था। पर्दा प्रथा कहाँ से प्रारम्भ होती हैं इस सबध में दो मत हैं। एक मत यह है कि पर्दा प्रथा मुस्लिमों के सम्पर्क से आई और दूसरा मत यह है कि पर्दा प्रथा हिन्दुओं में पहले से विद्यमान थी। डॉ० वाहिद मिर्जा इस मत के समर्थक हैं। इसके लिये वे सामाजिक रीतिरिवाजों और राजपूत प्रभाव को कारण मानते हैं।[5] वस्तुत भारत में अभिजात वर्ग की स्त्रियाँ

---

[1] ग्रेट मुस्लिम विमेन ऑफ इण्डिया- पृ०-३८८ मुहम्मद वाहिद मिर्जा

[2] मध्यकालीन भारतीय सभ्यता एव सस्कृति- पृ०-१५९, डॉ० दिनेश चन्द्र भारद्वाज।

[3] मध्यकालीन भारतीय सस्कृति- पृ०-३७, डॉ० दिनेश चन्द्र भारद्वाज।

[4] मध्यकालीन भारतीय सभ्यता एव सस्कृति- डॉ० दिनेश चन्द्र भारतद्वाज- पृ०-१७४

[5] मध्यकालीन भारतीय सस्कृति - पृ०-२७ डॉ० निदेश चन्द्र भारद्वाज।

अत पुर मे रहती थीं। सम्मान स्वरूप गुरुजनों के समक्ष अवगुण्ठन से मस्तक ढक लेती थीं।[1] (अभिज्ञानशाकुन्तलम् में शकुन्तला राजसभा में गुरुजनो के समक्ष घूँघट मे जाती है।) किन्तु एक प्रथा के रूप में पर्दे का प्रारम्भ मुसलमानों के शासनकाल मे हुआ।[2] कृषक एव निम्न वर्ग की स्त्रियॉ किसी प्रकार का अवगुण्ठन धारण नहीं करती थीं, अपरिचित के समक्ष वह अपने मुख को धोती के किनारे से ढक लेती थीं।[3] दक्षिण में राज परिवारों को छोडकर पर्दाप्रथा अप्रचलित थीं। उच्च वर्ग में पर्दे को सम्मान से देखने की प्रवृत्ति बढ रही थी। पूर्ण रूपेण वस्त्रों से आवृत्त, पर्दे पडी हुई डोलियो में यात्रा करने वाली मुस्लिम स्त्रियॉ हिन्दू अभिजात वर्ग के लिये आदर्श बन जाती थीं।[4] फिरोज शाह ने पर्दा प्रथा को सार्वजनिक रूप से लागू किया था। अकबर ने अपने शासन काल में आज्ञा दी थी कि, यदि कोई तरुणी गलियों और बाजार में बिना पर्दे या घूँघट के दिखाई दे, अथवा जिसने अपनी इच्छा से पर्दे को तोडा हो तो उसे वेश्यालय ले जाया जाय और पेशे को अपनाने दिया जाय।[5]

स्त्रियो से पर्दा टूट जाना, उन पर विपत्ति का पहाड टूट पडना था। काबुल के गवर्नर अमीर खॉ ने अपनी बेगम को मात्र इसीलिये छोड़ दिया था कि उससे दुर्घटना वश पर्दा टूट गया था। एक बीमार स्त्री का मुख भी कोई वैद्य या हकीम

---

१ पोजीशन ऑफ विमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन पृ०-२४४
ए०एस० अल्टेकर।

२ पोजीशन ऑफ विमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन पृ०-२४४
ए०एस० अल्टेकर

३ मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में नारी भावना पृ०-३८
डा० उषा पाण्डेय।

४ मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में नारी भावना पृ०-३८
डॉ० उषा पाण्ड़ेय

५ मध्यकालीन भारतीय सस्कृति पृ०-३२ डा० निदेश चन्द्र भारद्वाज।

नहीं देख सकता था। अनुमान तथा किसी विशेष प्रणाली द्वारा उनका इलाज किया जाता था। राजस्थान मे पर्दाप्रथा नाम मात्र को थी। राजपूत स्त्रियॉ आवश्यकता पडने पर युद्ध के मैदान मे भी जाती थीं। मुसलमान बेगमो और शहजादियो मे नूरजहॉ और रजिया सुल्तान ने पर्दे का प्रयोग नहीं किया था। हिन्दू नारी ने तो विवशतावश विजेताओ की कामलोलुप दृष्टि से बचने के लिये पर्दे का वरण किया था।[1] किसी एक कारण को इसके लिये उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है। बहुत से कारणो ने इसके लिए पृष्ठभूमि तैयार की।

(य) वेश्यावृत्ति

समाज मे नियमो एव प्रतिबन्धो से रहित स्त्रियो का एक वर्ग ऐसा भी था जिसे गणिका या वेश्या कहते थे। युग की विलास-वासना जन्य प्रवृत्ति के कारण इनकी सख्या बढती गई। मुसलमान बादशाहो की हरम प्रथा से भी इसे प्रोत्साहन मिला। वे धनवानो के लिये सगीत और नृत्य के माध्यम से मनोरजन का पर्याय थीं। सम्राट अकबर ने वेश्यावृत्ति पर प्रतिबन्ध लगाने के लिये अनेक प्रयास किये। उन्होने वेश्याओ और नर्त्तकियो को यह आज्ञा दी कि वे या तो किसी पुरुष से विवाह कर ले अथवा साम्राज्य छोडकर चली जाये। उनके लिये उसने ''शैतान पुरी'' नामक बस्ती बसाकर रहने का निर्देश दिया।

---

[1] मध्यकालीन भारत- पी०डी० गुप्ता और एम०एल० शर्मा पृ०-४०

[2] मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य मे नारी भावना पृ०-३९
डॉ० उषा पाण्डेय।

(र) सती एवं जौहर

वैदिक काल मे पति की मृत्यु के पश्चात प्रतीकात्मक आत्मबलिदान करना पडता था। इस प्रतीकात्मक सहमरण की प्रथा ने कालान्तर मे सती प्रथा का रूप ले लिया जिसमे स्त्री अपने मृत पति के साथ वास्तव मे जलकर भस्म हो जाती थीं[1] विधवा जीवन की लाक्षना एव तिरस्कारपूर्ण जीवन ने उन्हे पति के साथ ही जल जाने को विवश किया। मृत्यु के पश्चात पति भक्ति के गौरव से विभूषित होने वाली नारी लौकिक कष्टो के निवारण हेतु इस वीभत्सता एव भयकरता का वरण करती थीं। वास्तव मे उस समय नारी का मूल्य एक ' वस्तु से अधिक नहीं था, और ऐसी वस्तु को जिसका उपभोक्ता मर गया हो, जल कर क्षार हो जाना ही उचित है। इस प्रकार ससार मे साथ देने वाली सदधर्मिणी को पुरुष बलात् स्वर्ग मे भी ले जाकर वहॉ उससे अपनी सेवा स्वीकार कराता था।

जौहर की प्रथा का प्रचलन राजपूत वर्ग की स्त्रियो मे था। शत्रु द्वारा आक्रमण किये जाने पर जीत की आशा न रहने पर राजपूत स्त्रियॉ जौहर द्वारा प्राणोत्सर्ग करती थीं। इस प्रथा पर राजपूत गर्व करते थे, इससे उनकी स्त्रियॉ शत्रु के हाथ में पडने से बच जाती थीं।

सामाजिक सन्दर्भ मे स्त्रियो की दशा पर उपर्युक्त बिन्दुओ के माध्यम से विचार करते हुये कतिपय कारणो को उसकी सामाजिक दुर्दशा के लिये उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। सामन्तीय प्रभाव मे सवर्धित विलासिता की

---

[1] भारत का इतिहास- रोमिला थापर - पृ०-३१

[2] मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियॉ- पृ०-४५ डॉ० सावित्री सिन्हा

प्रवृत्ति, अशिक्षा, पर्दे का प्रसार एव स्वय स्त्रियो द्वारा भी स्वय को पुरुषो की अपेक्षाहीन समझने की प्रवृत्ति उसकी इस दशा का कारण थी।[1]

(ग) आर्थिक

ऐश्वर्य एव वैभव की चकाचौध से दीप्त मध्ययुग मे नारी की आर्थिक दशा बहुत अच्छी नहीं थीं। शिक्षा से रहित, घर की चहारदीवारी मे कैद नारी के व्यक्तित्व विकास के लिये विशेष अवसर नहीं थे। समाज में धन के बटवारे मे घोर विषमता भी एव समाज उच्च, मध्य और निम्न वर्ग मे विभाजित था। निम्न वर्ग की स्त्रियॉ पति के साथ खेत मे परिश्रम करतीं थीं एव अन्य सहायक धन्धे भी करती थीं। वे आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बिनी कही जा सकती थीं। इस वर्ग की स्त्रियॉ ताम्बूलवाहिनी चॅवरवाहिनी, पुषवाहिनी आदि के रूप मे बादशाहो के हरम मे नौकरियॉ पाती थीं। राजमहलो के विलासपूर्ण वातावरण मे उन्हे अपने चरित्र की रक्षा कर पाना मुश्किल तो अवश्य होता होगा।[2] हिन्दू अमीर भी कुछ दासियॉ आमोद-प्रमोद के लिये रखते थे। दक्षिण के मन्दिरो में, देवदासी प्रथा का प्रचलन था। ये देवदासियॉ मन्दिरो मे नाचने-गाने के लिये रखी जाती थीं।[3] उच्च वर्ग की स्त्रियो के लिये जीविकोपार्जन का कोई साधन नहीं था, उसे इसकी आवश्यकता भी नहीं थीं, किन्तु दुर्भाग्य में पडी हुई उच्च वर्ग की स्त्री चरखा कताई एव बुनाई से जीविकोपार्जन करती थी।[4] व्यवसाय के रूप में सगीत केवल

---

१ मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य मे नारी भावना- पृ०-३५ डॉ० उषा पाण्डेय।

२ ग्रेट विमेन ऑफ इण्डिया-पृ०-४२

३ मध्यकालीन भारतीय सभ्यता एव सस्कृति, पृ०-४१
डॉ० दिनेश चन्द्र भारद्वाज।

४ ग्रेट विमेन ऑफ इण्डिया- पृ०-४२

वेश्याये ही सीख सकती थीं। वेश्यावृत्ति एक घृणित व्यवसाय था और वेश्याये अधिकतर शहर से दूर रहा करती थीं।[1] स्त्रियॉ स्वतत्र रूप से कोई व्यवसाय नहीं करती थीं। तत्कालीन सयुक्त परिवार प्रणाली मे स्त्री को किसी प्रकार के व्यवसाय करने की आवश्यकता भी नहीं थीं। १७वीं एव १८वीं शती मे स्त्रियो द्वारा चिकित्सा को व्यवसाय के रूप मे अपनाने का उल्लेख मिलता है। १८वीं शती मे एक स्त्री चिकित्सक द्वारा स्त्रियो की बीमारियो के सबध मे लिखा गया विवेचनात्क निबन्ध अरबी मे अनुवादित किया गया। लेकिन स्त्री चिकित्सको की सख्या अत्यन्त कम थी और यह व्यवसाय कुछ चिकित्सको के परिवार मे विधवाओ द्वारा अपनाया जाता था।[2] विधवा स्त्रियॉ नर्स एव दाई का कार्य भी करती थीं। निर्धन स्त्रियॉ पान की दुकान पर बैठने को मजबूर थीं।[3] सम्राट अकबर द्वारा शाही शराबखाने की देखरेख के लिये एक द्वारपाल की पत्नी की नियुक्ति का उल्लेख भी मिलता है।[4] इस घटना से उनके विश्वस्त होने का प्रमाण मिलता है।

हिन्दू स्त्रियो की तुलना मे मुस्लिम स्त्रियॉ की आर्थिक स्थिति अधिक अच्छी होती थी, क्योकि इस्लामी कानून के अनुसार वे पिता की सम्पत्ति में भाईयो के समान ही अधिकारिणी थी। विवाह के पश्चात भी सम्पत्ति में उनका अधिकार होता था। तलाक की स्थिति मे भी वे मेहर के रूप में सम्पत्ति प्राप्त

---

१ मध्यकालीन भारतीय सस्कृति पृ०-३८, डॉ० दिनेश चन्द्र भारद्वाज।

२ ग्रेट विमेन ऑफ इण्डिया- पृ०-४२

३ मध्यकालीन भारतीय सस्कृत- पृ०-३८
डॉ० दिनेश चन्द्र भारद्वाज

४ मध्यकालीन भारतीय सस्कृत- पृ०-३८ डॉ० दिनेश चन्द्र भारद्वाज।

करती थीं। इसके विपरीत हिन्दू स्त्री न तो विवाह के पूर्व और न विवाह के पश्चात ही पिता की सम्पत्ति मे अपना भाग ले पाती थी।

वस्तुत इस युग मे नारी की कोई सुदृढ आर्थिक स्थिति नहीं थी। परिचारिका के रूप मे ही केवल वे आर्थिक उपार्जन कर सकती थीं। पुरुष से असम्पृक्त नारी का कोई आर्थिक जीवन नहीं था।

(घ) धार्मिक

उपनयन सस्कार की औपचारिकता समाप्त होते ही स्त्रियो का धार्मिक स्तर, ब्राह्मण स्त्रियो का भी शूद्रवत् हो गया। इसने उनकी सामाजिक और धार्मिक स्थिति पर बडा दूरगामी प्रभाव डाला। वैदिक बलि के लिये तो वे बहुत पहले अयोग्य घोषित कर दी गई थीं। परवर्ती काल मे प्रचलित अनेकानेक व्रत उप्वासो मे उन्होने अपने को सलग्न कर लिया। अल्टेकर के मत से तो वे इन पौराणिक व्रतो और उपवासो की एक मात्र सरक्षिका थीं।[१] अधिकतर स्त्रियॉ अशिक्षित थी। वे वेदान्त के दार्शनिक मतो और बौद्धिक तर्कों को समझने मे असमर्थ थीं। भक्तिमार्ग सर्व सुलभ एव लोकप्रिय हो रहा था, अनेकानेक विस्मयकारी धार्मिक कथाये समाज मे प्रचलित होने लगीं। उच्च बौद्धिक प्रशिक्षण के अभाव मे स्त्रियॉ सहज विश्वासी या अधविश्वासी होने लगीं, जो उनके विवेक के विकास के लिये हानिकर सिद्ध हुआ।[२]

---

१ आइडियल एण्ड पोजीशन ऑफ इण्डियन विमेन इन सोशल लाईफ- पृ० -४० ए०एस० अल्टेकर।

२ आइडियल एण्ड पोजीशन ऑफ इण्डियन विमेन इन सोशल लाईफ- पृ०-४० ए०एस० अल्टेकर।

समाज इस काल मे अनेक झझावातो से जूझ रहा था। अनेक विकट समस्याये सामने थीं। राजनैतिक पराभव एव सामाजिक पतन के इस युग मे अनेक धार्मिक आन्दोलन भी हुये। भक्ति आन्दोलन की कई शाखाये प्रशाखाये विकसित हुई, जिनके सिद्धान्तो को समझने मे विद्या-विवेक शून्य सामान्य स्त्री स्वय को असमर्थ पाती थी। लेकिन भक्ति ज्ञान, विज्ञान, आचरण सिद्धान्त से आगे की चीज है, जिसे विरले ही प्राप्त कर पाते है, यही भक्ति इस युग मे स्त्रियो की आराधना का दृढ अवलम्ब बनी। इसी का सहारा लेकर अनेक भक्त एव सत कवयित्रियो ने जीवन और जगत के सत्य से साक्षात्कार किया। उत्तर से दक्षिण एव पूर्व से पश्चिम तक अनेकानेक भक्त-सत कवयित्रियो की स्वस्थ दीर्घकालिक परम्परा रही है। इनके द्वारा विपुल मात्रा मे साहित्य सृजन हुआ। सदियो से दबे हुये व्यक्तिव मे कवित्व का अकुर फूट पडा। कविता की इस मधुमती वेगवान धारा मे जन-जीवन रसाप्लावित हो बह उठा। घर-द्वार एव ससार का त्याग करके पूर्ण समर्पण एव विराग की भावना से साधना पथ पर चलती हुई भक्त-सत कवयित्रियॉ जीवन के परमतत्व को प्राप्त करती हैं, जिसका प्रमाण स्वय उनकी कविताओ मे निहित है। इनकी साधना किसी न किसी गुरू के सरक्षण मे चली है, वे इनकी आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त करते थे। चरणदास की शिष्याये दयाबाई, सहजोबाई कबीर की शिष्या लोई, सत रामदास की शिष्या अक्काबाई, बयाबाई, बहिणाबाई, नामदेव की शिष्या जनाबाई इस सदर्भ मे उल्लेखनीय नाम हैं। सत दादू की भी अनेक स्त्री शिष्याये थीं। बावरी साहिबा तो इतनी उच्चकोटि की सत थीं कि उनके नाम से बावरी पथ ही चल गया। डा० पीताम्बरदत्त बडथ्वाल के मत से पुरुष सतो द्वारा स्त्रियो को शिष्यत्व प्रदान करने के कारण स्त्रियो को उनका ऋणी होना चाहिये कि उन्होने उनके

लिये भी भक्ति का मार्ग खोल दिया है।[1] सत स्त्री को बधन स्वरूप मानते हैं। यह बधन घर, परिवार एव सासारिक भोगो का है, जिसका प्रमुख कारण स्त्री मानी गई है। भौतिकता एव आध्यात्मिकता मे सघर्ष का कारण स्त्री का आकर्षण ही है। (यद्यपि इस विषय पर तृतीय एव चतुर्थ अध्याय मे विशद चर्चा की गई है, तथापि विषय निर्वहन के लिये कुछ चर्चा प्रासगिक है) अत उनकी भर्त्सना और उपेक्षा के बिना पुरुष की उच्छ्रखल प्रवृत्ति को बॉध सकना असम्भव था।[2] नारी का जो बाधक चित्र उन्होने खींचा उसमे उसके कामिनी रूप की ही प्रधानता थी। यह सत्य है कि उस युग मे नारी का वही रूप शेष रह गया था। अभी तक वह एक अनिवार्य विकार, युद्ध की प्रेरणा और महत्वाकाक्षा की सामग्री प्रदान करने वाली थी, पर सत कवियो ने उसका पूर्ण रूप से विरोध और खडन आरम्भ कर दिया।[3] आश्चर्य का विषय है कि सतो ने नारी को सभी सभव कुशब्दो से नवाजा है किन्तु स्वय उस अनित्य, अविनाशी ब्रह्म को पाने के लिये नारी विषयक अभिधान स्वीकार किया है। नारी के प्रति इन कवियो की यह दृष्टि उस अन्तर्दृष्टि की पारिचायक है जिसमे नारी की झाई पडने से सर्प के भी अन्धे होने की सभावना है, तो फिर पुरुष की क्या स्थिति हो सकती है। घृणा और भर्त्सना के गहनतम मे घिरी होने पर भी अनेक नारियो द्वारा उत्कृष्ट साहित्य रचा जाना उनकी भर्त्सना का समुचित उत्तर है। उनकी उस साधना मार्ग मे उपस्थिति ही (जिस मार्ग मे वे सर्वाधिक घृणा एव निन्दा की पात्र हैं) एक गौरवमयी उपलब्धि है। काव्य की इस धारा में स्त्रियों की वाणी तथा ज्ञानात्मक विवेचनाये मानों अपने

---

[1] सत काव्य मे नारी से उदधृत पृ०-१६३
डॉ० कृष्ण गोस्वामी।

[2] मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियॉ, पृ०-४५
डॉ० सावित्री सिन्हा।

[3] मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियॉ पृ०- ४६

गुरुओ का ध्यान इस ओर आकर्षित करती प्रतीत होती हैं कि नारी मे केवल आकर्षण ही नहीं है।[1] उसमे वह शक्ति भी है जिसके बल पर वह आध्यात्मिकता की ऊँचाइयो को छू सकती है ।

मध्यकाल मे नारी की स्थिति का आकलन करते समय इस तथ्य को अनदेखा नहीं किया जा सकता है कि उसे भक्ति एव ज्ञान प्राप्ति की पूर्ण स्वतत्रता थी, वे (पुरुष) गुरुओ के ससर्ग मे दिव्य आध्यात्मिक अनुभवो को प्राप्त करती थीं। जिनमे कवित्व का गुण था उन्होने साहित्य मे उत्कृष्ट कोटि का योगदान दिया।

—✿—

डॉ० सावित्री सिन्हा।

१ मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियॉ, पृ०- ४६
डॉ० सावित्री सिन्हा
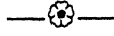
तृतीय अध्याय

मध्यकालीन नारी भावना के सदर्भ मे सत कवयित्रियो पर विचार करते समय सतकवियो, सतकाव्य परम्परा और उस परम्परा मे नारी के प्रति दृष्टिकोण पर दृष्टिपात् करना आवश्यक है, क्योकि जिन सत कवयित्रियों पर उक्त शोध प्रबध में विचार किया जाना है, उनकी परम्परा को जाने बिना उक्त शोध विषय के साथ न्याय नहीं किया जा सकता है, अत इस अध्याय में निम्नाकित बिन्दुओं पर विचार किया जाना अभीष्ट है।

(क) सतकाव्य परम्परा

(ख) सत काव्य परम्परा मे नारी के प्रति दृष्टिकोण

(ग) सतों की नारी निन्दा के कारण

संत काव्य परम्परा

(अ) संत शब्द अर्थ और व्युत्पत्ति

किसी शब्द की व्युत्पत्ति जानने का उद्देश्य उस शब्द के सही अर्थ को जानना है। कभी-कभी कोई शब्द अपने में विशाल अर्थ भण्डार को सजोये रहता है, ऐसी स्थिति में समस्या और विकट हो जाती है, क्योकि एक ही शब्द की अनेक व्युत्पत्तियॉ (भिन्न अर्थों के सन्दर्भ में) सामने आती हैं। इन अनेक व्युत्पत्तियों में अनुमान एव दृष्टि-भेद से सही व्युत्पत्ति तक पहुॅचने की चेष्टा की जाती है।

विभिन्न विद्वानो ने सत शब्द को अपने-अपने ढग से व्याख्यायित करने का प्रयास किया है। डा० पीताम्बर दत्त बडथ्वाल इसकी व्युत्पत्ति सत् शब्द से मानते हैं।[1] आचार्य परशुराम चतुर्वेदी सत शब्द की व्युत्पत्ति सन् शब्द से मानते है। उनके अनुसार सत शब्द हिन्दी भाषा के अन्तर्गत एकवचन मे प्रयुक्त होता है किन्तु यह मूलत सस्कृत शब्द "सन्" का बहुवचन है। सन् शब्द अस् (होना) धातु से बने हुये, सत् का पुल्लिग रूप है, जो शतृ प्रत्यय लगाकर प्रस्तुत किया जाता है।[2] डा० राजदेव सिह अग्रेजी के सेण्ट (Saint) शब्द से इसकी व्युत्पत्ति मानते है,[3] जो शायद ध्वनिसाम्य के आधार पर है। इसी तरह शान्त शब्द से भी इसकी व्युत्पत्ति दिखाने का प्रयास किया गया है।

सत शब्द का सही अर्थ क्या है, इस सबध मे हमारे प्राचीन ग्रन्थ क्या कहते है, यह विश्लेषण का विषय है। ऋग्वेद मे "सुपर्ण विप्रा कवयो वचोभिरेक सन्त बहुधा कल्पयन्ति" कहकर सन्त को सत् का पर्याय माना गया है।[4] छादोग्य उपनिषद् मे "सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवा–द्वितीयम्" कहकर यह प्रतिपादित करने की चेष्टा की गई है कि आरम्भ मे केवल एक अद्वितीय सत् ही विद्यमान था।[5] तैत्तिरीय उपनिषद् मे "असदेव स भवति असद् ब्रह्मेति चेत् वेद। अस्ति ब्रह्मेति चेत् वेद। सन्तमेन ततो विदुरिति।" कहकर ब्रह्म को जानने वाले को सत कहा है।[6] महाभारत मे "आचार लक्षणो धर्म, सन्तश्चाचार लक्षणा" कहकर

---

[1] योगप्रवाह पृ०-१५८

[2] उत्तरी भारत की सत परम्परा पृ०-४

[3] सत साहित्य की भूमिका पृ०-२०

[4] ऋग्वेद १०/११४/५

[5] छादोग्य उपनिषद्, द्वितीय खण्ड–१

[6] २/६/१

सदाचारी के अर्थ मे इसका प्रयोग हुआ है।[१] धम्मपद मे इस शब्द का प्रयोग शान्त के अर्थ मे किया गया है–

''सन्त तस्समन होति, सन्ता वाचा च कम्म च[२]'' और

' अधिगच्छे पदे सन्त सरवारूपसम सुख[३]''

भागवत महापुराण मे "प्रायेण तीर्थाभिगमापदेशै स्वय हि तीर्थानि पुनन्ति सन्त" कहकर उन्हे तीर्थों को भी पवित्र करने वाला कहा गया है।[४] भर्तृहरि "परोपकाराय सता विभूतय" और "सन्त स्वय परहिताभियोगा" कहकर परोकारी के अर्थ मे इसकी सगति खोजते है।[५] भक्ति कालीन साहित्य मे भी यह शब्द उपर्युक्त सभी गुणो को आत्मसात किये हुये अपनी विराट अर्थवत्ता से अनेकानेक अर्थों के सदर्भ मे निरूपित किया जाता है। कबीर के मत से निर्वैरी, निष्कामी, साई से प्रेम करने वाला और विषयो से न्यारा रहने वाला सत है।[६] सारा ससार, गृहस्थ, वैरागी, योगी, जगम, तपस्वी, ब्रह्मा-विष्णु-महेश, अवधूत, राजा, रक, सभी दुखी है, क्योकि आशा, तृष्णा ने सभी को जकड लिया है, केवल सत सुखी है, जिसने मन को जीत लिया है।[७] यह शरीर केले का बन है, मन मदमत्त हाथी है ऐसे मदमत्त हाथी पर ज्ञान का अकुश लेकर बैठा हुआ महावत सत है।[८] गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरित मान मे सत शब्द की अनेक प्रसगों मे व्याख्या

---

१ महाभारत

२ धम्मपद, अर्हन्तवग्ग गाथा ७

३ धम्पपद भिक्खुवग्ग ९

४ भागवत–१/१९/८

५ नीतिशतक

६ निरबैरी निहकामता साई सेती नेह।
विषिया सूँ न्यारा रहै सतानि को अगएह।। कबीर ग्रन्थावली पृ०-१५६ सा० २४

७ कबीर ग्रन्थावली पृ०-५२-२३ पद ९०

८ काया कजरी बन अहै मन कुजर मदमत्त। वही-पृ० २२८ साखी-२
अकुस ज्ञान रतन है, रवेवर बिरला सत।

नहीं करते थे,[1] व्यास गद्दी पर बैठकर धर्मोपदेश देते थे,[2] ब्राह्मणो से विवाद करते थे कि हम तुमसे किसी मायने मे कम नहीं है, उन पर अपने ज्ञान का प्रदर्शन करते थे,[3] जनेऊ पहन कर दान लेते थे,[4] शिव के प्रति इनमे आस्था थी और पौराणिक देवताओ तथा विष्णु के प्रति अश्रद्धा का भाव था।[5] श्रुतिसम्मत हरि भक्ति पथ को छोडकर अनेक पथो की कल्पना करते हैं।[6] ऐसे इन मिथ्याभाषी दभी लोगो को सब लोग सत कहते हैं।[7]

अत अपनी समस्त उदात्त अर्थवत्ता को समेटे हुये भी हिन्दी आलोचना से पूर्व ही सत शब्द निर्गुण मार्गियो के लिये प्रयुक्त होने लगा था।

इतना बडा अर्थान्तर अकारण नहीं हो सकता है। सत कवियो और उनके साहित्य पर प्रभूत शोधकार्यों के बावजूद इस अर्थान्तर को लक्ष्य नहीं किया जा सका है। आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि इन शोधकार्यों ने इस अर्थान्तर को घटाने की जगह बढाया ही है। शुरू-शुरू मे कबीर आदि को सत कहने मे लोग हिचकते थे। आचार्य शुक्ल और डा० बडथ्वाल ने इसी लिये सत के साथ निर्गुण विशेषण का प्रयोग निरन्तर किया है।[8] सम्पूर्ण मध्यकालीन साहित्य में सन्त और भक्त शब्द पर्यायवाची की तरह प्रयुक्त हुये हैं। बीसवीं शती मे प्रथम दो-एक

---

[1] रामचरित मानस उत्तरकाण्ड १०१/४

[2] रामचरित मानस, उत्तरकाण्ड १००/५

[3] रामचरित मानस, उत्तरकाण्ड ९९/–

[4] रामचरित मानस, उत्तरकाण्ड ९९/१

[5] रामचरित मानस, उत्तरकाण्ड १०५/–

[6] रामचरित मानस, उत्तरकाण्ड दो० ९९ख व ९७क

[7] रामचरित मानस, उत्तरकाण्ड ९८/२

[8] सत साहित्य की भूमिका – डा० राजदेव सिह पृ०–२

दशको तक सत और भक्त शब्द एक ही अर्थ मे प्रयुक्त हुये हैं।[1] फिर निर्गुणोपासक सत कहे जाये और सगुणोपासक भक्त, यह नया अर्थ कहाॅ से आ गया है? नाथादास ने भक्तमाल मे कबीर एव तुलसी दोनो को भक्त कहा है। तुलसी ने सतो का जो मानक तैयार किया है उससे भी इस अर्थ की सगति नहीं बैठती। आ० हजारी प्रासाद द्विवेदी के मत से, सत और भक्त मे अन्तर करने का क्रम उस समय बडी तेजी से शुरू हुआ था, जब कुछ यूरोपियन पडितो ने मध्यकालीन भारतीय भक्ति-आन्दोलन को ईसाइयत की देन सिद्ध करना चाहा था।[2] निर्गुणमार्गी कवियो के अनुसधान परक अध्ययनो से यह स्पष्ट हो गया है कि सगुणमार्गी भक्तो से निर्गुणमार्गी सतो के आचार-विचार भिन्न है, तथा निर्गुणमार्गी सतो से ईसाई सतो मे पर्याप्त समानताये है।

इस प्रकार इस शब्द का अर्थसकोच एव अर्थापकर्ष दोनो हुआ है। अब यह विशेषण से सज्ञा बन गया है,[3] और अपनी उदात्त अर्थ परम्परा से विच्छिन्न होकर ऐसे "निरगुनियो" के लिये रूढ हो गया है, जो निम्न कुल मे उत्पन्न हुये हो, ब्राह्मण, वेद और सगुण ब्रह्म मे आस्था नहीं रखते, जाति पाॅति, कर्मकाण्ड मे विश्वास नहीं रखते है और स्वय के आचार विचार, क्रिया—कलाप मे आत्ममुग्ध से रहते है। मध्यकाल मे सत शब्द का प्रचलित अर्थ हिन्दी आलोचना मे परिभाषिक अर्थ बन गया है।

---

१ सत साहित्य की भूमिका – डा० राजदेव सिह पृ० १७

२ सूरसाहित्य से

३ सतसाहित्य की भूमिका डा० राजदेव सिह पृ० २

(ब) संत परम्परा

मध्यकाल की निर्गुणमार्गी सत साधना पद्धति का आरम्भ कहॉ से होता है यह भी विश्लेषण का विषय है। यह कोई ज्यामितीय समस्या नहीं है कि एक बिन्दु से दूसरे बिन्दु तक रेखा खींचकर समाधान पर पहुॅचा जा सके। यह साहित्य की कभी द्रुतगामी और कभी मन्थर गति से प्रवाहित होने वाली दीर्घकालिक परम्परा है, जिसके सूत्र शकराचार्य एव गोरखनाथ की भाव भूमि से जुड़े है।

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी सत परम्परा का आरम्भ, जयदेव से मानते है,[१] और कबीर के पूर्वकालीन सन्तो मे जयदेव, नामदेव, सदन कसाई, वेणी, त्रिलोचन और लालदेद का उल्लेख करते है।[२]

जयदेव से सत परम्परा का उद्‌गम मानने की स्थिति मे हमे कुछ बिन्दुओ पर विचार करना पडेगा। सबसे पहले तो कबीर और जयदेव की साधनापद्धति मे ही बडा अन्तर है। एक जाति-पॉति के नियमो को न मानने वाला वर्णाश्रम धर्म विरोधी और दूसरा इनका परमआग्रही। दूसरा, कबीर की वैष्णव अवतारो के प्रति पूर्ण अनास्था है। (दशरथ सुत तिहुॅलोक बखाना, राम नाम को मरम है आना) जबकि जयदेव परम वैष्णव है तीसरा, कबीर एकान्तिक साधक होते हुये भी सामाजिक सरोकारो से रहित नहीं है, वे समाज की कुरीतियो, पाखण्डो, अन्धविश्वासो पर चोट पहुॅचाकर समाज को सन्मार्ग पर लाने के इच्छुक है, वहीं

---

१ उत्तरी भारत की सत परम्परा पृ०-११

२ उत्तरी भारत की सत परम्परा पृ०-११

जयदेव पूर्णतया प्रेमलक्षणा भक्ति मे डूबे है, ससार की उन्हे उतनी चिन्ता नहीं है। अत जयदेव हिन्दी आलोचना मे स्वीकृत सत शब्द की परिधि मे नहीं आते और उनसे सत परम्परा का उद्‌गम माना भी नहीं जा सकता है। कबीर ने अपनी बानियो मे जयदेव का स्मरण बडी श्रद्धा के साथ किया हैं किन्तु श्रद्धा और परम्परा दो भिन्न चीजे है।

वारकरी सन्त नामदेव एव त्रिलोचन से भी सन्त परम्परा के उद्‌गम की बात की जाती है। वारकरी सन्त कबीर आदि उत्तर भारतीय सतो के अधिक निकट है, तथापि दोनो की साधना पद्धति मे बहुत अन्तर है। मराठी सन्तो ने ब्रह्म के सगुण एव निर्गुण दोनो रूपो को स्वीकार किया है, और दोनो की उपासना समान भावभूमि पर क्री है। हिन्दी की तरह सत और भक्त शब्द मराठी मे भिन्नार्थक नहीं है, वरन् वहॉ ये पर्यायवाची की तरह प्रयुक्त होते है। वारकरी सतो मे शिव के प्रति आस्था का भाव है, किन्तु वे विष्णु के प्रति भी उतने ही आस्तिक है। पण्ढरपुर मे स्थापित विट्ठल के सिर के ऊपर शिव की मूर्ति इसका प्रमाण है, जबकि कबीर आदि सत पूर्णतया निर्गुणोपासक है, वैष्णवो, वेद, ब्राह्मणो के प्रति असहिष्णु है, अत ये उत्तर भारतीय सत नामदेव एव त्रिलोचन की परम्परा मे बिल्कुल नहीं आते।

सत सधना कसाई जाति मे उत्पन्न थे, और मास विक्रय का कार्य करते थे। रैदास ने नामदेव, कबीर और त्रिलोचन के साथ सत सधना का उल्लेख किया है। (नामदेव कबीर त्रिलोचन, सधना सैणु तरै।) गोस्वामी तुलसीदास एव अन्य सगुणमार्गी कवियो ने भी इनका उल्लेख किया है। ये काफी लोक विश्रुत

रहे होगे क्योकि लोकगीतो मे भी भगवान की कृपा से इनके तर जाने की चर्चा मिलती है– तारा सदन कसाई, अजामिल की गति बनाई।"

डा० ग्रियर्सन ने सत सधना के नाम पर प्रचलित "सधना पथ" का उल्लेख किया है और उनके अनुयायियो का बनारस मे वर्तमान होना बताया गया है। इनका एक पद गुरु अर्जुनदेव द्वारा सपादित सिक्खो के आदिग्रन्थ मे आया है। इनके छ पदो का एक सग्रह सतगाथा मे भी सकलित है,[1] लेकिन हम उनसे सत परम्परा का उद्गम एव कबीर पर उनके प्रभाव को लक्ष्य नहीं करते । वे तो एक वैष्णव भक्त के रूप मे अधिक प्रसिद्ध दिखाई देते है, जिनका भगवान की कृपा से उद्धार हो गया।

सत वेणी के समय एव जीवन की घटनाओ के विषय मे कुछ भी ज्ञात नहीं है। सिक्खो के पॉचवे गुरु अर्जुनदेव ने अपने एक पद मे इनका नाम लिया है। आदि ग्रन्थ मे इनके तीन पदों का सग्रह भी है। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी जी के मतानुसार ये कबीर के पूर्ववर्ती है और नामदेव के समकालीन है, इनके पदो पर नाथयोगी सम्प्रदाय व सत मत की गहरी छाप है। सतमत के प्रथम प्रवर्तको मे इनका नाम आदर के साथ लिया जा सकता है।[2]

कश्मीर की सत लालदेद से अवश्य हम इस परम्परा का उद्गम मान सकते हैं। हिन्दी आलोचना मे स्वीकृत सत शब्द की परिधि मे हम जिस विशेष साधना पद्धति एवं आचार विचार का उल्लेख करते हैं, लालदेद की ब्रह्मविषयक धारणा–जीवविषयक धारणा कबीर आदि सतो की धारणा के अनुकूल है, बल्कि

---

[1] उत्तरी भारत की सत परम्परा आ० परशुराम चतुर्वेदी पृ०-१००

[2] उत्तरी भारत की सत परम्परा पृ०-१०४

यहाँ यह कहना कि उनसे भी समीचीन एव गूढ है, अधिक उपयुक्त होगा। वे जागतिक प्रपञ्च से रहित एकान्तिक साधिका है, तथापि ससार को वास्तविक सत्य से परिचित कराती है। कबीर की भॉति मूर्तिपूजा एव तीर्थाटन का खण्डन भी करती हैं। आत्मतत्व एव ब्रह्मतत्व का विशद विवेचन करके आत्मतत्व के ब्रह्मतत्व मे लयमान होने की स्थिति की चर्चा वे मनुष्य के शरीर मे ही करती है।

लालदेद १४वीं श० के अन्त मे विद्यमान कही जाती है, कबीर १५वीं शताब्दी मे हुये। ग्रियर्सन के मतानुसार लालदेद की अनेक बातों से कबीर भी प्रभावित हुये थे। अत वे कबीर की पूर्ववर्ती ठहरती हैं। उनकी साधना पद्धति सतजनानुमोदित साधना पद्धति के अनुकूल है, अत हम सत परम्परा का प्रारम्भ लालदेद से मान सकते है।

इस परम्परा मे आने वाले प्रमुख सत इस प्रकार है। कबीर (स० १४५६-१५७५), रैदास (?), गुरुनानक देव (स० १५२६-१५९५), सेननाई (?), पीपाजी (जन्म स० १४६५ से १४७५ के बीच), धन्नाभगत, (?) सतदादूदयाल (स० १६०१-१६६०), रज्जबजी (स० १६२४-१७४६) मलूकदास (स० १६३१-१७३९), सुन्दरदास (१६५३-१७४६), प्राणनाथ (स० १६७३-१७५१), गरीबदास (१६३२-१६९३), धरनीदास (जन्म स० १७१५ मृत्यु अज्ञात), यारीसाहब (स० १७२५ - १७८०), केशवदास (स० १७५० - १८२५), बुल्लासाहब (स० १६८९-१७६६), जगजीवन साहब (स० १७३९-१८१८), दरियासाहब, बिहार वाले (स० १६९१-१८३७), दरियासाहब, मारवाड वाले (स० ७३३-१८१५), गुलालसाहब (स० १७५०-१८००), भीखासाहब (स० १७७०-१८२०), चरनदास (स० १७६० - १८३९), पानपदास (स० १७७६ - १८५०), रामचरन दास

(स० १७७६ - १८५५), सहजोबाई (स० १७४० - १८२०), दयाबाई (स० १७४९-१८५०), बावरी साहिबा (स० १५९९-१६६२), तुलसी साहिब (स० १८१७-१८९९), सत वाजिद (१७वीं शताब्दी), सत अरवा (स० १६३०-१७१५), सत प्रीतमदास (स० १७८०-१८५४), सतसिगाजी (स० १५७६-१६१६), पलटूदास (स० १८०० के लगभग), धर्मदास (स० १६०० के लगभग) सत कमाल (स० १५०५ - मृत्यु अज्ञात), वषना (स० १६१०-१७००) आदि।

ये सत कवि, कुछ अपवादो को छोडकर निम्न जातियो में उत्पन्न हुये थे, जैसे कबीर जुलाहा थे, रैदास चमार थे, दादू धुनिया थे, सेन नाई थे आदि आदि। निम्न कुल मे उत्पन्न होकर भी इन सन्त कवियो का जनमानस मे इतना प्रचार हुआ कि इनकी वाणियॉ जनता के बीच लोकोक्तियों का रूप पाकर उनके दैनन्दिन कार्यक्रमो का विधान करने लगी। ये सभी सन्त बाह्यमार्गी न होकर अन्तर्मार्गी थे जो हृदय की शुद्धता एव पवित्रता पर बल देकर उस परम तत्व को हृदय मे ही पाने का प्रयत्न करते हैं।

मध्ययुगीन समाज अनेकानेक व्याधियो, कष्टो, दुष्प्रवृत्तियो से पीडित था, इन सतो ने अपनी तीक्ष्ण वाणी से समाज को सन्मार्ग पर लाने का प्रयास किया। मूर्तिपूजा, तीर्थाटन का कडे शब्दो में विरोध केवल अपनी विशेष साधना पद्धति के ही कारण नहीं किया, अपितु तत्कालीन किकर्त्तव्य विमूढ जनमानस को बहिर्मुखी से अर्न्तमुखी करके स्वय का मूल्याकन करने की दृष्टि भी दी । इस तरह से हम इन सत कवियों को तत्कालीन समाज की रोगाक्रान्त अवस्था का "शल्यचिकित्सक" भी कह सकते है।

अनेक सन्तकवियो ने गद्‌दियॉ भी स्थापित की। कुछ गद्‌दियॉ तो अभी भी विद्यमान है। कबीर पथ की तीन शाखाये हुयीं – काशी शाखा, छत्तीसगढी शाखा और धनौती शाखा। रैदास जी का रविदासी सम्प्रदाय, जो अभी भी विद्यमान हैं। सेन भाई का सेन पथ, दादूदयाल एव चरणदास के ५२ शिष्यो की बावन गद्‌दियॉ, जिनमे चरणदास कौ कुछ गद्‌दियॉ अभी भी विद्यमान है। रज्जब जी का रजवावत सम्प्रदाय, मलूकदास का मलूक पथ, प्राणनाथ का धामी सम्प्रदाय, बावरी साहिबा का बावरी पथ, जगजीवनदास का सत्तनामी सम्प्रदाय, बुल्लासाहब की गद्दी भुरकुडा गाजीपुर मे, तुलसी साहिब का साहिब पथ, पलटूदास का पलटू पथ, दरियादास बिहार वाले का दरियादासी सम्प्रदाय धरकधे मे, दरियादास मारवाड वाले का दरियापथ, अन्य महत्वपूर्ण सम्प्रदाय है, जिनमे कुछ की शिष्य परम्परा अभी भी चल रही है।

(ख) सन्तकाव्य परम्परा में नारी के प्रति दृष्टिकोण

सन्त मत मे नारी के प्रति सन्तो का दृष्टिकोण तीन रूपो मे दिखाई देता है।

१ नारी निन्दा

२ परनारी निषेध

३ सती एव पतिव्रता स्त्री की प्रशसा

१ नारी निन्दाः

सन्त काव्य परम्परा मे विषय वासना-प्रवृत्ति कारिणी और माया जाल मे फॅसाने वाली होने के कारण नारी निन्दा का पात्र रही है। नारी की माया के रूप मे निन्दा सर्वप्रथम सन्तो ने की है, क्योकि सासारिक समस्याओ एव दायित्वो से घिरी नारी उन सन्तो के सम्मुख गृह प्रपञ्च की चर्चा करके उन्हे ससार मे खीचती है। परिवार वृद्धि का मूल कारण होने के करण मायाजाल मे फॅसाती है। वैराग्यमूलक सन्त परम्परा मे कामिनी विलासिनी नारी अवरोध उत्पन्न करती थी। यह सार्वभौमिक सत्य है कि विश्व के सभी वैरागियो ने उसे तप के मार्ग की बाधा मानकर गर्हित एव त्याज्य माना है। सस्कृत के नीति ग्रन्थो मे भी नारी निन्दा के तत्व दृष्टि गोचर होते है। वस्तुत नारी निन्दा के सूत्र उसी काल मे विकसित होते है, जब सन्यास धर्म की ओर जनमानस का झुकाव हो जाता है। जैन एव नाथ कवियो ने उसे योग मार्ग की बाधा एव ससर्ग से पुरुष का नाश करने वाली बताया। नाथ पथियो का यह दृष्टि बिन्दु वज्रयानियों की घोर कामुकता एव इन्द्रिय परायणता की प्रतिक्रिया मे विकसित हुआ।[1]

विलासिता कामुकता एव इन्द्रिय परायणता का यह वह युग था जो धर्म का चोला पहन कर अपने निन्दनीय कृत्यो पर पटाक्षेप करता है। इस युग में अनाचार इतना बढ गया था कि स्वय गोरखनाथ को अपने गुरु को प्रबोधित करना पडा था। ''जाग मच्छन्दर गोरख आया" कहकर उन्होने अपने गुरु की विलास तन्द्रा भग की थीं, एव यह तथ्य प्रस्तुत किया कि नारी के ससर्ग मे लीन पुरुष एव सरिता के तट पर स्थित वृक्ष अनिश्चित जीवन वाला है—

---

[1] मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में नारी भावना पी० ८१ डा० उषा पाण्डेय

नदी तीरे बिरवा, नारी सगै पुरुषा ।

अलप जीवन की आसा ।[1]

नारी निन्दा का सर्वप्रथम प्रयोग कहॉ से हुआ, यह तो निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है, किन्तु जब से स्त्रियो को बौद्ध धर्म में आने की छूट मिली, और बौद्धधर्म अनेक विकृत मार्गो से गुजरता हुआ तन्त्रयान, वज्रमान जैसे कलुषित विचारो को वहन करता हुआ, पथभ्रष्ट योगी के समान नारी शरीर मे ही समस्त कल्याण देखने लगा, तभी से नारी विषयक अन्तर्दृष्टि प्रच्छन्न रूप मे ही सही, बदलने लगी और उसका फल हमे सन्त परम्परा में नारी निन्दा के रूप मे प्राप्त होता है।

कबीर सन्त परम्परा के प्रतिनिधि कवि है, नारी निन्दा की परम्परा भी मध्यकाल से ही परिलक्षित होती है। यद्यपि कबीर से पहले भी गोरखनाथ, वेणी, त्रिलोचन, नामदेव आदि ने नारी के प्रति अपनी वितृष्णा प्रकट की है, किन्तु एक परम्परा के रूप मे हम इसे कबीर से ही प्रारम्भ देखते है, कबीर के समकालीन एव परवर्ती जितने भी सत कवि हुये है, सबने इस विषय मे कुछ न कुछ अवश्य कहा है। कुछ अपवादो को छोडकर सभी सत कवियो के विचार एव दृष्टिकोण, "स्त्रियो के सन्दर्भ मे लगभग समान रहे है। इस सबध मे डा० अम्बाशकर नागर का मत उद्धरणीय है, "सन्तकाव्य उस समूह गान के जैसा है, जिसकी पहली पक्ति कोई प्रतिनिधि सन्त गाता है और शेष सन्त कवि उस रामधुन मे पहले सन्त के द्वारा गायी गई पक्ति को दोहराते रहते है।[2]

---

[1] गोरखबानी पृ० १३७

[2] सत काव्य मे नारी से उद्धृत

यदि नारी निन्दा के सदर्भ मे उक्त मत को देखे तो कबीर के द्वारा शुरू हुई परम्परा सन्त मत में अद्यतन प्रवाह मान हैं, भले ही उसका स्वरूप कुछ परिवर्तित हो गया है।

कबीर माया के अनेक रूपो मे स्त्री का भी एक रूप मानते है,[१] और उस माया रूपिणी स्त्री के भी अनेक रूप हैं। वह पापिनी है।[२] वह मोहिनी है[३] जो ज्ञानी सज्ञानी सभी को मोहित करती है। वह मोहिनी समस्त जग को भव के कोल्हू मे पेर रही है, कोई एक ईश्वर के जन ही उससे बच सके है। स्त्री पाभिनी तृष्णा है, जिससे नेह जोडने लायक नहीं है।[४] वह विश्वासघातिनी है, जो भक्त और हरि के बीच अन्तर डाल देती है।[५] वह डाकिनी है जो सबको खाया करती है,[६] नारी से स्नेह बुद्धि, विवेक सबका हरण कर लेता है।[७] वह भक्ति, मुक्ति और ज्ञान तीनो का नाश करने वाली है।[८] वह जगत की जूठन है, उत्तम पुरुष उससे अलग रहते है और जो नीच होते है, वे उनके निकट रहते है,[९] नरक का कुण्ड है,[१०] इससे तो भली सूली ही होती है[११] मधुमक्खी है जो उसे

---

[१] माया माता माया पिता। अति माया अस्तरती सुता। कबीर ग्रन्थावली राग गौडी ८४,पृ०-९६

[२] कबीर माया पापर्णी, फध लै बैठी हाटि। २ क०ग्र० पृ० ५६

[३] (क) कबीर माया मोहर्णी, मोहे जाण सुजाग ।६/क०ग्र० पृ०-५६
(ख) कबीर माया मोहिणी, सब जग घाल्या घाणि।
कोई एक जन ऊबरै, जिनि तोडी कुल की काणि।। ८ क० ग्र० पृ० ५७

[४] त्रिया त्रिस्ना पापर्णी, तासौ प्रीति न जोडि । क०ग्र० पृ०-५७

[५] हरि विधि घालै अतरा, माया बडी बिसास। क०ग्र० ५ पृ०-५६

[६] कबीर माया डाकर्णी, सब किसही कू खाई। क०ग्र० पृ०-५८

[७] नारी सेती नेह बुद्धि बमेक सब ही हरै। ७क०ग्र० पृ०-६७

[८] नारि नसावै तीन गुन जा नर पासै होइ।
भगति मुकति निज ज्ञान मै, पैसि न सकै कोई। १० क०ग्र० पृ०-६७

[९] जोरू जुठाणि जगत की, भलेबुरे का बीच।
उत्तिम ते अलगे रहे, निकटि रहैं ते नीच।। १४ क०ग्र० पृ०-६८

[१०] नारी कुड नरक का- १५ क०ग्र० पृ०-६८

[११] सुन्दरि थै सूली भली, बिरला बचै कोई।

छेडता है उसे काटती है।[1] नारी की परछाई मात्र पडने से सर्प अधा हो जाता है, तो फिर उनकी क्या गति होगी जो नित ही नारी के ससर्ग मे रहते है।[2] यह ऐसी बाघिन है जो नेत्रो मे अजन लगाकर बालो, को गूँथकर एव हाथो मे मेहदी लगाकर सबका नाश करती है।[3] कबीर नारी की ओर देखने का भी निषेध करते है, 'क्योकि इसे देखते ही विष चढता है,[4] इसलिये यदि अपनी माता हो तो भी उसके समीप नहीं बैठना चाहिए।[5] इसे स्त्री कहा जाय या सिहनी जो नख-शिख से भक्षण करती है।[6] वह साक्षात यम है और कलेजा निकाल कर खा जाने वाली बिल्ली है।[7] यह तो शत्रु से भी बुरी है, क्योकि शत्रु तो दॉव देखकर मारता है, किन्तु यह तो हॅस-हॅस कर प्राणो को ले लेती है।[8] वह पराई हो या अपनी उसका उपभोग करने वाला मनुष्य नरक मे ही जाता है, क्योकि आग तो आग है, उसमे हाथ डालने से हाथ मे जलेगा ही।[9] वह काली नागिन है, नारी और नागिन दोनो अपने जाये का भक्षण करती है। ऐसा कहा जाता है कि नागिन अपने अण्डो का भक्षण करती है, जो उससे बच जाते है वही सर्प होते है। नारी

लोह लिहाला अगनि मै बलि-२ कोइला होई। वहीं पृ० ६८, १६

[1] कामणि मीनी खाणि की, जे छेडौं तौ खाइ।२/ क०ग्र० पृ०-६६

[2] नारी की झॉई परत अधा होत भुजग।
कबिरा तिन की कौन गति, नित नारी के सग।२/सत बानी सग्रह पृ०-५८

[3] नैना काजर पाई कै, गाढै बाधे केस।
हाथौ मेहदी लाई कै, बाघिन खाया देस।। ४१ सत बानी सग्रह पृ०-५८

[4] नारी देखि न देखिये, निरखि न कीजै दौरि।
देखे ही थै विष चढै, मन आवै कछु और।। कबीर साखी सग्रह, पृ०-१६६

[5] सब सोने की सुदरी आवै बास सुवास।
जौ जननी हू आपनी, तऊ न बैठे पास।। ७ सतबानी सग्रह पृ०-५८

[6] नारी कहौ की नाहरी, नख शिख से यह खाय।। १० सतबानी पृ०-५८

[7] नारी नाहीं जम अहै, तू मत राचे जाय।
मजारी ज्यो बोलि के काढि करेजा खाय।। १२।। सतबानी पृ०-५९

[8] बैरी मारै दाव दै, यह मारै हॅसिखेल ।। १४/ सतबानी पृ०-५९

[9] नारि पराई आपणीं, भुगत्या नरकहि जाई।
आगि-आगि सब एक है, तामै हाथ न बाहि।। २४/क०ग्र० पृ०-६९

भी अपने जाये अर्थात पुरुष का नाश करती है, अत तत्वत दोनो मे कोई भेद नहीं है।[1] अवधूतो के द्वारा नारी परित्याग का कारण कबीर ने अत्यन्त विलक्षण व्यञ्जना द्वारा व्यक्त किया है कि नारी पुरुष की स्त्री है और स्त्री ही पुरुष को जन्म देती है, अत उसकी माता है, तो वास्तविकता क्या है, यही विचार कर अवधूत नारी का परित्याग करते है।[2] कबीर को स्वय की ही नहीं सारे ससार की चिन्ता थी, तभी वे जोगी को निर्देश देते हुये कहते है कि नारी के नेत्र रूपी बाणो से बचकर चलो, क्योकि इसने श्रृगी ऋषि, गोरखनाथ, महादेव, मत्स्येन्द्र नाथ आदि को नहीं छोडा तो साधारण मनुष्य की क्या बिसात?[3] यही रमैया की दुल्हन है जिसने तीनो लोको को लूटा है। ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, नारद, पाराशर ऋषि, कनफटे जोगी, जोगेश्वर कोई भी इससे नहीं बच सका है।[4] माया के विविध रूप धारण कर वह त्रिगुण पास हाथ मे लिये हुये मधुर बोलती हुई सभी स्थानो पर डोलती है। यह केशव के यहाँ कमला शिव के यहाँ भवानी, ब्रह्मा के

---

[1] (क) कामाणि काली नागणीं, तीन्यू लोक मझारि। क०ग्र० पृ०-६६
(ख) इक नारी इक नागिनी, अपना जाया खाय। क०सा०स० पृ०-१२६
कबहूँ सरपट नीकसे, उपजे नाग बताय।।

[2] नारि पुरुष की इस्तरी, पुरुष नारि का पूत।
याहि ज्ञान विचारि के छाडि चला अवधूत।। क० सा० स० पृ०-१६९

[3] जोगिया खेलियो बचाय के, नारी नैन चलै बान।
सिगी की भिगी करि डारी, गोरख के लपटान।
कामदेव महादेव सतावे, कहा-कहा करौं बखान।
आसन छोड मच्छन्दर भागे जल मे मीन समान।
कहै कबीर सुनो भाई साधो गुरू चरनन लपटान।
कबीर साहब की शब्दावली भाग-९ पृ०-३२

[4] रमैया की दुलहिन लूटा बाजार।
सुरपुर लुटा, नागपुर लूटा, तीन लोक मचि गई हाहाकार।
ब्रह्मालूटि, महादेव लूटे, नारद मुनि के परी पछारि।
त्रिभगी की भिगी करि डारि, पारासर के उदर विकार।
कनफूँका चिदाकासी लूटे, जोगेश्वर लूटे करत विचार।
कहे कबीर सुनो भाई साधो, इस ठगिनी से रहो हुसियार।
कबीर सा०की शब्दावली, भाग-४ पृ०-२२

यहॉ ब्रह्माणी, भक्त के साथ भक्तिन जोगी के पास रहकर जोगिन एव राजा के घर रानी बन बैठती है।

कबीर कही-कहीं आवश्यकता से अधिक कटु हो गये है। वे नारी के प्रति नहीं अपितु नारी जाति के प्रति अविश्वास से भर उठे है। उनके मत से गाय, भैंस, घोडी, हथिनी, और गदही भी अन्ततोगत्वा नारी ही है, अत जिस घर मे ये मादा पशु भी हो, वहॉ नहीं रहना चाहिये।[1] उनके अनुसार तो नारी ससर्ग इतना निन्द्य है कि जिस स्थान पर किसी कामिनी को जलाया गया हो उस स्थान के निकट भी न जाने की सलाह देते है, क्योकि यदि उसकी भस्म का स्पर्श भी हो जायेगा, तो शरीर सज्ञाशून्य हो जायेगा। एक पद मे नरक के कूप का रूपक बाधते हुये कबीर नारी शरीर के प्रति पुरुष के मन मे घृणा एव कुत्सा का भाव जागृत करते है और प्रश्न करते है कि आखिर क्या देखकर पुरुष नारी के प्रति इतना आकर्षित है।[3]

सत दादू की नारी विषयक धारणा भी कबीर के अनुरूप ही है। नाना रूप धारिणी कनक कामिनी द्वारा मुग्ध किया हुआ मनुष्य माया गृह के कूप मे डूब रहा है।[4] नारी के लिये भामिनी शब्द का प्रयोग करते हुये दादू का कथन है कि यह नारी हरिनाम का विस्मरण कराने वाली है और सारा ससार उसी "भामिनी"

---

[1] सत काव्य मे नारी - डा० कृष्णा कोस्वामी पृ०-१०३

[2] सत काव्य में नारी - डा० कृष्णा गोस्वामी पृ०-१०३

[3] क्या देख दिवाना हुआ रे।
माया सूली सार बनी है नारी नरक का कुवा र।
हाड मास नाडी कापिजर, तामे मनुवा सूवा रे। क०सा०की शब्दावली पृ०-२१

[4] बूड़ि रह्या रे बापुरे, माया गृह के कूप।
मोह्या कनक अरू कामिनी नाना विधि क रूप।।
दादू दयाल जी की बानी वे०प्र०इला०पृ०-११२

के नाना रूपो मे आबद्ध है।[1] ये पत्नी रूप मे नारी का ग्रहण अधर्म समझते है और अवधूतो द्वारा नारी-त्याग की मान्यता का समर्थन करते है। इन्होने नारी को नागिन बतलाते हुए कहा है कि इसका डसा हुआ जीवित नहीं रहता है। इन्होने एक बात और कही है कि जैसे बिल्ली का बडा रूप बाघिन है वैसे ही नागिन का बडा रूप नारी है अत जो उसमे रत हुआ उसका सर्वनाश सुनिश्चित है। नारी नागिन होकर पेट मे प्रविष्ट होती है और तब उसे कोई निकाल नहीं सकता। इस अवस्था मे वह किसी को भी नहीं छोडती, सबको डस लेती है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश जैसे देवता भी उससे नहीं बच सके। पुरुष को इसका कभी विश्वास नहीं करना चाहिये, क्योकि वृद्धो को तो यह बाबा-बाबा कहकर, समवयस्को को भाई-भाई कहकर और छोटी उम्र वालो को बेटा कहकर घोलकर पी जाती है। ब्रह्मा, विष्णु महेश तक को इस नारी ने नहीं छोडा। अत यदि तुझे राम से प्रेम है तो नारी से प्रेम त्यागना होगा।[4]

सत रज्जब जी तो गृहिणी को ग्राह ही समझते है। गज-ग्राह के रूपक से गृहिणी को ससार सागर मे खींचने वाला ग्राह बताया है।[5] उनका कहना है कि जब जड पदार्थ (चक्की और चरखा) गृहिणी के हाथो मे पडकर चक्कर

---

[1] नाना विधि के रूप धरि बँधे सब भामिनी।
जग विटम्ब पर तय किया, हरि नाम भुलावनी।। दादूदयाल जी की बानी पृ०-११९

[2] माता नारी पुरिष की, पुरिष नारी का पूत।
दादूग्यान बिचारि करि छाडि गये अवधूत।। भक्तिकालीन काव्य मे नारी म उदधृत पृ०-४३

[3] सत काव्य मे नारी- डा० कृष्णा गोस्वामी पृ०-११०-१११

[4] नारी नेह न कीजिये जौ तुझ राम पियारा। भक्तिकालीन काव्य के नारी स उद्धृत पृ०-३९

[5] मदन महावत देह द्विपि, गृहसागर ले जाय।
तहाँ ग्राह गृहिणी ग्रहे, कोण छुडावे आय।। भक्ति कालीन काव्य के नारी स उदधृत पृ०-४०

काटते-काटते घिस गये, तो चेतनाशील नर कैसे बचे हर सकते है।[1] कामिनी कायर है जो विपत्ति को साथ लाती है।[2]

मूलकदास ने स्त्री की तुलना बटमार से करते हुये उसे मिस्री की छुरी गले से लगाकर सारे ससार का सर्वस्व हरण कर लेने वाली कहा है।[3] यह ऐसी मिसरी की छुरी है जो ब्रह्म से ब्रह्मस्वरूप जीव को ही लडा देती है।[4] इन्होने नारी की ओर निहारने का भी निषेष किया है।[5] नारी को अमल की घोटी (अफीम की गोली) बताते हुये सारे ससार को अमली (अफीमची) कहा है।[6] वह काली नागिन और कलह का भण्डा है।[7] माया मगन महन्त है, जिसके पास नहीं बैठना चाहिये, क्योकि यह कौडी-कौडी के लिये लड पडता है और पचास तरह की बात करता है।[8]

सत सुन्दर दास तो नारी के वाह्य स्वरूप को ही सुन्दर मानते हुये, भीतर तो कचरा ही कचरा है।[9] उसकी जो सराहना करे वे बडे ही गॅवार है।[10] वह विष

---

१ चाकी चरखा घासि गये, भ्रमि-भ्रमि भामिनी हाथ।
तो रज्जब क्यों होहिगे, नर निह्चल तिन साथ।। भक्तिकालीन काव्य मे नारी उदघृत पृ०-४५

२ रज्जब कायर कामिनी, रही विपति के सग। सत सुधासार- पृ०-५१७

३ मिसरी की छुरी गल लाइके इन मारा ससार। मलूकदास जी की बानी पृ०-१२

४ माया मिसरी की छुरी मत कोई पतियाय।
इन मारे रसवाद के, ब्रह्महि ब्रहम लडाय।। सत बानी सग्रह पृ०-१०३

५ नारी नाहि निहारिये, करै नैन की चोट। सतबानी सग्रह पृ०-१०३

६ नारी घोटी अमल की, अमली सब ससार। सतबानी सग्रह पृ०-१०५

७ सत काव्य मे नारी - पृ०-११६

८ माया मगन महन्त के तुम मत बैठो पास।
कौडी कारण लड पडे, कथनी कथै पचास।। मलूकदास जी की बानी पृ०-३८

९ सुन्दर देह मलीन है, राख्यौ रूप सवारि।
ऊपर में कलई करी, भीतर भरी भगारि।। भक्ति कालीन काव्य में नारी पृ०-४३

१० सुन्दर कहत नारी नख शिख निद रूप।
ताहि जे सराहै ते तो बडेई गॅवार है। सुन्दरदास ग्र० पद ४ पृ०-४३८

के अकुर और फूल वाली विष की लता है,[1] लता ही नहीं वह स्वय सघन वन भी है, जिसमे प्रविष्ट होने वाला राह भूल जाता है। उसकी गति मे कुजर का कटि मे सिह का, और वेणी मे काली नागिन का भय है। ठग तो केवल वस्त्र लूटते है, किन्तु नारी स्पर्श मात्र से त्वचा को भी लूट लेती है।[3] नारी का शरीर तो नरक कुण्ड है ही, शीघ्रता से पतन की ओर ले जाने वाला भी है।[4] तर्क चितावनी मे विस्तार पूर्वक सुन्दरदास जी पुरुष के विषयो मे फॅसने का वर्णन करते है, स्त्री के इगित पर कपि के समान नाचने को बाध्य पुरुष उसके ससर्ग को ही मोक्ष मान लेता है।[5] सुन्दरदास जी ने नारी शरीर का अत्यन्त वीभत्सतापूर्ण वर्णन किया है। वे नारी के प्रति आवश्यकता से अधिक कटु हो गये है। जिन तत्वो से नारो शरीर निर्मित है और सुन्दरदास जी के शब्दो मे वितृष्णा एव घृणा की पात्र है, वस्तुत नर शरीर भी उसी से निर्मित है। वीभत्सता की पराकाष्ठा पर पहुॅचते हुये वे कहते है कि, "पुरिष मुत्र हू ऑत एकमेक मिलि रहीं।" उसकी प्रभुता पाप

---

[1] विषकी भूमि माहि विष ही के अकुर भए।
नारी विष बेल बढी नख शिख देखिये।
विष के तन्तु पसारि, उरझाए ऑटी भरि।
सब नर वृक्ष पर लपटी ही लेषिये। वही पद २ पृ०-४३८

[2] कामिनी की देह मानौ कहिये सघन बन
उहॉ कोउ जाइ सो तौ भूलि के परतु है।
कुंजर है गति कटि केहरि का भय जामैं,
बेनी काली नागिन ऊ फन कौ धरतु है। सुन्दरदास ग्रन्थावली पृ०-४३८

[3] त्वचाहू लै जाय करि नारि सूॅ स्पर्श केरे।
सुन्दर कोइक साधु ठगन ते डर्‌यो है। सुन्दर विलास वे०प्र० पृ०-१०

[4] देखत ही सब परत है हो नरक कुण्ड के माहि।
या नारी के देह सो हो बेगि रसातल जाहि।। भक्तिाकलीन काव्य मे नारी से उदघृत पृ०-४३

[5] कामिनी सग रह्यौं लपटाई।
मानहु इहै मोक्ष हम पाई।
जो त्रिय कहै तो अति प्रिय लागै।
निश दिन कपि ज्यों नाचत आगे।
मारउ स है, सहै पुनि गारी।
अइया मनुषहु बूझि तुम्हारी।। भक्तिकालीन काव्य में नारी से उद्‌घृत पृ०-४१

के जैसी, सम्मान सॉप के जैसा, बडाई बिच्छू के जैसी और वह स्वय साक्षात् नागिन है।[1] अत सुन्दरदास जी नारी त्याग का उपदेश देते है।

दाइ पथी सत गरीबदास इस बात से सशकित है कि माया की नदी मे यौवन का जल भरा हुआ है, तारूण्य की लहरे उठ रही है, इससे पार कैसे पाया जा सकता है।[3] नारी रत होने के कारण ही इन्द्र की बडी दुर्दशा हुई थी। दुर्वासा जैसे ऋषि जिनके उग्र तप से ससार भयभीत था, वे भी उर्वशी पर मोहित होकर बरबाद हो गये, गुरु मत्स्येन्द्र नाथ भी सिहल द्वीप मे नारी के वशीभूत हो गये।[4] गन्धर्वसेन को नारी के ही कारण गर्दभ बनना पडा था।

सत धरनीदास जी ने नारी को चौराहे पर बटमारी करने वाली कहा है, जो भी उस मार्ग से निकलता है उसका लुटना अवश्यम्भावी है।[6] वह दामिनी के सदृश चचल है और हाथ मे (दाम,धन रूप) फासी का फदा लिये है।[7]

दरिया साहब, (बिहार वाले) कनक और कामिनी के फदे मे पडे हुये मनुष्य को कलप-कलप कर जीवन व्यतीत करमे वाला और व्यर्थ जीवन वाला मानते

---

१ सत काव्य में नारी डा० कृष्ण गोस्वामी पृ०-११९

२ कनक कामिनी छोडै सगा।
आशा तृष्णा करे न अगा।। भक्तिकालीन काव्य मे नारी - पृ०-४४

३ पार पाऊ कैसे?
माया सरिता तरून तरगिनि, जल जोवनको वैसे। भक्तिकालीन काव्य म नारी पृ०-४०

४ सत काव्य मे नारी पृ०-११९

५ सत काव्य मे नारी पृ०-११९

६ नारी बटमारी करै, चार चौहठे माहि।
जो बोहि मारग होई चलै धरनी निबहै नाहि।।
धरनीदास जी की बानी पृ०-५८

७ दामिनी ऐसी कामिनी फाँसी ऐसो दाम।
धरनी दुई तै बाचिये, कृपा करै जो राम।। धरनीदास जी की बानी पृ०-५८

है।[1] जो जीव नारी के वशवर्ती है, उन्हे सतो के वश का नहीं मानते है। भवसागर से पार वही जा सकता है जो नारी का त्याग करता है। कामिनी यम पाश है[3], अत उसके त्याग मे ही कल्याण है।[4] नारी रूप मे वही स्त्री धन्य है जो जठराग्नि से बचाकर शिशु को पालती है, और तब उसे जन्म देती है।

जगजीवन दास ने तो नारी को चाहे माता हो या पत्नी जानबूझ कर कुचाल चलने वाली बताया है।[6] रैदास का अनुभूत सत्य है कि नारी ऐसी है कि पुरुष के मरने पर तुरन्त उसका त्याग कर देती है, चाहे वह उसकी कितनी भी प्रिय हो।[7] नानक भी इसी मत के है कि सब कुछ शरीर के साथ ही समाप्त हो जाना है।[8] सत कमाल के मत से तो नारियॉ विष तुल्य है।[9] और इनके त्याग मे ही कल्याण है।[10] गुरू अर्जुनदेव ने तो विषयासक्ति की बडी निन्दा की है और विषयासक्त जीवन को अगले जन्म मे विष्ठाकीट होना अवश्यभावी बतलाया है।[11]

---

१ कनक कामिनी के फद में ललची मन लपटाय।
कलपि-कलपि जिव जाइहै बिर्था जनम गॅवाय।। सत बानी सग्रह पृ०-१२२

२ जो जिव फदे नारि से सो नहि बस हमार।
बस राखि नारी जो त्यागे, सो उतरे भवपार।। सत बानी सग्रह पृ०-१२२

३ कामिनी कनक फन्द जमजाला। दरिया सागर वे० प्रे० पृ०-५

४ दरिया सागर पृ०-३९

५ ज्यौ जननी प्रतिपाले सूत, गर्भवास जिन दियो अकूत।
जठर अगिनि ते लियो है काढि, ऐसी वाकी बर बाढि।। दरिया साहब (बिहार वाल) के चुने हुये शब्द वे० प्रे० पृ०-२३

६ मातु पिता सुत हित मै नारि।
चलत कुचाल कुमन्त्र विचारि।। जगजीवन साहब की बानी, भाग-२ वे०प्रे० पृ०-७

७ घर की नारि उरहि तन लागी।
उह तौ भूतु भुतु करि भागी।। भक्तिकालीन काव्य मे नारी पृ०-४४

८ सब कुछ जीवत को व्यवहार।
मातु पिता भाई सुत बान्धव, अरू पुनि गृह की नारि। भक्तिकालीन काव्य मे नारी पृ०-४४

९ काचन नारी जहर सम देखे। भक्ति कालीन काव्य मे नारी पृ०-४५

१० कनक कामिनी तज कै बाबा आपनी बादशाही। सत काव्य पृ०-२२७

११ जो जानै मै जोवन वन्तु।
सो होवत विषटा का जन्तु ।। भक्ति कालीन काव्य मे नारी पृ०-३९

सत सिगा जी तो इस मत के हैं कि कामादि पञ्चशत्रु जडमूल से नाश करने वाले है, अत माता पिता जिन्होने जम्म दिया है, को छोडकर अन्य किसी के बधन मे नहीं बँधना चाहिये, अत हे जीव तू पत्नी का सहारा मत तक[1] सत त्रिलोचन तो पुरुष को प्रबोधित करते हुये कहते हैं कि कामवासना मनुष्य का दूसरा जन्म भी नष्ट कर देती है। वासना की कारण स्वरूप स्त्री को जो मनुष्य अन्त समय स्मरण करता है उसे अगला जन्म वेश्या की योनि मे प्राप्त होता है।[2]

सत गुलाल के मत से तो स्त्री ने तीनो लोको मे जाल फैलाकर सबको मोहित करके उनकी चेतना का हरण किया और उन्हे अपने इगित पर खूब नचाया।[3] यह काल स्वरूप है और जीवन के हर मोड पर लुभाती हुई माया के बन्धन मे बाधती है। सबसे भोग करने पर भी कुमारी कन्या बनी रहती है। यदि यह जननी होकर पालन करती है तो पत्नी बनकर सबका भक्षण करती है। ज्ञान, ध्यान का हरण करके, मोह के जजाल मे फँसाने वाली है।[4]

सन्त चरनदास जी मनुष्य को कामज्वाला से दूर रहने का उपदेश देते है,क्योंकि यह मनुष्य को पागल और निर्लज्ज कर देती है।[5] इसी के कारण

---

[1] पॉच रिपु तेरे सग चलत है,
हरे। वो जडा मूल सों सोवै।।
मात पिता ने जनम दिया है,
हरे। वो त्रिया सग न जो वै। भक्तिकालीन काव्य मे नारी पृ०-३९

[2] अतकाल जो स्त्री सिमरे ऐसी चिता माहि जे मरे।
बेसवा जोनि बलि बलि अउतरे। वहीं- पृ०- ४३

[3] वज्र बाध सब ही को बाध्यो,
बाधी बाध नचाया। गुलाल साहब की बानी वे०प्रे० पृ०-१७

[4] गुलाल साहब की बानी बे०प्रे, पृ०-१७

[5] यह काम कुरारे भाई, सब देवै तन बौराई।
पचो में नाक कटावे, वह जूती मार दिलावै।।
चरणदास डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित पृ०-२३

समाज मे अपमान सहना पडता है।[1] इसका कारण स्त्री है जो नरक की खान, सिंह से भी अधिक भयकर, मदार और भटकटैया से भी भयानक और विषाक्त है।[2] इसलिये चाहे स्वकीया हो या परकीया दोनो त्याज्य है क्योकि आग तो आग है उसका काम जलाना है, वह चाहे घर की हो या बाहर की।

भीखा साहब धन पुत्र और स्त्री को कठिन फॉस मानते है।[3] जिसमे मनुष्य जन्म जन्मान्तर से फॅसकर उसका दास बन जाता है। गुजरात के कबीर कहे जाने वाले सन्त "अखा" ने भी माया, वासना, कचन एव कामिनी की निन्दा की है। उनके अनुसार माया तेली है, मन बैल है, शरीर घानी है जिसमे मानव मन की कामनाये पेरी जाती है।[4] नारी सर्पिणी, बाधिन एव डाकिन है।[5] माया और स्त्री एक दूसरे से अभिन्न है,[6] और ब्रह्म कवच पहन कर ही उससे बचा जा सकता है।[7]

---

१ मुँह काला गधे चढावे, बहु लोग तमासा आवै।
झिडका ज्यो डोले कुत्ता सबहीं के मन सु उत्ता।
चरणदास डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित पृ०-२३

२ जिन-२ आरे तको डायन की बहु तन कूँगई भखरे।।
दूध आक को पात कटैया, काल आगिन की जानो।
सिह मुछारे विषकारे को ऐसे ताहि पिछानो।
खानि नरक की अति दुखदाई, चौरासी भरमावे।
चरणदास डा०त्रिलोकीनारायण दीक्षित पृ०-२३

३ जन्म जन्म के उरझनि पुरझानि
समुझत करकत हीया।
यह तो माया फॉस कठिन है,
का धन सुत वित तिया। भीखा साहब की बानी वे०प्रे० पृ०-३

४ माया तेली मन वृषभ, काया, घाणी फेर।
अरवा पिलाए कामना, अरू होता जाय उमेर। सतकाव्य मे नारी पृ०-११४

५ सतकाव्य मे नारी पृ०-११४

६ सतकाव्य मे नारी पृ०-११४

७ सतकाव्य मे नारी पृ०-११४

सन्त प्रीतम दास नारी को समस्त बधनो मे सबसे कठिन एव अटूट बधन मानते है।[1] नारीविषय वासना के जल से पूरित नदी है।[2] वह नर को अध्यात्म पथ से विरत करती है।[3] नारी निर्दय एव कठोर कृपाण के सदृश है जो नर को काटने मे तनिक भी विलम्ब नहीं करती। नारी नागिन एव पुरुष मेढक है। वह हाव भाव दिखला कर नर को अनुरक्त करती है एव मौका देखकर मूषक रूप नर को स्वय मार्जारी बनकर खा जाती है।[4] कबीर दादू एव सुन्दरदास की तरह पलटूदास की भी वाणी नारी के प्रति भर्त्सनापूर्ण रहीं हैं। वे तो अस्सी वर्ष की वृद्धा का भी विश्वास नहीं करते है क्योकि जीवित अवस्था मे नारी पुरुष के शरीर का शोषण करती हैं औ मरने पर नरक ले जाती है।[5] इसलिए जैसे मृत सिह की खाल को देखकर हाथी डर जाता है, वैसे ही वे भी अस्सी वर्ष की वृद्धा का विश्वास नहीं करते।[6] ससार खरबूजा है, जिसे नारी के छुरी रूपी नेत्रों से कटना अवश्यभावी है। उसके नेत्र शेर का पजे के समान नाश करने वाले है।[7] यह देवो की घर की अप्सरा और योगी के घर की चेली है। इस अकेली माया ने कृष्ण को गोपी बनकर, राम को सीता बनकर, महादेव को पार्वती बनकर,

---

१ **बधन बीजे बहुत है, नारी समो नहीं कोय। सतकाव्य मे नारी पृ०-१२७**

२ **नारी नदी स्वरूप है, प्रबल विषय को पूर।**
कह प्रीतम केते गए, तासे रहियो दूर।।
सतकाव्य मे नारी पृ०-१२८

३ परमेश्वर के पन्थ में नारी उर चोपास।
कहै प्रीतम अधबीच से, उडावे आकास।। सतकाव्य मे नारी पृ०-१२८

४ सन्त काव्य म नारी पृ०-१२८

५ अस्सी बरस की बूढि कौ, पलटू ना पतियाय।
जियत निकोवे तन्तु को मुए नरक लै जाय।। सत बानी सग्रह पृ०-२२३

६ मुए सिह की खाल को हस्ती देखि डराय।
असिउ बरस की बूढि को पलटू ना पतियाय।। सत बानी सग्रह पृ०-२२३

७ **खरबूजा ससार है, नारी छुरी नैन।**
पलटू पजा सेर का, यो नारी का नैन।। सत बानी सग्रह पृ०-२२३

गृहस्थ को गृहिणी बनकर और दौलत बनकर तीनो लोको को खा लिया है।[1] वह विष घोल कर देने वाली कलवारिन है।[2] इस ठगिनी ने सारे ससार को ठग लिया है। त्रिगुण फॉस हाथ मे लिये हुये इस माया से बचने वाला ससार मे एक भी नहीं है।[3] धनी धर्मदास नारी को सर्वस्व हरण करने वाली बताते है।[4]

सन्त परम्परा मे आने वाले दूलनदास प्राणनाथ, यारीसाहब और दरिया साहब (मारवाड वाले) की वाणी मे नारी निन्दा का स्वर नहीं सुनाई देता है। दूलनदास तो नारी के प्रति अत्यन्त उदार दृष्टिकोण वाले है। उनके अनुसार तो स्त्री समस्त ससार की माता है, और पोषण करके बडा करती है। अत वह निन्दा के योग्य नहीं है, वरन् वन्दनीय है। जो इनकी निन्दा करते है, वे झूठे है।[5] इनके द्वारा की गई नारी विषयक अभिव्यक्ति सन्त काव्य परम्परा में अपवाद है।

---

[1] माया हमें अब जानि बगदावो, तुम तो ठगिनी जग बौरानो।
देवन के घर भयऊ अप्सरा, जागी के घर चेली।
सुर नर मुनि तो सबहीं खायो, होइ अलमस्त अकेली।
कृस्न कहँ गोपी होई खायो, सम कहँ होई सीता।
महादेव कॉ परबती होई, तो से कोऊ न जीता।
दौलत होई तिन लोकहुँ खायो गिरही की है नारी।
पलटू साहब की बानी भाग-३ वे०प्रे० पृ०-४५

[2] माया कलवारिन देत विष घोरि के
पिएँ विष सबै ना कोऊ भागे।। पलटू साहब की बानी भाग३ वे०प्रे० पृ०-३१

[3] माया ठगिनी जग ठगा, इकहै ठगा न कोय।
इकहै ठगा न कोय, लिए है त्रिगुन गॉसी।। पलटू साहब की बानी भाग३ वे०प्रे० पृ०-७६

[4] तिरिया निकट बुलाई कै दै गई माथे हाथ।
ले गई रग निचाइ कै ज्यों तेली के काथ।। भक्ति कालीन काव्य में नारी पृ०-४५

[5] जगतु मातु वनिता अहैं बूसी जगत जियाव।
निन्दन जोग न ये दोऊ, कहि दूलन मत भाव।।
वनिता ऐसी है बडी देखा यह ससार।
दूलन बन्दे दुहून को, झूठे निन्दन हार।। दूलनदास जी की वाणी वे०प्रे० पृ०-३६

(२) परनारी निषेध

सन्तजन माया का सबसे बडा रूप नारी को मानते है, जो भक्त और उसके आराध्य के बीच अन्तर डाल देती है।[1] उनकी वाणी मे नारी और काम को एक दूसरे के पर्याय के रूप मे प्रयोग किया गया है। नारी और काम का यही अन्योन्याश्रित सम्बन्ध इन सन्तजनो के मार्ग की सबसे बडी बाधा है। फिर भी जगत के शाश्वत एव सार्वकालिक गार्हस्थ भाव से विरत हो जाना इतना सहज नहीं है जितना सहज इसके मूल कारण नारी को समस्त समस्याओ की जड बताते हुये उसकी निन्दा करना है। वैसे भी आश्रम चतुष्ट्य की अवहेलना करके, केवल सन्यास आश्रम का अवलम्ब लेकर ये सन्त जन जिस मार्ग पर चलना चाहते थे, उनकी मनोवृत्ति उसके अनुकूल नहीं थी क्योंकि "चित्तवृत्ति निरोध" जिस मानसिक परिपक्वावस्था का परिणाम है उससे इन सन्तो का परिचय ही नहीं होता था। अत सन्त जनो ने मध्यम मार्ग का अनुसरण करते हुये गृहस्थ आश्रम तो स्वीकार किया किन्तु "परनारी निषेध" का उपदेश दिया। सतो मे से अनेक सद्गृहस्थ थे, अत गृहस्थाश्रम मे रहते हुये भी आसक्ति त्याग इनका मत था और परस्त्रीगमन निकृष्ट कोटि का कार्य और अक्षम्य अपराध था। सभी सन्त कवियो ने परनारी लोभ की निन्दा की है। कबीरदास के मत से तो रावण के दस सिरो का नाश परस्त्रीगमन के ही कारण हुआ था।[2] परस्त्री शूल के घाव की तरह कष्टकारी है।[3] स्वामी सुन्दरदास तो परनारी रत जनो को अज्ञानी समझते

---

[1] हरि बिचि घलै अतरा, माया बडा विसास। कबीर ग्र० पृ०-५६
कबीर माया पापणी, हरि सूँ करे हराम। कबीर ग्र० पृ०-५६

[2] परदारा पैनीछुरी मत कोई लावों अग।
रावण के दस सिर गये परनारी के सग।। सत बानी सग्रह भाग१, पृ०-५७

[3] परनारी, परसुन्दरी जैसे सूली साल। कबीर साखी सग्रह पृ०-१६६-६७

है।[१] नानक देव परस्त्री लोभ को विकार की श्रेणी मे रखते है।[२] रज्जब जी ने तो अप्नी ही गृहिणी छोड दी फिर दूसरे की स्त्री से क्यो प्रेम करने लगे, सर्प और केचुल के उदाहरण से उन्होने इस तथ्य को उद्घाटित किया है।[३] सत नामदेव तो परदारा त्याग को उच्चादर्श मानते है और ऐसे लोगो के निकट ईश्वर का सामीप्य होता है।[४] चरणदास जी के मत से परनारी का स्पर्श नरक को ले जाने वाला है।[५] जो पर नारी को अपनी समझते है वे परम अज्ञानी है।[६]

(३) सती की प्रशसा

सभी सन्त कवियो ने सती एव पतिव्रता स्त्रियो की मुक्त कष्ठ से प्रशसा की है। इन कवियो ने वासनायुक्त, मायारूपिणी, कुमार्गगामिनी, व्यभिचारिणी नारी की जितनी निन्दा की है, सती एव पतिव्रता नारी की उतनी ही प्रशसा की है। सती एव कबीर पतिव्रता एव व्यभिचारिणी मे अन्तर स्पष्ट करते हुये कहते है कि जिस स्त्री के एक पति है वह अत्यन्त सुखी है जबकि व्यभिचारिणी के अनेक खसम है फिर भी उसे कष्ट है।[७] पतिव्रता स्त्री कैसी भी हो, काली, कलूटी

---

१ अपनी गनेन पर की नारी,
अइया मनुषहुँ बूझि तुम्हारी। भक्तिकालीन काव्य मे नारी पृ०-५०

२ परदारा परधन पर लोभा,
हउमे विषेविकार।। भक्तिकालीन काव्य में नारी पृ०-५०

३ रज्जब घर घरणी तजी पर घरणी न सुहाय।
अहि तजि अपनी केचुली किसकी पहिरे जाय।। भक्तिकालीन काव्य में नारी पृ०-५०

४ परधन परदारा परिहरि, ताके निकट बसे नरहरी। सत सुधासार पृ०-५४

५ परनारी सब चेतियो, दीन्हो प्रकट दिखाय।
पर तिरिया पर परूस हो, भोग नरक को जाय।। भक्तिकालीन काव्य मे नारी पृ०-५०

६ पेट भरे भर सोइया ते नर पसू समान ।
परनारी के आपनी तिनका नाहीं ज्ञान।। चरणदास जी की वाणी पृ०-८०

७ पतिवरता को सुख घना जा के पति हैं एक।
मन मैली विभिचारिनी जाके खसम अनेक। सत बानी सग्रह पृ०-४०

कुरूपा और मैली हो, उस पर करोडो सौन्दर्य शालिनी स्त्रियॉ न्यौछावर की जा सकती है।[१] पतिव्रता स्त्री यदि कॉच की माला भी पहने हो तो भी इतनी सुन्दर लगती है जैसे सूर्य एव चन्द्रमा की ज्योति को धारण किया हो।[२] सती की तुलना साधू, सूरमा, ज्ञानी और गजदन्त से कहते हुये वे कहते है कि ये सब अग्रसर होने पर वापस नहीं जाते है।[३] सती स्त्री घर-घर घूमकर पीसना नहीं पीसती, ये तो रॉड (पतिविहीन) के कार्य है।[४] कबीर ने चार प्रकार की स्त्रियो की प्रशसा की है—कुमारी आत्मा, विरहिणी, पतिव्रता एव सती। रैदास ने भी सुहागन की प्रशसा करते हुये उसे ससार मे सबसे सुखी बताया है।[५] रज्जब जी ने कामिनी को कायर एव सती को सूरमा बताया है।[६] सतदादू पतिव्रता स्त्री की प्रशसा करते हुये कहते है कि वह कभी भी अपने प्रिय का नाम अपने मुख से नहीं लेती है।[७] स्त्री निम्नकुल की हो या उच्चकुल की पति सेवा ही उसका धर्म है। रूपवान होना कोई कसौटी नहीं है।[८] वह सभी प्रकार से अपने पति मे रत रहे, अन्य पुरुषो की भाई माने।[९] पतिव्रता के प्रणय की पराकाष्ठा दादू के मत में वह स्थिति

---

१ पतिवरता मैली भली काली कुचित कुरूप।
पतिवरता के रूप पर वारौ कोटि सरूप।। सत बानी सग्रह पृ०-४०

२ पतिवरता मैली भली, गले कॉच की पोत।
सब सखियन मे यौ दिपे, ज्यों रबिससि का जोत।। सत बानी सग्रह पृ०-४०

३ साधसती और सूरमा, ज्ञानी और गजदन्त।
एते निकसि न बाहुरे, जो जुग जॉय अनन्त।। क०सा०स० भाग१-२ पृ०-२३

४ सती न पीसे पीसना, जे पीसे सो रॉड। क०सा०स० भाग१-२ पृ०-२३

५ सुख की सार सुहागन जाने।
तन मन देय अन्तर नहि आने।। रैदास बानी पृ०-३०

६ रज्जब कायर कामिनी रही विपत के सग।
सती चढी सिर चढन कूॅ पहर पटम्बर अग। सत सुधासार पृ०-५१७

७ सुन्दरि कबहूॅ कत का मुख सौ नाव न लेई
अपणे पिव के कारणे, दाइ तन मन देइ। सत बानी सग्रह पृ०-१९

८ नीच ऊॅच कुल सुन्दरी, सेवा सारी होइ।
सोइ सुहागिनि कीजिये, रूप ने पीजिये धोइ। सत बानी सग्रह पृ०-१९

९ आन पुरिष हूँ बहनड़ी, परम पुरिष भर्तार। सत बानी सग्रह पृ०-१९

है, जब वह समझने लगे कि उसका शरीर, मन, प्राण और पिण्ड सब कुछ उसके प्रिय का है, और उसका प्रिय केवल उसका है। यह सर्वस्व समर्पण एव व्यक्तित्व विलीनता की स्थिति आदर्श स्थिति है।[1] सुन्दरदास जी जो नारी के कटु निन्दक थे, ने भी पतिव्रता की मुक्त कण्ठ से प्रशसा की है। पतिव्रता अपने पति को ही सब कुछ समझती है, ऐसी स्त्री को अष्ट सिद्धि एव नवनिधि स्वत ही प्राप्त हो जाती है। वह अपने प्रिय का मार्ग देखती रहती है।[2] सत चरणदास जी के अनुसार पतिव्रता वहीं है जो पति की आज्ञा भग न करे। उसे किसी अन्य का ढग नहीं सुहाता, वह अपने प्रिय के रग मे रगी रहती है।[3] वहीं पटरानी है और रूपवान है जो अपने प्रिय को प्रिय हो।[4] सत चरणदास पतिव्रता को केवल पति की ओर देखने का निर्देश देते है।[5] पलटू की दृष्टि मे पतिव्रता वहीं है जो पतिव्रत धर्म का निर्वाह करती हुई अपने मार्ग से न डिगे।[6] स्वामी वाजिद जी के अनुसार पतिव्रता स्त्री पति के सभी दोष अपने ऊपर ले लेती है।[7] उसे किसी और द्वारा

---

१ तन भी तेरा मन भी तेरा, तेरा पिंड परान।
सब कुछ तेरा तू है मेरा, यहु दादू को ज्ञान ।।सत बानी सग्रह पृ०-१

२ मारग जोवै विरहिनी, चितवै पिय की ओर।
सुन्दर जियरे जक नहीं, कल न परत निस भोर।। सत बानी सग्रह पृ०-१०९

३ पतिवरता वहि जानिये, आज्ञा करे न भग।
प्रिय अपने रगरते, और न सोहे ढग।। सत बानी सग्रह पृ०-१४७

४ पतिमन मानी सो पटरानी, सोइ रूप उजारी है।
चरनदास जी की बानी भाग-२, पृ०-३४

५ पति की ओर निहारियें औरन सूँ क्या काम। स०बानी सग्रह पृ०-१४७

६ परन नीबाहे और सॉच में दाग न लावे।
ज्यो पति वर्त्ता नारि डिगे ना लाख डिगावे।। पलटू साहब की बानी भाग-२, पृ०-६६

७ सूर कमल वाजिद न सुपने मेल है।
जरे घौस अरू रैण कढाई तेल है।
हम ही मैं सब खोट, दोष नहीं श्याम हूँ।
हरि हॉ वाजिन्द ऊॅच नीच सों बधे कहो किमि काम हूँ। भक्तिकालीन काव्य में नारी पृ०-५९

दी हुई वस्तु नहीं सुहाती, उसके लिये तो अपने स्वामी के हाथ का पत्थर भी भला है।[1]

सत रज्जब जी के अनुसार पतिव्रता स्त्री एक मात्र अपने पति को ही ससार मे पुरुष मानती है।[2] सत जगजीवन दास पति पर तनमन वारने वाली और उसकी चरण छाया मे रहने वाली पतिव्रता के गुण गाते है।[3] सत दूलनदास[4] और दरिया साहब (बिहार वाले) भी इसी मत के है।[5]

इस प्रकार हम देखते है कि लगभग सभी सत कवियो ने सती एव पतिव्रता स्त्री की मुक्त कण्ठ से प्रशसा की है। इन सन्त कवियो ने गृहस्थ और सन्यास धर्म मे समन्वय स्थापित किया। इन सन्त कवियो ने सन्यास आश्रम की महिमा बताते हुये भी गृहस्थाश्रम को प्रतिष्ठा दी, और समाज को अति मात्राओं के त्याग (ग्रहण और परित्याग) द्वारा मध्य मार्ग पर चलने का उपदेश दिया जो दादू के शब्दो मे ग्रहण और परित्याग के मध्य मार्ग द्वारा मुक्ति की उपलब्धि का उच्चादर्श था–

ना हम छाडे ना ग्रहे, ऐसा ज्ञान विचार ।
भद्विभाव सेवै सदा दादू मुक्ति द्वार ।।[6]

---

[1] आवेगे किहि काम पराई पौर के।
मोती जर-बर जाहुन लीजै और के।
परिहरिये वाजिन्द न छूवै माथ को।
हरि हॉ पाहन नीको वीर नाथ के हाथ को । भक्तिकालीन काव्य में नारी पृ०-६०

[2] पतिव्रता के पीव बिन, पुरुष न जनम्यॉ कोइ। भक्तिकालीन काव्य में नारी, पृ०-६१

[3] मै तन मन तुम्ह पर वारा
निसदिन लागि चरन की छहियॉ सूनी सेज निहारा। भक्तिकालीन काव्य में नारी पृ०-६१

[4] पति सनमुख से पतिव्रता । भक्तिकालीन काव्य में नारी, पृ०-६१

[5] धनि ओई नारि पिया सगि राती।
सोइ सुहागिनी कुल नहीं जाती ।। भक्तिकालीन काव्य मे नारी पृ०-६१

[6] दादूदयाल की बानी पृ०-१७०

सतो का आदर्श ससार के मध्य निर्लिप्त एव अनासक्त भाव से रहना है। इसी अनासक्ति का सबल लेकर सन्तो ने गृहस्थ जीवन मे मुक्ति पा ली।[1]

(ग) संतों की नारी निन्दा के कारण

मध्ययुग सामाजिक जीवन मे सक्रान्ति का काल है। मध्ययुग की सामाजिक दशा का चित्रण सन्त काव्य मे बहुत ही विशाद रूप मे मिलता है। तत्कालीन शासको के अत्याचारो, दमन, आर्थिक, राजनैतिक कारणो का प्रभाव सन्तो की वाणी मे परिलक्षित होता है। सन्त काव्य का गहराई से विश्लेषण करने पर उसकी दो मूलभूत विशेषताओ का पता चलता है।

१ सतगुरु की प्रशसा

२ नारी निन्दा

सतगुरु की प्रशसा तो समझ मे आती है, क्योकि आध्यात्मिक उन्नति एव तत्पश्चात मोक्ष प्राप्ति की स्थिति तक सतगुरु ही पहुँचाता है, लेकिन सतो द्वारा की गई नारी निन्दा के कारण वस्तुत क्या है, यह विवेचना की वस्तु है। कुछ विद्वान तो इस मत के हैं कि सतो के द्वारा की गई नारी निन्दा नारी की निन्दा नहीं, अपितु मूढता एव काम भावना की निन्दा है (वास्तव मे कहीं-कहीं नारी और काम भावना एक दूसरे के पर्याय के रूप मे प्रयुक्त हुये है।) और इस प्रकार सन्त काव्य मे प्रयुक्त नारी निन्दा प्रतीकात्मक है। इस सबध मे डा० गजानन

---

[1] मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में नारी भावना –पृ०–८०

शर्मा का मत दृष्टव्य है–"समस्त सन्त साहित्य मे नारी को आत्मा के प्रतीक रूप मे प्रयुक्त किया गया है, स्वय "नारी" अभिधेय के रूप मे नहीं। सतो की "नारी" अथवा "नारी" शब्द वास्तविक जग्त की नारी नहीं थी। उनके द्वारा अकित "नारीत्व" मे "आत्मात्व" का आरोपण था। वह "नारी" सामाजिक नारी नहीं थी, और न हो सकती थी। उनसे तत्कालीन नारी की वास्तविक स्थिति का सहसा बोध नही हो सकता।[१]

लेकिन नारी के प्रति जिन अभिधानो का प्रयोग सन्त कवियो ने किया है, उसे इस मतव्य से ढका नहीं जा सकता है। सत कवि उसे नागिन, कुतिया, बाघिन, मार्जारी, पैनीछुरी, राक्षसी, डाकिनी, विष की खान, विषफल, विष बेल, नरक का कुँआ, कालस्वरूपिनी, अग्नि की जवाला, एव नरक का द्वार कहने से नहीं चूके है। ये अभिधान प्रतीकात्मक तो हरगिज नहीं कहे जा सकते है। सन्त कवियो का दृष्टिकोण तो तभी समझ में आ जाता है, जब सुन्दरदास नारी शरी को सघन वन कहते है, जिसमे नर का भूलना स्वाभाविक है। उस नारी की सरचना नरव से शिख तक मलिनता पूर्ण है और पलटू साहब को तो अस्सी वर्ष की बुढिया का भी विश्वास नहीं है। महात्मा कबीर तो नारी जाति के प्रति इतने सशकित हैं कि वे नर को अपनी माता के पास भी बैठने से मना करते हैं।

इस सबध में डा० अम्बाशकर नागर का मत बहुत ही सगत प्रतीत होता है उनका मत है कि, "सन्तकाव्य के सम्वादी स्वरों के बीच एक विवादी स्वर नारी निन्दा का भी है, जिसे नकारा नहीं जा सकता है।[२] डा० पीताम्बर दत्त बडथ्वाल

---

१ भक्तिकालीन काव्य में नारी , पृ०-३७

२ सन्तकाव्य में नारी पृ०-३७२

सन्नो की नारी विषयक धारणा को विश्लेषित करते हुये कहते हैं कि, दुख की बात है कि स्त्रियो मे इन लोगो ने केवल भोले भाव को ही देखा, उनके आध्यात्मिक आदर्श की ओर से इन सन्तो ने ऑखे मूँद ली है, जिसे उन्होने उस शाश्वत प्रेमी की भार्याऐ बनकर अपनाने का विचार किया है।[1] डा० उषा पाण्डेय सन्तो की नारी के प्रति अवधारणा को निरूपित करती हुई कहती हैं कि, "इन सन्तो ने नारी के काम जनित वासनात्मक स्वरूप को घृणास्पद एव गर्हित बताया। उन्होंने काम मात्र को घृणित बताया और पुरुष और नारी दोनो को ही एक दूसरे के लिये अकल्याण कारी और बधन स्वरूप माना है।[2] जैसा कि सन्त दादूदयाल का कथन है-

नारी वैरणि पुरुष की, पुरुषा वैरी नारि ।

अन्तकाल दून्यू पचिमुए, कछु न आया हाथ ।।[3]

डा० बडथ्वाल एव डा० उषा पाण्डेय एक अत्यन्त महत्वपूर्ण तथ्य की ओर ध्यान खींचते है, वह यह है कि सन्त जन स्त्रियो को भीइस पारमार्थगामी मत मे प्रवेश देते है, इस कारण स्त्रियो को इन सन्तो का ऋणी होना चाहिये। अनेक सन्तो ने स्त्रियो को भी अपनी शिष्य मडली मे स्थान दिया। सत दादू की अनेक स्त्री शिष्याये थी। सत चरणदास की तो दोनो शिष्याये केवल चरणदासी सम्प्रदाय मे ही नहीं, प्रत्युत् समस्त निर्गुण पन्थ के आदर्श रत्नो मे हैं।

डा० बडथ्वाल सन्त काव्य मे नारी निन्दा को प्रतीकात्मक मानते है, और इसका स्पष्टीकरण करते हुये कहते है कि "इन कवियो की कविताओं मे एकमात्र

---

१ हिन्दी काव्य मे निर्गुण सम्प्रदाय

२ मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में नारी भावना

३ दादूदयाल की बानी पृ०-१७२

पुरुष परमात्मा है और अन्य सभी उसकी पत्नियॉ है। उनका लक्ष्य सदा नियमित एव सयमित जीवन का रहा है। आगे चलकर जब काव्य मे मुगल दरबारो की विलासिता की प्रतिध्वनि सुन पडने लगी और हिन्दू सामन्तो के यहॉ भी उनके अनुकरणो की होड लगने लगी, तथा स्त्रियो की चर्चा (नख-शिखकी) प्रतिदिन का कार्य बन गई तो सन्तो ने इसके विरूद्ध सिर ऊँचा किया।[१] डा० बडथ्वाल इस मत के है कि सामाजिक परिस्थितियो के कारण सन्तो ने नारी निन्दा की है। डा० गजानन शर्मा भी सन्तो द्वारा की गई नारी निन्दा प्रतीकात्मक मानते है, "यह सत्य है कि सन्तो ने नारी शब्द का ग्रहण वासना के प्रतीकार्थ मे किया है और उनके वास्तविक मन्तव्य को जानने के लिये "नारी" का यही अर्थ लगाना हमारे लिये अनिवार्य भी है। सन्त नारी शब्द की जगह नर शब्द का प्रयोग भी तो कर सकते थे। इस तथ्य के सदर्भ मे डा० गजानन शर्मा का विश्लेषण सन्तो के एकागी दृष्टिकोण को व्यक्त करने वाला है," किन्तु इतना सब होते हुये भी यह तो कहना ही पडेगा कि सन्तो ने इस विषय को मनोवैज्ञानिक गहराई न देकर ऊपरी-ऊपरी अभिव्यक्ति दी। वे चाहते तो "नर" शब्द को भी वासना के अर्थ मे ग्रहण कर सकते थे। वासना की प्रवृत्ति जैसी नारी में है, वैसी ही नर मे भी तो है। नारी के प्रेरकत्व को तो उन्होने देखा, नर के प्रेरितत्व को देखा ही नही। उन्होने परस्पर आकर्षण के जैवकीय सत्य की घारे उपेक्षा की। यदि अपर लिग (Other sex) को घृणास्पद सिद्ध करके किसी मे ठोक पीट कर वासना के प्रति जुगुप्सा जगायी जा सकती है, तो यह भी उतना ही सत्य है कि स्वय अपने ही दोषो को देखकर और समझकर मनुष्य और भी दृढता के साथ सत्पथ की

---

१ हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय पृ०-३७२

२ भक्तिकालीन काव्य में नारी पृ०-६५

ओर उन्मुख होता है।[1] यह तो वास्तविकता है ही कि सन्तो ने अपनी वाणी से नारी की मर्यादा को बहुत हानि पहुँचायी है।

निर्गुण सन्त साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान आचार्य परशुराम चतुर्वेदी जी अपने महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'उत्तरी भारत की सत परम्परा' मे सन्तो के द्वारा की गई नारी निन्दा का मूल कारण वज्रयानियो की व्यभिचार वृत्ति को माना। वज्रयानियो की व्यभिचार प्रवृत्ति के कारण जब समाज मे अत्यधिक विषमता बढ गई तब सन्तो ने नारी निन्दा के द्वारा कामाचारो एव व्यभिचारो को रोकने का स्तुत्य प्रयास किया। वज्रयान की साधना करने वाली प्रत्येक साधक के लिये एक महामुद्रा के सम्पर्क मे रहना भी परम आवश्यक समझा जाने लगा था। वज्रयानी साधक किसी निम्न कुल मे उत्पन्न सुन्दरी स्त्री को चुनकर गुरु की आज्ञानुसार उसे अपनी महामुद्रा बना लेता था। उस साधक की साधना उस महामुद्रा के साथ एकात्म भाव से चलती थी। महामुद्रा और वज्रयानी साधक एक दूसरे की मनोवृत्तियो के साथ तादात्म्य स्थापित करने का प्रयास करते थे, और इस सम्प्रदाय के अनुभूत सिद्धान्तो के आधार पर यह कहा जाने लगा कि कठोर एव कष्टसाध्य नियमो के साथ तपश्चर्या करने से भी जितनी शीघ्रता से सिद्धि प्राप्त होने की सभावना नहीं रहती थी, उससे शीघ्र महामुद्रा के साथ साधक के कामोपभोगो से हो जाया करती थी। वज्रयानी आचार्यों ने महामुद्रा के बारे मे कहा हे कि उसे चाण्डाल कुल की या डोमिन होना चाहिये और वह जिनती ही घृणित जाति की होगी, सफलता उतनी ही शीघ्रता से होगी–

---

[1] भक्तिकालीन काव्य मे नारी, पृ०-६६
उत्तरी भारत की सत परम्परा पृ०-३६

चाण्डाल कुल सम्भूता, डोम्बिका वा विशेषत।
जुगुप्सित कुलोत्पन्ना सेवयन् सिद्धिमाप्नुयात्।।
स्त्रीन्द्रिय यथा पदम् वज्र पुसेन्द्रिय तथा।।[1]

ऐसे अमान्यकर एव हानिकारक साधना पन्थ जिस सामाज मे प्रचलित हो, और स्त्रियॉ जिस साधना मार्ग मे साधन रूप मे प्रयुक्त की जाती हो, वह स्त्रियॉ भी साधारण न होकर विशेष वर्ग समूह की हो, और वह वर्ग समूह भी दीर्घकाल से अश्पृश्यता, अशिक्षा, दरिद्रता के दलदल मे फॅसा हो तो उस काल मे सामान्य स्त्रियो की दशा अपने आप स्पष्ट हो जाती है। वज्रयानी साधक अपनी इस एकान्तिक साधना (महामुद्रा के साथ) मे अनेक दुर्व्यसनो मे भी प्रवृत्त हो जाया करते थे, उनकी यह विशेष साधना पद्धति और उसमे दुर्व्यसनो मे प्रवृत्त होने की अनिवार्यता इनका दुष्परिणाम अतत समाज को ही भुगतना पडता था और इस तरह अगर चतुर्वेदी जी के मतानुसार कहे तो, "ये सारे उपकरण अनधिकारी साधको के लिये व्यभिचार परक आदेश बन गये और इस साधना का वास्तविक रहस्य क्रमश विस्मृत हो गया।[2] इस प्रकार हिन्दू धर्म एव बौद्धधर्म के इतिहास मे यह समय अव्यवस्थिति के कारण बहुत विषम हो गया था, और इस समस्यामूलक दशा को सभाल कर किसी सर्वजनानुमोदित श्रेयस्कर मार्ग का निकालना अत्यन्त दुष्कर कार्य हो गया था। फिर भी कई सुधारक सम्प्रदायों ने इस दिशा मे सफल होने की चेष्टा की।[3]

---

[1] सत काव्य मे नारी से उदघृत पृ०-१६४ /

[2] उत्तरी भारत की सत परम्परा पृ०-३६

[3] उत्तरी भारत की सत परम्परा पृ०-३६

डा० सिद्धि नाथ तिवारी ने सन्तो के द्वारा की गई नारी निन्दा को सिद्धो की व्यभिचार भावना दूर करने का कारण बताया। उनके अनुसार जब बौद्ध धर्म का पतन हो गया तो साधको ने यह सोचा कि कहीं ऐसा न हो कि "माया मिले न राम। अत साधक कामिनियो के गुदगुदे स्पर्श से अपनी थकान मिटाने लगे। भैरवी चक्र एव त्रिपुर सुन्दरी का अनुष्ठान किया जाने लगा। निर्वाण के लिये प्रज्ञा-पारमिता का उपभोग अनिवार्य हो गया। चूँकि प्रज्ञा का निवास पृथ्वी तल की प्रत्येक स्त्री मे है, अत स्त्रियो का भोग बिना किसी सकोच और बिना किसी भेद के करना चाहिये। यह भावना बलवती हो उठी कि स्त्री ससर्ग से ही साधक निर्वाण प्राप्त कर सकता है।[1] डा० तिवारी के अनुसार, प्रेम मे लीन होकर श्रेय की साधना करना उसी प्रकार असम्भव है जैसे मदिरापान करके मत्त नहीं होना। अत योगियो ने नारी को सारे अनर्थो की जड मान कर उसकी भर्त्सना की। गोरखनाथ एव अन्य नाथपन्थी साधुओ के द्वारा की गई नारी निन्दा का भी शायद यही कारण है।

डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित मध्यकालीन सामाजिक दशा को नारी निन्दा के लिये उत्तरदायी ठहराते है, "मध्ययुग मे नारी की दशा अत्यन्त हीन थी। उस समय अन्य वस्तुओ के सदृश नारी भी सम्पत्ति समझी जाती थी, उसे केवल भोग की सामग्री समझा जाता था। सुन्दर नारियो के लिये विकट युद्धो का आयोजन होता था। इसी कारण परदे तथा बालविवाह की प्रथाये चल पडी। नारी का कामुक रूप ही मध्ययुग मे देखा जाता था। इसी कारण उस समय के सत कवियो ने इन्द्रियो को जीतने की प्रेरणा दी। कर्म एव वचन मे सामञ्जस्य किया।

---

[1] निर्गुण काव्य दर्शन पृ०-३२

[2] निर्गुण काव्य दर्शन पृ०-५१

जगत की क्षणभगुरता की ओर जनता का ध्यान दिलाते हुये मुक्ति का सन्देश दिया।[1] सन्तो की नारी के प्रति भावना अच्छी नहीं है, किन्तु वे उसके उसी रूप को हेय समझते है, जो हमे माया की ओर अधिकाधिक आकृष्ट करता रहे।

डा० आशा गुप्ता सगुण एव निर्गुण हिन्दी साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन मे सतो की नारी निन्दा का कारण पुरुष का नारी के प्रति सहज आकर्षण मानती है, उनके अनुसार स्त्री पुरुष को भक्ति मुक्ति और ज्ञान के मार्ग मे कभी भी प्रवेश नहीं करने देती। परन्तु आश्चर्य इस बात का है कि यह तथ्य जानते हुये भी पुरुष नारी के प्रेम से बच नहीं पाता उसी को अपना काम्य समझता है।[3] अत सत कवियो ने कनक की निन्दा करते हुये कामिनी की भी बराबर निन्दा की है।[४]

डा० गजागन शर्मा नारी को गार्हस्थिक समस्याओ से घिरी एव परिवार वृद्धि का मूल कारण मानते हुये सतो की नारी विषयक मान्यता को विश्लेषित करते हुये लिखते है कि "नारी माया जाल मे फॅसाने वाली मानी गई है, क्योकि उसी से परिवार की वृद्धि होती है। वह पुरुष की सहज स्वच्छन्द वृत्ति पर रोक लगाती है। घुमक्कड, फक्कड और मनमौजी लोग ही जब नारी को इस प्रकार निन्दनीय ठहरा देते हैं तो सन्त जन जिन्हे परमात्मा से मिलन की लगन लगी हुई भी और जिनका मन-पछी प्रत्येक क्षण विद्युद्वेग से उड कर प्रिय के समीप पहॅुच जाने की तीव्र अभिलाषा रखता था, क्यो न नारी को हेय समझते, जो सदा

---

१ हिन्दी सन्त साहित्य पृ०-१५

२ सुन्दरदर्शन- सत काव्य मे नारी से उदघृत पृ०-१६४

३ सगुण एव निर्गुण हिन्दी साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन पृ०-१३२

४ सगुण एव निर्गुण हिन्दी साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन पृ०-१३२

बाल बच्चो एव नोन-तेल-लकडी की समस्याओ का ही रोना रोती रहती थी, और इस प्रकार परम ज्योति से सन्तो का मन विकर्षित करने के प्रयत्न मे तत्पर रहती थी।[1] ये सन्त जन (कुछ को अपवाद छोडकर) माता व बहन की निन्दा से स्वय को बचा ले गये, अब बच रही केवल पत्नी जिस पर तत्कालीन जन अपनी परिवार वृद्धीकरण की नीति पर बिना नियन्त्रण किये हुये, नित्य वर्तमान गृहस्थी का भार डालते चले जा रहे थे, जब वह इस बोझ से कराह उठती, तो वे उसे पापिनी, माया आदि की दार्शनिक गालियॉ सुना दिया करते थे। लोक मे निकम्मे, निठल्ले निखट्टे आदि सज्ञाये पाने वाले ये लोग अपनी हीन भावना से उद्धार पाने के लिये नारियो पर ही अपना दोष मढने लगे।

डा० उषा पाण्डेय सहजयानियो एव वज्रयानियो की नारी उपासना को उसकी पतन शीलता के लिय उत्तरदायी मानती है, "सामान्यत समस्त सन्त कवियो ने नारी के कामिनी रूप की निन्दा एव भर्त्सना की है। उसे घृणित, भयप्रद, हानिकारक, अभिशाप पूर्ण बतलाया है। ये सन्त कवि सहजयानियो एव वज्रयानियो की नारी उपासना देख चुके थे, उसका वीभत्सरूप देखकर उन्हे नारी की ओर से विरक्ति एव ग्लानि होना स्वाभाविक ही थी। उन्होने देखा कि योग एव विराग का प्रथम सोपान इन्द्रिय निग्रह ही है, जबकि लोक एव समाज की नैतिकता शिथिल हो गई है। नारी समाज की भोग लिप्सा का साधन मात्र है। इसी बिन्दु से सुन्दर दास ने नारी की सुन्दरता का वर्णन करने वाले काव्य को समाज के लिये बीमार को मिठाई के समान घातक बतलाया है।

---

१ भक्तिकालीन काव्य मे नारी पृ०-४२

२ भक्तिकालीन काव्य में नारी पृ०-४६

इस द्वादश कारणो के अन्तर्गत विदुषी लेखिका ने अत्यन्त गहराई तक जाकर नारी निन्दा के कारणो की गवेषणा की है। नारी निन्दा का पारम्परिक कारण बतलाते हुये उनका कथन है कि, जब कोई परम्परा चल पडती है तो परवर्ती चाहे-अनचाहे उसका अनुकरण करने लगते है। सन्तकाल के प्रारम्भ होने से पूर्व सस्कृत, प्राकृत तथा देश - भाषाओ के नीति - काव्य मे पति प्रशसा एव नारी निन्दा की एक व्यापक परम्परा चल पडी भी जिसका प्रभाव सन्तकाव्य पर भी पडा।[1]

सामाजिक कारण के सन्दर्भ मे उनका मत है कि सन्तकाव्य में व्यक्त नारी निन्दा के लिये तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियॉ भी उत्तरदायी है। जैसा समाज होगा वैसा ही साहित्य भी होगा, क्योकि साहित्य समाज का दर्पण है । उसमे समाज की अच्छाइयॉ और बुराइयॉ प्रतिबिम्बित होती हैं मध्यकाल मे विषेशकर मुसलमानो के आकमण के कारण देश मे अराजकता फैल गई भी। नारी का रक्षण उन दिनो कठिन कार्य हो गया था। न केवल आकमण कारी तथा शासक नारी के लिये आतक का कारण थे, अपितु देश के लोग भी उस अराजकता की स्थिति मे नारी के लिये आतक का पर्याय थें। नारियो का अपहरण और उनका सतीत्व हरण उन दिनो प्रतिदिन घटने वाली सामान्य बात थी।[2] जब पिता और पति के लिये पुत्री और पत्नी का रक्षण एक विकट समस्या बनी हुई थी, जब विधवाओ से छुटकारा पाने के लिये सती प्रथा के नाम पर उन्हे जबरदस्ती आग मे जला दिया जाता था, ऐसे समय में सन्तो का यह कर्तव्य हो गया था कि वे समाज को कचन और कामिनी से विरत करें और एक

---

१ सतकाव्य मे नारी पृ०-१६८

२ सन्तकाव्य में नारी पृ०-१७०

पत्नीव्रत तथा एक प्रतिव्रत का आदर्श समाज मे स्थापित करे उन परिस्थितियो मे सन्तो ने नारी के सबध मे जो कुछ कहा है यद्यपि वह कटु है, तथापि क्षम्य है क्योकि उन्होने नारी की सुरक्षा को घ्यान मे रखकर ही कामिनी भी निन्दा एव पतिव्रता की प्रशसा की थी।[1]

नारी निन्दा के मनोवैज्ञानिक कारण की विवेचना करते हुये डा० कृष्णा गोस्वामी ने कहा है कि निन्दा और घृणा दोनो ही असफल मन की प्रतिक्रियाये हैं। वस्तुस्थिति की दृष्टि से विचार करने पर प्रतीत होता है कि असफलता का केवल यही अर्थ है कि रुकावट के विरूद्ध प्रयास करने पर रुकावट अधिक बलवती सिद्ध हुई हैं। सन्तो का नारी से इसलिये सघर्ष था कि वह उनके अध्यात्म पथ की बाधा थी, रुकावट थी। उनका और नारी का सघर्ष मनोविज्ञान की भाषा मे एक धनात्मक और एक ऋणात्मक प्रेरक सघर्ष था। वे वाछित लक्ष्य की और बढना चाहते थे, किन्तु नारी रुकावट बनकर उन्हे भौतिकता की और पीछे धकेलती जाती थी। इसी सवेगात्मक प्रकिया का दर्शन नारी पर दोषारोपण करने की प्रवृत्ति के रूप मे सन्त काव्य मे प्राप्त होता है। निन्दक प्राय हीन भावना से ग्रसित होते है। लधुता ग्रन्थि पीडा ही निन्दा मे अभिव्यक्त होती है जिस नारी से भागकर घर ससार को छोडकर कुछ सत रमते राम बन बैठे थे, वह नारी घर छोडने पर भी उनपर छाई हुई थी, वे बाह्म दृष्टि से उससे मुक्त हुये थे, किन्तु उनका मन सम्भवत नारी के प्रभाव से मुक्त नही हो सका था। वे

---

१ वही पृ०-१७२

२ सन्तकाव्य में नारी पृ०-१८०

उस नारी से दूररहकर भी उससे आक्रान्त थे। नारी निन्दा मन पर छाई हुई इसी नारि मुक्ति का प्रयास प्रतीत होती है।[1]

डा० शैल कुमारी ने "आधुनिक हिन्दी काव्य मे नारी भावना मे सन्तो की नारी निन्दा के तीन कारण बताये है।

(१) जब सन्यास का आदर्श ससार त्याग ही हो गया तो एक स्त्री, जो ससार की सहस्त्रो समस्याओ को लिये हुये उसमे बाधा स्वरूप है, अनादर की दृष्टि से देखी जाने लगी।

(२) सन्तो की साधना प्रेम की अपेक्षा ज्ञान की साधना भी,जिसमे नारी बाधक भी अत सन्तो ने नारी की निन्दा की है।

(३) वज्रयानियो के नारी सबधी दृष्टिकोण के अनुसार धार्मिकता और नैतिकता की जगह अनाचार और दुराचार बढ रहा था, अत सभी सन्तो ने नारी से दूर रहने का अपने साहित्य मे उपदेश दिया।[2]

सन्तो की नारी विषयक धारणा अनेक कारणो पर आधारित है, किसी एक कारण पर यह धारणा अवलम्बित नही है। मध्ययुग मुगल बादशाहों का युग है, यह वह काल है जब भारतीय विशेषकर हिन्दू जनता मुस्लिम आकमणों से आक्रन्त थी, दूसरे दर्जे की नागरिक थी। उसकी दशा अत्यन्त शोचनीय थीं। सर्वत्र गरीबी, भुखमरी और दुर्व्यवस्था फैली थी। तत्कालीन सामान्य मनुष्य की

---

[1] वही पृ०-१८०

[2] सन्तकाव्य हिन्दी काव्य में नारी भावना पृ०- ३

वास्तविक स्थिति का खाका यदि तुलसीदास जी के शब्दो मे खीचे तो वस्तुस्थिति अधिक स्पष्ट हो जायेगी-

> खेती न किसान को, भिखारी को न भीख कलि।
>
> बनिक को बनिज न, चाकर को चाकरी।।
>
> जीविका विहीन लोग, सीद्यमान सोच बस।
>
> कहै एक एकन सो, कहाँ जाई का करी।।[1]

यह कहाँ जाने और क्या करने की जो किकर्त्तव्यविमूढ स्थिति है, इससे उस काल का लगभग हर प्राणी गुजर रहा था। जब सामाजिक व्यक्ति, गृहस्थ व्यक्ति के लिये कोई व्यवसाय, चाकरी, खेती, सभव नहीं थी, तो सतो की क्या बात जो निस्पृह, निर्लोभी, एकमात्र अपने प्रिय की आराधना मे लीन रहने वाले थे। ऐसी विषम आर्थिक राजनैतिक स्थिति मे जब तमाम समस्याये सामने हो, जिनका समाधान असम्भव हो, और नैतिक मानदण्डो के कारण ये सन्त अपनी झुँझलाहट अपनी माता व बहन पर न उतार पाते हो, (यद्यपि सन्त काव्य मे नारी निन्दा के साथ ही परिवार निन्दा भी मिलती है, नारी के सामान ही परिवार भी उनकी आध्यात्मिक उन्नति मे बाधक था) तो एकमात्र पत्नी ही बचती थी, जिसे समस्त समस्याओं का जड मानते हुये सन्त जन अपनी वाणी को विराम देते थे। किसी भी कवि की नारी सबधी अनुरागात्मक या विरागात्मक भावना तत्कालीन राजनैतिक धार्मिक और आर्थिक परिस्थितियो के आधार पर बनती है।[2] जिस काल मे समाज धर्म की ओर झुक जाता है, उस काल मे वह नारी से घृणा करता है, क्योंकि लगभग सभी धर्मों मे नारी को काम का प्रतीक मानकर

---

[1] कवितावली उत्तरकाण्ड छ० पृ०-९७

[2] आधुनिक हिन्दी काव्य मे नारी भावना डा० शैलकुमारी पृ०-१

आध्यात्मिकता मे बाधा माना गया है, जैसे यूरोप मे ईसाई धर्म मे नारी को नरक का द्वार सिद्ध कर दिया गया था। भारतीय सस्कृति का इतिहास भी समाज मे स्त्रियो की परिवर्तनशील अवस्था का परिचायक है।[1]

भक्तिकालीन काव्य मूलत धार्मिक काव्य है। धर्म मे काम बाधक माना गया है, और कामिनी काम का मूल कारण मानी गयी है। अत कामिनी का त्याग इस माग पर चलने वाले सतो के लिये एक आवश्यक कार्य था। भारतीय धर्म साधना मे जिन दुर्गुणो (क्रोध, मद, काम, मोह, मत्सर,) को दूर करके सद्गुणो के सधान की बात की जाती है काम भी उनमे एक दुर्गुण है और निष्काम (केवल काम भावना ही नहीं अपितु समस्त कामनाओ से रहित) होना सबसे बडा गुण है। नारी निन्दा के कारणो मे एक प्रमुख कारण भक्ति कालीन काव्य का धार्मिक काव्य होना भी है।

भारतीय सस्कृति मे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार पुरूषार्थ माने गये है, और काम का स्थान धर्म और अर्थ के बाद आता है। भारतीय सस्कृति मे कहीं भी काम का निषेध नहीं है, लेकिन एक व्यवस्था है, जीवन को सुसगठित रूप मे जीने की । वह है वर्णाश्रम धर्म। मध्ययुग मे वर्णाश्रम धर्म (आश्रम चतुष्ट्य) का लोप हो गया था। अनेक कारणो से युवावस्था मे ही सन्यासी बनने की प्रवृत्ति युवको मे आने लगी, यद्यपि उनका मन पूरी तरह सामाजिक आकर्षणो स विरत नहीं हो पाता था, जिसकी परिणति अत्यन्त कटु स्वरो मे नारी निन्दा के रूप मे हुई।

---

१ आधुनिक हिन्दी काव्य मे नारी भावना डा० शैलकुमार पृ०-१

सन्त काव्य का अनुशीलन करने से इतना तो निश्चित ही कहा जा सकता है कि लगभग सभी सन्तो ने, अपवाद स्वरूप कुछ को छोडकर नारी निन्दा की है। जहॉ तक नारी निन्दा को प्रतीकात्मक मानने की बात है, तो कुछ उक्तियो, पदो मे हम उसे प्रतीकात्मक मान सकते है सभी मे नहीं। जिस उत्कट प्रेम की अभिव्यक्ति एव समर्पण की भावना ये सन्त कवि अपने इष्ट के प्रति करना चाहते थे, उसके लिये उन्हे दाम्पत्य भाव से निकटस्थ अन्य कोई सम्बन्ध नहीं लगा। अत नारी को असत् एव माया मानते हुये भी नारी हृदय की कोमल भावनाओ का सहारा लेकर इन सतो ने उस परमपिता परमेश्वर की परिणीता बनकर उसके प्रति प्रणय निवेदन किया। जब कबीर सौभाग्यवती स्त्रियो को आमन्त्रित करते है, मगलगीत गाने के लिये –

दुलहिन गावहु मगल चार।
हमघरि आये राजा राम भरतार।।[1]

तो अनन्त प्रतीक्षा और विरह की मर्मान्तक पीडा को झेलने के पश्चात् आयी हुयी यह मगल बेला पूर्णतया लौकिक प्रेमी-प्रेमिका के क्रिया कलापो से मेल खाती है। जब कबीर कहते हैं कि–

बहुत दिनन थै प्रीतम पाये।
भाग बडे घरि बैठे आये।
मगलचार माहि मन राखौ। राम रसाइन रसना चारवौ।।[2]

---

[1] कबीर ग्रन्थावली राग गौडी पद १ पृ० - १४०

[2] कबीर ग्रन्थावली राग गौडी पद २ पृ० १४१

तो विरहिणी आत्मा द्वारा परब्रह्म के साथ आध्यात्मिक अभिसार का रूपक सार्थक सिद्ध होता है।

ये सन्त कवि ब्रह्म को ही एकमात्र पुरुष मानते है और सभी जीवात्माये उसकी पत्नियॉ है, जैसा कि दादू ने कहा है कि--

पुरषि हमारा एक है, हम नारी बहु अग।
जै जै जैसी ताहि सौ, षेलै तिसही रग।।[१]
हम सब नारी एक भरतार, सब कोई तन करै सिगार।
घरि घरि अपणे सेज सॅवारै, कत पियारे पथ निहारै।।
आरति अपणै पिव कौ ध्यावे, मिलै नाह कब अग लगावै।
अति आतुर ये खोजत डोलै, बानि परी वियोगनि बोलै।
हम सब नारी दादू दीन, देइ सुहाग काहू सग लीन।

दादू यहॉ परब्रह्म को ही पुरुष मानकर कहते है कि उसकी प्रतीक्षा मे हम सभी स्त्रियॉ अपनी-अपनी सेज सॅवार कर अपने प्रिय की अभिलाषा मे लीन है, कि कब वह प्रियतम आये और हमे अपने कण्ठ से लगाये। यहॉ पर दादू सभी जीवात्माओ को दीन नारी कहकर उपमित करते है। लेकिन यही सन्त कवि जब नारी को विष बेल, विषफल, पैनीछुरी, सूली साल, बाघिन नागिन और मार्जारी कहते है और उनकी उपमा सधन वन से देते है जिसमे प्रविष्ट होने वाले का भूलना स्वाभाविक है तब ये प्रतीकार्थ मे बात नहीं करते अपितु पूर्णतया अभिधा शक्ति का सहारा लेते हुये अपनी मनोग्रन्थि खोल देते है।

---

[१] दादू दयाल जी की बानी पृ०-३४ साखी-५७

[२] सत दादू और उनकी वाणी पद ५२ पृ०-४७

यह निर्विवाद रूप से सत्य है कि सन्त काव्य मे प्रयुक्त कुछ शब्द जैसे बाबुल, नैहर कुँवारी कन्या, बहन, सखियॉ, रमैया की दुलहिन, धनि, विवाह, सास, ननद, ससुर, ससुराल, पिव, खसम गौना, विरहिणी पतिव्रता सती, चुनरी, अगिया, पनिहारिन, रात, दुलह-दुलहिन, फाग और होली प्रतीकात्मक है। कचन और कामिनी का प्रयोग भी प्रतीकात्मक है, कनक से तात्पर्य केवल स्वर्ण ही नहीं, अपितु यह समस्त सासारिक वैभव का प्रतीक है। इसी प्रकार कामिनी शब्द का भी अर्थ मात्र "नारी" नहीं है अपितु "वासना" है, जैसा कि सहजोबाई ने अपने ग्रन्थ 'सहज प्रकाश' मे लिखा है -

ना सुख दारा सुत महल, ना सुख भूप भए ।
साध सुखी सहजो कहै, तृष्णा रोग गए ।।[1]

डॉ० गजानन शर्मा का मत इस सदर्भ मे अत्यन्त उपयुक्त प्रतीत होता है-

'यदि 'कामिनी' या उसके पर्याय प्रतीक के रूप मे एक विशिष्ट अर्थ के प्रतिपादक न बन गये होते तो, सहजो तो नारी प्रवृति के अनुसार 'दारा" के स्थान पर पुरुषा ही लिखती" यह वह स्थिति है जब कामिनी ही कामिनी के सम्पर्क का विरोध करते हुये नहीं हिचकिचाती थी।[2] यह आश्चर्य जनक तथ्य है कि भक्ति काल मे नारियो ने भी नारी की निन्दा की है। किन्तु यदि हम नारी शब्द को तत्कालीन प्रतीकार्थ मे ग्रहण करे तो इस समस्या का समाधान मिल जाता है। उदाहरणत सहजो ने कलत्र की निन्दा की है जो वास्तव में सासारिकता की निन्दा के लिये है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि आध्यात्मिक

---

[1] सहज प्रकाश वे० प्रे० प्रयाग पृ०-१५ दो० ४१

[2] भक्ति कालीन काव्य मे नारी पृ०-६७ डॉ० गजानान शर्मा

[3] कबीर ग्रन्थावली कामी नर कौअग साखी-१३

अभिसार मे निमग्न रहने वाले और ससार को निस्सार समझने वाले सन्तो ने ही नही अपितु सत कवयित्रियो ने भी नारी को आध्यात्मिक पथ मे बाधा माना है। (यहॉ नारी शब्द का अर्थ विषय वासना ही है।) कबीर ने नर और नारी दोनो को ही नरक स्वरूप कहा है-- "नर नारी सब नरक है जब लग देह सकाम" अर्थात जब तक देह मे सकाम भाव रहता है तब तक दोनो निन्दनीय हैं। निष्काम ईश्वर के स्मरण से दोनो राम के हो जाते है। दादू ने तो 'नारी वैरणि पुरुष की, पुरुषा वैरी नारि' कह कर दोनो को एक दूसरे के लिय अकल्याण कारी और बधन स्वरूप माना है। स्त्रियो मे केवल काम भावना ही नहीं है, प्रत्युत वह सद्‌गुणो से भी युक्त है, और स्वय भक्ति कालीन साहित्य इसका प्रमाण है। पुरुष भी इस भाव से रहित नहीं है। यह स्मरणीय तथ्य है कि इन सत कवियो ने विषय लोलुपता के कारण पुरुष की नारी से भी अधिक के कारण पुरुष की नारी से भी अधिक निन्दा की है। कबीर ने तो उन पुरुषो को मूर्ख कहा है जो इस वासना पकिल मार्ग पर चलते हुये हॅसते-हॅसते नरक गामी हो रहे हैं[१] ऐसे नर अधे है [२] नर रूपी नाग है।[३] निर्लज्ज हैं[४] गॅवार हैं[५] रामविमुख[६] और ऐसे कुबुद्धि हैं कि उन्हे शिवशकर भी नहीं समझा सकते हैं। अत सन्त साहित्य मे वास्तविक निन्दा काम वासना की है, जिसने सारे ससार को, यति, मुनि, सन्यासी, देवता, नर, नाग, किन्नर यक्ष, गन्धर्व, पशु-पक्षी सब को अपनी बलिष्ठ भुजाओ मे जकड रखा है, कोई भी प्राणी इससे अछूता नहीं है, और जो भी इसके चगुल मे फॅसा,

---

[१] वही सा० १७ कामी नर कौअग

[२] वही सा० २१ कामी नर कौअग

[३] वही सा० २३ कामी नर कौअग

[४] वही सा० २५ कामी नर कौअग

[५] वही सा० २२ कामी नर कौअग

[६] वही सा० १९ कामी नर कौअग

वह अनेकानेक समस्याओ मे उलझता चला गया। अत चेतनाशील तत्व मनुष्य (सन्तो) ने तत्कालीन विषम परिस्थितियो मे घिरी नारी को ही समस्त समस्याओ का मूल कारण मानते हुये उसी पर अपनी समस्त दुष्प्रवृत्तियो का आरोपण करते हुये, उसकी स्थिति और भी कष्टकर बना दी। सन्त काव्य मे समान्य नारी पग-पग पर घृणित एव तिरस्कृत मानी गई है। अपनी कामुकता, मोहकता और विषय-वासना-बधन कारिता के कारण त्याज्य समझी गई है। पुरुष को आध्यात्मिक पथ से विरत करने वाली होने के कारण निन्दा का पात्र समझी गई है। इतना होते हुये भी सन्तो ने नारी के उदात्त, एकनिष्ठ एव समर्पण भाव से युक्त प्रणय निवेदन को ही उस परमतत्व तक पहुँचने का सोपान बनाया। मध्यकालीन नारी के लिये यह गौरव की बात है कि सन्त-मार्ग मे अपनी बधन कारिता के कारण त्याज्य समझी जाती हुई भी वह अपने अनेक स्त्रियोचित गुणो से साधना के लिये मानक बन गई। सन्तो के द्वारा की गई नारी निन्दा के लिये तत्कालीन परिस्थितिया भी कम उत्तर दायी नहीं है। यह नारी निन्दा प्रतीकात्मक एव अभिधात्मक दोनो है।

चतुर्थ अध्याय

प्रमुख अहिन्दी भाषी संत कवयित्रियाँ और उनका योगदान।

ज्ञान उर्वरा भारत भूमि मे न केवल पुरुष अपितु स्त्री सतो की भी श्रेष्ठ परम्परा रही है। इन स्त्री सतो ने जीवन के वैराग्य पक्ष को अगीकार करके ज्ञान के सर्वोच्च सोपान तक अपनी उपस्थिति दर्ज की है। आळवार-नयनार सतो की अण्डाल से लेकर आधुनिक काल की सत सुवचना दासी तक इन स्त्री सन्तो की महान परम्परा रही है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध केवल मध्यकालीन सत कवयित्रियो के विषय मे है, अत इस अध्याय मे हिन्दीतर प्रदेश की मध्य कालीन सत कवयित्रियो पर विचार किया गया है ।

(१) लालदेद

सत लालदेद व लल्ला स्त्री सतो मे अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। इनका समय प्राय १४वीं शती के अत मे निश्चित किया जाता है।[1] यह वास्तव मे आश्चर्य चकित कर देने वाली बात है कि इस काल की कुछ स्त्रियो ने अपने विचारो से साहित्य के विकास एव समृद्धि मे महत्वपूर्ण योगदान दिया उनमे से एक लल्ला (लालदेद) थीं जो कश्मीर की सिद्ध सत थी।[2] उन्हे भारत के मध्य काल के रामानन्द, कबीर और १५ वीं शती के दूसरे अन्य और परवर्ती शताब्दियो के सुधारको मे अग्रदूत कहा जाता है।[3] सत लालदेद वा लल्ला के अन्य कई नामो मे लल्लेश्वरी तथा लल्ला आरिफ भी प्रसिद्ध हैं[4]। इनके माता पिता श्रीनगर, कश्मीर से लगभग ४ मील दक्षिण पूर्व स्थित पाड्रेठन नामक स्थान

---

१ सर रिचर्ड कारनेट टेम्पल द वर्ड ऑफ लल्ला द प्राफेटेस इन्ट्रोडक्शन ग्रेट विमेन ऑफ इन्डिया से उदधृत पृ० ३२६
ग्रेट हिन्दू विमन इन नार्थ इन्डिया-कालीकिकरदत्त पृ० ३२६

३ वही

४ उत्तरी भारत की सतपरम्परा आ० परशुराम चतुर्वेदी पृ० ९९

के निवासी थे, जो अशोक कालीन कश्मीर की राजधानी भी रह चुका था। इनका जन्म स० १३९२ मे हुआ था जब वहॉ पर उदयानदेव का राज्य था और दिल्ली मे मुहम्मद बिन तुगलक अपनी गद्दी पर आसीन था।[1] ये ढेढ वा मेहतर जाति की कही जाती है किन्तु आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने अपने ग्रन्थ उत्तरीभारत की सत परम्परा मे उक्त धारणा के विषय मे अपना मत व्यक्त करते हुये कहा है कि कदाचित् देद शब्द के कारण इन्हे ढेढ समझा जाता रहा है। उनके अनुसार देद शब्द यहॉपर कश्मीरी भाषा के देद्दी शब्द का सक्षिप्त रूप हो सकता है जिसका अर्थ 'आयु मे बडी और पदवी मे बडी हुआ करता है और जो हिन्दी के दीदी शब्द का समानार्थक भी कहा जा सकता है। कम आयु मे ही इनका विवाह "पापर" नामक गॉव मे कर दिया गया जहॉ इनकी विमाता सास इन्हे बहुत कष्ट देती थी। आ० परशुराम चतुर्वेदी एक तथ्य का उल्लेख अपने ग्रन्थ 'उत्तरीभारत की सत परम्परा' मे करते है कि 'वह इनके भोजन की थाली मे सिलबट्टा रखकर ऊपर भात बिखेर दिया करती थी इस कारण बाहर से यथेष्ट दीख पडने पर भी इन्हे भरपेट अन्न नहीं मिल पाता था। इनके पति का व्यवहार भी इनके प्रति कभी अनुकूल नहीं रहा और यही कारण था कि इन्होने अपने पारिवारिक जीवन का त्याग करके अवतीपुर के निवासी शैव सिद्ध 'वे' अथवा बाबाश्रीकण्ठ से दीक्षा ग्रहण की। कालीकिकर दत्त जी के अनुसार लल्ला ने एक कश्मीरी शैव सत को अपना आध्यात्मिक पथ प्रदर्शक स्वीकार किया और स्वय शैवागम की एक उत्कट भक्त बनीं। वह एक योगिनी, फकीरनी एव तपस्विनी थी जो यौगिक सिद्धान्तो की शिक्षा मे इधर-उधर घूमती थीं।

---

[1] उत्तरी भारत की सत परम्परा पृ० ९४

[2] हिन्दी साहित्य का उदभव काल डा० वासुदेव सिह पृ० १५८

[3] उत्तरी भारत की सत परम्परा पृ० ९९

परमतत्व के प्रति अगाध तल्लीनता को ही योग का मुख्य सिद्धान्त मानती थीं[१]। उन्होने सर्वव्यापी परमतत्व की इच्छा पर मनुष्यो का पूरी तरह से आश्रित होना बतलाया। सैय्यद अली हमदानी और दूसरे अन्य मुस्लिम सन्तो के सम्पर्क के कारण वे कश्मीर के समकालीन सूफी दर्शन से भी प्रभावित प्रतीत होती है, जो वास्तव मे हिन्दु उपनिषदिक आदर्शवाद की तरह प्रतीत होता है[२] उनका दृष्टिकोण कट्टरपथी का नही था अपितु समन्वयात्मक था। वे धार्मिक मतभेदो से दूर रहा करती थीं। इनके बारे मे कहा जाता है कि सिद्ध हो जाने पर ये परमहसो के समान रहने लगी थी, तन्मय होकर नृत्य करने लगती थीं एव कभी-कभी वस्त्रो का भी परित्याग कर देती थीं। निन्दा और स्तुति को भगवान कृष्ण द्वारा गीता के बारहवे अध्याय मे कहे गये वाक्य 'तुल्यनिन्दा स्तुतिर्मौनी के अनुसार समकक्ष मानती थीं। इस सदर्भ मे आ० परशुराम चतुर्वेदी जी ने एक घटना का उल्लेख किया है।[३] कहते है कि एक बार किसी बजाज ने इन्हे पहनने के लिये दो बराबर कपडे के टुकडे दिये जिन्हे ये धारण करने लगी, परन्तु अपने चारो ओर लगी रहने वाली भीड की प्रत्येक गाली के अनुसार उनमे से एक मे गॉठे देना प्रारम्भ कर दिया तथा उसी प्रकार उसके अभिनदनो के अनुसार भी दूसरे मे गॉठे लगा दी। अत मे जब दोनो को तौला कर देखा तो उन्हे तौल मे बराबर पाकर इन्होने अपने प्रति निन्दा तथा स्तुति की ओर और भी उपेक्षा प्रकट की।[४] इनके शिक्षाप्रद उपदेशो से अनेक लोग इनके अनुयायी बन गये इन्होने ''कश्मीर के सरक्षक सत'' (Patron Saint of Kasmir) शेख

---

[४] उत्तरी भारत की सत परम्परा पृ० ९९

[१] ग्रेट हिन्दू विमेन इन नार्थ इन्डिया कालीकिकर दत्त पृ० ३२६

[२] ग्रेट हिन्दू विमेन इन नार्थ इन्डिया पृ० ३२६

[३] वही

[४] उत्तरी भारत की सत परम्परा पृ० ९९

नूरूद्दीन अथवा नदा ऋषि को भी बहुत प्रभावित किया। इनकी मृत्यु लगभग ८० वर्ष की आयु मे बीज बहाडा नामक गॉव मे हुई।

रचनाये

लालदेद की रचनाये कश्मीरी भाषा मे है और उन्हे एकत्र करके सग्रहो के रुप मे प्रकाशित किया गया है। अत्यन्त कठिन खोज के पश्चात् सर जॉर्ज ग्रियर्सन ने कुछ विद्वान पडितो की सहायता से उनकी कविताओ का एक सग्रह तैयार किया जिसमे उनकी कविताओ का मूल तत्व समाहित है। सस्कृत अनुवादो के अन्तर्गत कुछ अन्य पाडुलिपियो की समीक्षा करते हुये डा० एल० डी० बार्नेट के सहयोग से उन्होने ''लल्ला वाक्यानि नामक एक सग्रह तैयार किया जो रायल एशियाटिक सोसाइटी लदन द्वारा सन् १९२० मे प्रकाशित हुआ। प्रकाशित कविताये लालदेद के अपने समकालीन (कवियो) पर उनकी महत्वपूर्ण भूमिका और आश्चर्यजनक प्रभाव को व्यक्त करती है। लल्लेश्वरी वाक्यानि'' नाम से ६० पदो का एक अन्य सग्रह जो श्रीनगर से प्रकाशित हुआ है, मे उक्त सग्रह की रचनाये ही ली गई है। एक अन्य सग्रह द वर्ड ऑफ लल्ला, द प्रोफेटेस' (१९२४) जो कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस से सर रिचर्ड टेम्पुल के अग्रेजी अनुवाद के साथ प्रकाशित है। मूल कश्मीरी मे इनका सग्रह 'लालदेद-ए-हिन्द वाक' के नाम से मिलता है। इनके ६० पदो का एक सग्रह 'लल्लेश्वरी वाक्यानि' नाम से मिलता है जिसका पद्यानुवाद राजानक भास्कराचार्य ने सस्कृत मे किया है।

सत लालदेद ने अपनी रचनाओ मे जिस शब्दावली का प्रयोग किया है उससे स्पष्ट होता है कि उन्हे यौगिक क्रियाओ का बहुत अच्छा ज्ञान था और ये साधना की उच्चावस्था अर्थात सिद्धावस्था को प्राप्त योगिनी थीं। साधक के द्वारा

की जाने वाली साधना का परिणाम क्या होता है उस सबध मे लल्ला का कथन है कि 'किसी भी उत्तम साधक के द्वारा निरन्तर अभ्यास से दृश्य जगत् का लय हो जाता है तथा वह शून्य स्वरुप को प्राप्त कर लेता है, ऐसी स्थिति मे शान्तस्वरूप शून्य मे भी निर्विकार परमेश्वर 'साक्षि' रुप मे अवशिष्ट रहता है।[१]'' शिव और शक्ति ये ही मूल तत्व है, इस सबध मे लल्ला का कथन है कि शिव और शक्ति ही वाणी और मन ईश्वर की दी मुद्राये, कुल और अकुल हैं जिनमे यह सारा दृश्य-प्रपञ्च लीन है। यही सर्वोत्कृष्ट उपदेश है।[२] मै ''लल्ला'' नामवाली साध्वी सर्वव्यापक ''शिव' को ढूँढने हेतु दूर तक निकल गई। पर्याप्त भटककर मैने परमेश्वर को अपने देह रूपी गेह मे स्थित पाया,[३] इसके पश्चात् प्राणादि वायुयो के निरोध के द्वारा ज्ञान दीपक को जलाकर मैने स्पष्ट रूप से उस (देह-गेह) मे चित् स्वरूप निर्विकार परमेश्वर का साक्षात् कर लिया।[४] उनका आराध्य वह परमतत्व है जिसे शिव, केशव, जिन वा ब्रम्हा कुछ भी कहा जा

---

[१] अव्यासि सविकास लय वेव्थू
गगनससगुण म्यूलु समिच्रटा।
शून्य गंलू त अनामय म्वतू
इहुय उपदेश दुय भटा ।।१।। लल्लेश्वरी वाक्यानि पृ०१
[२] वाक मानस कव्ल अकव्ल ना अति
छवि मुद्रि अतिन प्रेवेश।
रोजन शिव शक्त ना अति
म्वतुयय् कुँह त सुय उपदेश।।२।। वही पृ० २

[३] लल्ल बवह् द्रायस लोलरे
छाडान लुस्तुम दिन क्योहराथ।
वुछुम पण्डित परनिन्गारे,
सुयम्य रटुमस् नक्षतुर् साथ ।।३।। वही पृ० २

[४] दमादम् करुमस् दमनहाले
प्रजल्योम दीयत न नेयम जाथ।
अन्दर्युमु प्रकाश न्यबर छटुम
गटि रटुम्त करुमस् थफ्।।४।। वही पृ० २

सकता है। उनके अनुसार शिव अथवा केशव अथवा जिन् अथवा ब्रह्मा इनमे से कोई भी (एक) ससार रोगाक्रान्त मुझ अबला की चिकित्सा कर दे। हे शाक्तिक (शक्ति निष्ठ) नारी। तू सुरादि (सुर + आदि= देवताओ या सुरा + आदि) के साथ ईश्वर की अर्चना कर। यदि तूने उस अक्षर (अक्षय) तत्व को जान लिया तो भी क्या क्षति है अर्थात ऐसा करने मे लाभ ही है।[1] सारा तन्त्र समूह मन्त्र मे ही विलीन हो जाता है, नादमूलक मन्त्र चित्त मे विलीन हो जाता है चित्त के विलीन होने पर (परमात्म गत हो जाने पर) सारा ही दृश्य (जगत् प्रपञ्च) लीन (विनष्ट) हो जाता है तथा चित् स्वरूप दृष्टा (साक्षी आत्मा) ही शेष रहता है।[3] हे देव। हे ईश्वर। जो षट्क (काम क्रोधादि विकार) आपके है वही तो मेरे पास भी है। हॉ मुझमे और आप मे भेद केवल यही है कि आप उस षट्क के नियोजक (प्रेरक) है और मै उसकी नियोज्या (प्रयोग-पात्र-स्वरूपा) हूँ।[4]

---

[1] शिव वा केशव जिन् वा
कमलजनाथ नाम दारिन युस।
म्य अबलि कासितन भवरुज
सुह वा सुह् वा सुह् वा सुह ।।८। वही पृ० ४

[2] ब्वथ रैव्या अर्चुन सखर
अथि अल् पल वखुर् ह्यथ्।
युदुवनय जानख् परमपद
अक्षर हिशीश्वर क्षिशीखर ह्यथ।।१०।। वही पृ० ५

[3] तन्त्र गलि-ताय मन्त्र म्वचे
मन्त्र गलुताय म्वतुय् चित्त्।
चित्त गलु-ताय कॅहु तिना कुने
शून्यस शून्स्याह् मीलिथ गौव ।।११।। वही पृ० ५

[4] इमम षह च्य तिमय षहम्य
श्यामगला च्यविन तोठुस छुह इहुय भिन्नाभद च्य त म्य
चह् षन् स्वामी ब्वह षेयि मुषिस ।।१३।।

ब्रह्मा, विष्णु और महेश जो सृष्टिकर्त्ता, पालनपोषण कर्त्ता एव सहार कर्त्ता कहः जाते है उनके प्रति लालदेद का मन्तव्य कितना विलक्षण है यह देखने योग्य है। वे प्रश्न करती है कि यदि शिव अश्वस्वरूप है, विष्णु उनका पृष्ठास्तरण (जीन) है तथा स्वम्भू ब्रह्मा चरण-पीठ (पायदान) है, तो उस घोडे का योग्य अश्वारोही कौन है? यह मुझे बतलाइये?[१] उत्तर देती हुई वे स्वय कहती है कि 'उस विलक्षण अश्व का आरोही अनाहत (अप्रभावित) आकाशस्वरूप, शून्य (हृदयाकाश) मे स्थित तथा निर्विकार है। वह नाम रूप एव वर्ण से रहित अजन्मा एव नाद-बिन्दु-स्वरूप है। माया, ज्ञान एव ससार ये तीनो जाड्ययुक्त हैं। चित् रूपी सूर्य के समुदित होने पर ये तीनो किसप्रकार जडता मुक्त हो जाते हैं इस सदर्भ मे योगिनी लालदेद का कथन है कि 'माया में जाड्य (जडता) की स्थिति रहती है उसमे जड (पूञ्जीभूत रूप) है ज्ञान-जल उसका घनस्वरूप (ठोसपन) तथा बर्फीलापन (शैल) है ससारतत्व। इस हृदय मे चित्त रूपी सूर्य के समुदित हो जाने पर सद्य तीनो (माया ज्ञान एव ससार) जाड्य से मुक्त हो जाते है और भासित होने लगता है सर्वप्रधान 'शिव" नामक नीर अर्थात नीर-तुल्य निर्मल शिव-तत्व।' सत लालदेद शैवागम की उपासिका थीं शैवमत मे

---

[१] शिव गुरू तोय केशव पलनस
ब्रह्मा पायहर्यम व्यलस्यस।
योगी योगकलि पर्जान्यस
कुस देव अश्ववार् प्यठ् चेडयस ॥ १४ ॥

[२] अनाहत खस्वरूप शून्यालय
यस नाव ना वर्ण ना रूप ना गोत्र ।
अहनिनाद विन्द त यवोन,
सूय् अश्ववार प्यध् चेडचस् ॥ १५ ॥ वही

[३] तूरि सलिल् खंदु ताय् तूरि,
हयम्य त्रिगैय् भिन्ना भिन्न विमर्शा ।
चैतन्य ख भाति सब् समे,

शिव ही सर्वप्रधान एव मूलतत्व माने जाते है जो कण-कण मे व्याप्त है, निर्गुण, निराकार एव निर्विकल्प है अत मूर्तिपूजा एव सगुण स्वरूप के उपासको के अर्चनास्थल एव अर्चनाविग्रह को वे प्रस्तरखण्ड से अधिक नहीं मानती हैं। वे कहती है कि हे ईश्वर साधक। आपने जो मन्दिर तथा देवता-इन दो पदार्थो को पूजा के लिये पृथक्-पृथक् बनाया है-वस्तुत वे दोनो पदार्थ प्रस्तर खण्ड से भिन्न नहीं है । देव (परमेश्वर) तो अमेय (अपरिमेय, सीमारहित) तथा चित् स्वरूप है, अत उसकी व्याप्ति (उसके समाने के लिये तद्नुकूल ही प्राण एव चित्त की एकता का विधान करना चाहिये ।[1] निन्दा और स्तुति से विषाद या प्रसन्नता को न प्राप्त कर समरसता की स्थिति पर पहुॅच चुकी लालदेद ज्ञान के उस सोपान को प्राप्त कर चुकी है जहॉ इनका कोई अर्थ नहीं रहता उनका कहना है कि 'चाहे लोग मेरी निन्दा करे अथवा प्रशसा करे या विविध सुन्दर पुष्पो से अर्चना करे- पर उक्त क्रियाओ से न तो मै आनन्द प्राप्त करती हूॅ न ही विषाद प्राप्त करती हूॅ क्योकि मै विशुद्ध ज्ञान (आत्म ज्ञान) रूपी अमृतरस के पान के कारण स्वस्थ या आत्म-स्थ हो चुकी हूॅ।[2] सासारिक जन मेरे लिये सहस्रों अवाच्य (अपशब्द, निन्दावाक्य) कहते रहे पर स्तुति-निन्दा-तटस्थ मेरा मन (उन अवाच्य शब्दो के कारण) मलिनता को नहीं प्राप्त करता है। जैसे स्वच्छ दर्पण

शिवमय् चराचर जग् पश्या ॥ १६ ॥ वही पृ०-६

[1] देह बटा देवर बटा
प्यठ ब्वन छुय एकवाट् ।
पूज कस करख हूटबटा
कर मनस् त पवनस् सगाट ॥ १७ ॥ च६

[2] गाल गाडिन्यउ बोल् पडिन्यम्
दपिन्यम तिह यस् यिथुरोचे।
सहज कुसुमव पूज करिन्यम,
बव्ह् अमलॉम कस क्याह म्वचे ॥ २९॥ वही पृ०-९

धूलि-राशियो से मलिन नहीं होता है।[1] साधना की सिद्धावस्था तक पहुँचने के लिये साधक को अपने वातावरण से पूर्णतया तटस्थ एव निरपेक्ष रहना चाहिये। इसी तथ्य का ज्ञान कराती हुई लालदेद कहती हैं कि हे साधक। अपने मे स्थित (आत्मस्थ) रहते हुये तुम सारी उचितानुचित बाते जान कर भी अज्ञवत् स्थित रहो। सब कुछ सुनकर भी तुम्हे कर्णहीन की तरह रहना चाहिये तथा तुम सारी चीजे देखकर भी शीघ्र ही अन्धापन प्राप्त कर लो। श्रेष्ठ विद्वानो ने ईश्वर प्राप्ति हेतु इसी तत्वाभास' का विवेचन किया है। चित्त वेगवान अश्व है जिस पर विवेक का अकुश आवश्यक है, चित्त को वश मे करने पर ही साधक साधना के पथ पर चल सकता है। सर्वत्र एव सभी ओर चलने की क्षमता रखने वाला चित्त-रूपी तुरग श्रणभर मे लाखो योजनो तक जाने वाला है। श्रेष्ठ विद्वान (आत्मवेत्ता) ही विवेक-रूपी लगाम की प्रेरणा से दोनो वायु-पक्षो के निरोध के कारण उक्त तुरग को पकड सकता है या सम्हाल सकता है[3] (दोनो वायु पक्ष-पूरक एव रेचक वायु)। साधना के मार्ग मे चलने वाले साधको के लिये मात्र जीवन निर्वाह के लिए ही, भोजन एव वस्त्र का प्रयोग उचित है इस सबध मे साधक को राग एव लालसा से रहित रहना चाहिये। जिसका मन खान-पान या

---

[1] आंसा बोल पंरिनम् सासा
म्यमनि वासा खेद ना ह्यये।
यदुवय शकर वखच आसा
मकुरिस स्वासामल क्याहप्यये ।।१८।। बही पृ०-८

[2] मूढव दीशिध त पशिथ् लाग,
जरू त कलु श्र्वतवोन जडरूपि आस ।
युस यिय दापिय तस् तिथु बोल
सुय छुय तत्वविदस् अभ्यास ।।२०।। लाल्लेश्वरी वाक्यानि पृ०-९

[3] चित्त तुरग् गगेनि भ्रमवोन
निमेष अकि दण्डि योजनालद ।
चैतन्यवगि यंमि रटिथ् जोन

अलकरण से भी भ्रान्तिहीन है-वही मुक्त है क्योकि जो ऋणदाता (उत्तनर्ण) से अथ नहीं लेता है - वह अनृण ही है। शीत से बचने के लिये ही वस्तुधारण करना चाहिये तथा क्षुधा शान्ति के लिये ही भोजन करना चाहिये तथा मन को विवेकशीलता की ओर ले जाना चाहिये अत भोगो का अनुचिन्तन नहीं करना चाहिये। आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिये शम या दम मूल कारण नहीं है अपितु विवेक ही वह कारण है जिससे आत्मज्ञान की प्राप्ति होती है इसी सत्य का साक्षात्कार कराती हुई वे कहती हे कि शम (मन शान्ति) आत्म स्वरूप के ज्ञान के कारण नहीं है तथा दम (इन्द्रिय-निग्रह) भी आत्मज्ञान के कारण नहीं है, किन्तु विवेक ही आत्मज्ञान मे परम कारण हे जैसे लवण एकमात्र जलस्वरूप हो जाता है उसी तरह आत्मा एव परमात्मा के एकत्व ज्ञान हो जाने पर भी यह पृथकतया ज्ञेय नहीं है। समस्त जागतिक प्रपञ्य से जब मन दूर हो जाता है और हृदय रूपी दर्पण निर्मल होकर उस परमब्रहम का साक्षात् करने के योग्य हो जाता है तब न तो अह की सत्ता रह जाती है न त्वम की ओर न इस जागतिक प्रपञ्च की। यहॉ पर लालदेद जगद्गुरू शकराचार्य के उस मन्तव्य के

प्राण अपान फुटरिथ पखच्च ।। २६।। बही पृ०-१२

ख्यथ गॅडिथ ना शमि मानस
भ्रान्त यिमव् त्रावू तिम गैय् खसिथ ।
शास्त्र बूंजु जि यम भग कुरू
सुह नो पचु तांय धन्या लूसिति ।।२६।। लल्लश्वरी वाक्यानि पृ०-१२

यव तूर चलि तिम अम्बर हयति
ब्वद्द यव चलि तिय आहार अन।
चित्त नृप स्वविचारस प्यत
चिता देहस वान क्याह वन ।। २८।। बही पृ१२

सहजस शम त दम नो गद्दे,
इछि प्रावख् मुक्तिद्वार
सलिलस् लवण जन् मीलिथ त गछि
तोति द्वुय दुर्लभ सहज-विचार ।।२९।। बही पृ०-१३

सन्निकट है जब वे कहते है कि "नाह न त्व नाय लोक तदपि किमर्थं क्रियते शोक।"[1] इसी बात को लालदेद इस प्रकार कहती है कि हृदय रूपी दर्पण के निर्मल हो जाने पर मेरे मन मे अपने जनो की प्रत्यभिज्ञा (वास्तविक पहचान) उदित हुई। (क्रमश निर्मल से निर्मलतर होते हुये हृदय मे) मैने आत्मस्वरूप उस "देव" (परमात्मा) का दर्शन किया तो न अह की सत्ता रह गई न त्व की और न ही इस मिथ्यात्मक जगत् प्रपञ्च की। मोक्षप्राप्ति के लिये तीर्थों मे भटकना आवश्यक नहीं है अपितु मोक्ष तो चित्त की निर्मलता से ही प्राप्त हो सकता है। उनके अनुसार एकमात्र मोक्षप्राप्ति के आकाक्षी सन्यासी जन सदैव प्रयासपूर्वक श्रेष्ठ तीर्थों की ओर प्रयाण करते रहते हैं किन्तु वह मोक्ष तो एकमात्र चित्त (नैर्मल्य) से ही साध्य है– अत बाह्य तीर्थ स्थलो मे वह मोक्ष उन सन्यासियों को नहीं मिलता है। वस्तुतस्तु अत्यन्त नीला दूर्वास्थल (सहस्रार कमलपीठ) तो पास ही मे है। (उसे बाहर ढूढना तो भ्रम मोह अज्ञान है।) लालदेद के ही अनुसार कबीर ने भी एक स्थान पर तीर्थभ्रमण को अनावश्यक एव आडम्बर पूर्व निर्णय माना है।[4] यहाँ पर डा० ग्रियर्सन का मत बहुत ही समीचीन जान पडता है, उनके अनुसार लालदेद की अनेक बातो से कबीर भी प्रभावित हुये थे। यद्यपि

---

[1] चर्पट पञ्चजरिका स्तोत्र श्लोक स० १६

[2] मकुरस जनमल चंलुम मनस,
अदम्य लबूम जनस जान।
सुह व्यलि डयूठुम निश पान स
सोरूय सुय तोय ब्वह् नव् केहुँ।। लल्लेश्वरी वाक्यानि।।३१।। पृ०-१४

[3] प्रथय तीर्थन गद्दान सन्यासि
ग्वारनी सुदर्शन मिलु।
चित्ता परिथ मव निष्पत् आस।
देशख् द्रमन् नीलियु।।३६।। लल्लेश्वरी वाक्यानि पृ०-१६

[4] मोको कहाँ ढूढे रे बन्दे मै तो तेरे पास मे।
ना मै मन्दिर ना मै मस्जिद ना काबा कैलाश मे।

इस बात का कोई प्रमाण अभी तक नहीं मिला है और न ही इन दोनो सतो के बीच किसी प्रकार के सीधे सबध का ही पता चला है। लालदेद स्वय को बेचारी एव असहाय समझती हुई कहती है कि बराकी (बेचारी, सर्वथा असहाय) मैं लल्लादेवी इस ससार को पाकर (प्रभुकृपा से) सहज निर्मल आत्मज्ञान पा गई। न तो किसी के कारण मै मर रही हूँ अथवा न ही कोई भी मेरे कारण मर रहा है। मेरे लिये तो मृत देही एव अमृत (जीवित) देही दोनो समान स्वरूप वाले है।[1]

साधना की सिद्धावस्था तक पहुँचने के लिये कामादि छ विकारो का नाश अत्यन्त आवश्यक है। उनके अनुसार मैने इन काम आदि छ वन समूहो को काटकर ज्ञानमय अमृत रस प्राप्त कर लिया है। प्राणादि वायुयो के निरोध के कारण (मैने) अनुराग पूर्वक प्रकृति एव मन को जलाकर (शक्तिहीन बनाकर) शिव-तेज प्राप्त कर लिया है।[2] जिस योग्य साधक ने काम, लोभ तथा अहकार इन (ब्रह्मज्ञान) मार्ग के चोरो को यत्नपूर्वक पहले ही (ज्ञान-मात्र के पूर्व ही) मार डाला उसी एक साधक ने समस्त भाव समूहो को भस्मवत् परित्यक्त करके ईश्वरीय धाम (लोक या तेज) प्राप्त कर लिया अर्थात् निर्विकार व्यक्ति ही ब्रह्म साक्षात्कार कर सकता है।[3] हे महेश। देह प्राण, मन आदि छ कोशो पर

---

[1] ससारस आयस् तपसे
बोधप्रकाश् लबुम् सहज्।
मर्यम न कुँह त मर न कौंसि,
मर नेछ त लस नेछ।।३४।। वही पृ०-१५

[2] षह् वन चटिथ शशिकल वुजूम
प्रकृथ हुजूम पवन सूतिय।
लोलंकि नार सूत्य वालिञ्ज् बुजूम
शकर लंबुम तमियु सती।।२५।। लल्लेश्वरी वाक्यानि पृ०-११

[3] यामि लोभ् त मान्मथ् मोरू

नियन्त्रण करने से भी मै तुम्हे न पाकर (न जानकर) ही चिरकाल से खिन्न रही हूॅ। आज समस्त उपाधियो से रहित तथा चित्स्वरूप आप को जानकर मै विश्रान्त (शान्ति या परमानन्द) को प्राप्त कर पाई हूॅ।'

ईश्वर सर्वशक्तिमान है एव सर्वव्यापी है और उसकी प्राप्ति के लिये सद्गुरु सहायक होता है। इसी तत्व का प्रतिपादन करती हुई लल्ला कहती है कि 'जैसे भगवान् सूर्य अपनी किरणो से प्रत्येक स्थल पर अभिन्न रूप से प्रकाश फैलाते है और जैसे बादल का जल प्रत्येक गृह मे अभिन्न रूप से (एक ही तरह का तथा निष्पक्षतया) गिरता है ठीक उसी तरह जो ईश्वर समस्त ससार के घरो मे विराजमान रहता है- कष्ट से प्राप्य उस मगलमय प्रभु के बारे मे सद्गुरु से सुनिये। हे ईश्वर। आकाश, भूमि, वायु, जल, अग्नि, रात्रि तथा दिन सब कुछ तुम ही हो और उक्त तत्वो से ही उत्पाद्य होने के कारण पुष्प एव अर्ध्य आदि भी तुम ही हो। अत मै तुम्हारी पूजा के लिये कुछ भी वस्तु नहीं पा रही हूॅ।

तिमय मारिथ त लोगुन दास।
यमिय सहज ईश्वर ग्वोरू
तमिय सोरूय व्यन्दुन् स्वास्।।४३।। वही पृ०-१९

पानस लागिथ रूदुख् म्य चूह
म्य च्यह छाडान लूस्तुमु द्वह।
ज्ञानस मन्ज य्यलि डयूठुख म्य चह
म्य च्यत पानस द्वितुम छवह ।।४४।। वही पृ०-२०

र व मत थलि थलि तापितन्
तापितन उत्तम देशा।
वरूण मत लोट गर अचितन
शिव छुय क्रटु चेन ताय उपदेश ।।५३।। लाल्लश्वरी वाक्याने पृ८-२४

गगन चय भूतल चय
चय द्यन पवन त राथ।
अर्ध चन्दुन पोष पाञि चय

जिस परमेश्वर की शक्ति (बाल्य काल मे) मॉ के रूप मे दूध देती हे (पिलाती है) ओर यौवन काल मे पत्नी के रूप मे प्रेम क्रीडाये करने वाली हो जाती है तथा अन्त मे मृत्यु के रूप मे पास आती हे– कष्ट से प्राप्त होने वाले उस मगलमय प्रभु के बारे मे सद्गुरु से सुनिये। ऐसे उस परमतत्व परमब्रह्म को प्राप्त करने के लिये तीर्थो मे भटकना व्यर्थ है वह तो अन्त करण मे ही विद्यमान है। आवश्यकता तो बस उसे देखने की है उनके अनुसार उस प्रभु को देखने के लिये मैने श्रेष्ठ तीर्थो की ओर प्रयाण किया और थक गई तदुपरान्त मे प्रभु के गुणो की कीर्तन गोष्ठियो मे बैठ गई। तब भी मै मानसिक रूप से खिन्न ही रही हूँ। अन्तत प्रभु चिन्तन के लिये मै अपने अन्त करण मे प्रविष्ट हो चुकी हूँ। उसके बाद इस अन्त करण मे मेने विविध आवरणो (अवरोधो) को देखकर जान लिया कि बस यहीं वह परमेश्वर होगा। जब उन आवरणो का भञ्जन करके अन्त करण मे प्रविष्ट हुई, तब इस लोक मे मै "लल्ला" के नाम से विख्यात हो गई। उसके दर्शन के लिये किसी प्रपञ्च, उपकरण की आवश्यकता नहीं होती।

चय् छुख सोरूय त लागिजिय क्याहू।।४२।। वही पृ०-१९

१ सय मातारूपी पय दिये
सय भार्या रूपि करि विलास।
सय माया-रूपि जीव हरे
शिव छुय क्रूंटु ताय चेन उपदेश।।५४।। वही पृ०-२५

२ लल्ल् ब्वह लूछस् छाडान त ग्वारान।
हल म्य करूमस रसनि रातिय।
वुछुन ह्यतुम तारि डीठिमस बरन
म्य ति कल गनेय जि जोगुमस ततिय।।४८।। लल्लश्वरी वाक्यानि पृ०-२२

३ मल ब्वन्दि जोलुम्
जिगर मोरूम।
त्यलि लल्ल नाव द्राम ,
य्यलि दलि त्राविमस ततिय।।४९।। वही पृ० २२

अत हे साधक! अपने शरीर के अन्दर ही आनन्द रस से सस्नात् आनन्दातिरेक से हॅसते हुये विविध कार्यों को करते हुए तथा इस शरीर के समक्ष ही विद्यमान आत्मदेव का दर्शन कीजिये। अन्य स्थलो मे उसे ढूढने से क्या प्रयोजन।[1] श्रेष्ठ योगियो ने उपदिष्ट किया है कि घर मे निवास करना मोक्ष प्राप्ति का कारण नहीं हो सकता अथवा वन मे भी निवास करना मोक्ष कारण नहीं है अत अहर्निश अपनी आत्मा के चिन्तन मे तल्लीन होकर तुम जिस रूप मे हो उसी मे स्थित रहो यही सहज स्थिति मोक्ष प्राप्ति का परम उपाय है।[2] ईश्वर की प्राप्ति सहज एव सर्वसुलभ है इस सबध मे सत लल्ला कहती है कि मै जो भी सहज कार्य करती हूँ– वही ईश्वर पूजा है, जो भी बोलती हूँ वही मन्त्र है तथा जो भी वस्तु योगत (सयोगत) हमारे पास आ जाती है– वही वस्तु मेरे लिये इस ससार मे तन्त्र है।[3] जिस (ब्रह्मानन्द) सरोवर मे सरसो का एक दाना नहीं समा पाता, यह आश्चर्य है कि उसी के जल से जितने भी प्रकार के देहि समूह हैं वे सभी ठीक से बढते (विकसित) है।[4] स्त्री पुरूष के शाश्वत सबध के बारे उनका कथन है कि

---

[1] असे प्वन्दे ज्वसे जामे
न्यथय तीर्थन स्नान करे।
वहरि-वहरस ननुय् आसे
निश छुय त पर्जान्तन् ।।४६।। वही पृ०-२१

[2] कन्द्यव गृह त्यजि कन्द्यव् वनवास्
यिथुय् छुख त तिथुय् आस्।
मनस् धैर्य रठ सॉपंजख सुवास्।
क्या छुय् मलुन सूर ताय सास्।।५५।। लल्लेश्वरी वाक्यानि पृ २५

[3] यह यह कर सुय अर्चुन
यह रसजि उच्चर्यय तिय मन्थर।
इय यथ लग्यम देहस परिचय
सुय परमशिवुन् तन्थ्र्।।५८।। वही पृ०-२६

[4] यथ सरि सर्षप फेलु ना व्यचे
तथ सरि सकलो पांजि च्यन।

पुरुष स्त्री (माता) से उत्पन्न होता है और युवावस्था मे वही पुरुष स्त्री मे राग भावना खोजता है उनके अनुसार जिस परमेश्वर के द्वारा प्रेरित पुरुष क्लेश विकल मातृ जठर को पीडित करके मल ससक्त हो कर उत्पन्न होता है– तथा सुखप्राप्ति की बुद्धि से वही पुरूष नारी का सदैव अनुगमन करता है, हे साधक। कष्ट से (तप या साधना) प्राप्य उस मगलमय प्रभु के बारे में सद्गुरु से सुनो।[1] तान्त्रिको के फैलाये गये ऐन्द्रजालिक सम्मोहनो से साधको को आगाह करती हुई वे कहती है कि किसी ऐन्द्रजालिक या तान्त्रिक व्यक्ति के द्वारा लोक सम्मोहनार्थ तथा धनार्जनार्थ प्रदर्शित किया गया जल स्तम्भन कार्य, अग्नि शीतली करण कार्य तथा उसी भॉति पैरो से ही आकाश मे चलना तथैव लकडी की बनी धेनु से दूध दुहना सर्वथा असम्भव, असाध्य है। वस्तुत तो ये सभी कार्यकलाप धूर्तता (कपट या माया) से समुत्थित हैं।[2] उस ईश्वर की आराधना तो दृढ भावना के पुष्पो एव मौन नामक मन्त्र से ही हो जाती है।[3] लालदेद की रचना मे यौगिक शब्दावली का प्रयोग प्रचुरता मे हुआ है। वे अपने गुरु से कहती हैं कि हे

मृग सृगाल् गांण्डि जलहस्ती,

ज्यन् ना ज्यन त ततुय प्यन॥४७॥ वही पृ०-२९

[1] जनम जायेय रति ताय कतिय्

कंरिथ उदरस् बहु क्लेशा।

फीरिथ् द्वार् भजनि वांति ततुमु,

शिव् छुय् क्रुद्ध ताय चेन उपदेश् ॥५१॥ वही पृ०-२३

[2] जल् थमुन् हुतवह् त्रनावुन्,
उर्ध्व गमन परिवर्जिथ् चर्यथ् ।
काठधेनि द्वद् श्रमावुन्,
अन्तिह् सकंलु कपट-चर्यथ् ॥३८॥ लल्लेश्वरी वाक्यानि पृ०-९७

[3] मन पशु ताय् यछ् पुशाञी,

भावकि कुसम लागिज्यस् पूजे ।

शशि-रस गंडु दिज्यस जलधानी

गुरुवर। कृपा करके मुझे इस एक ही ब्रह्म प्राप्ति-कारी उपदेश को दीजिये। हाह् और हूह् ये दोनो भाव-विशेष सूचक शब्द एक ही मुख से एक ही साथ उत्पन्न होते है परन्तु उन दोनो मे के प्रथम हाह् उष्ण है और हूह् अतिशीतल। ऐसा क्यो।[1] 'हाह् शब्द नाभि से उत्पन्न तथा उदराग्नि से तप्त रहता है, हूह शब्द मे द्वादश तत्वो के अन्त मे शीतल अन्त करण से उत्पन्न होता है। हाह् प्राणवायु स्वरूप है और हूह् अपान-वायु-स्वरूप है। मुनियो ने इसीप्रकार सिद्धान्तोपदेश किया है ।[2] साधना के क्रम मे साधक एक ऐसी स्थिति में पहुँच जाता है जब उसमें के और साध्य में कोई अन्तर नहीं रह जाता है उस स्थिति का वर्णन लालदेद ने एक श्लोक मे किया है। उनके अनुसार जो द्वादश-तत्वो (दस इन्द्रियो + चित्त + अहकार) के पश्चात् (उनकी वेग शान्ति के बाद) स्वय ही विनिर्मित सदैव प्रकाशित देव-गृह (ब्रहम स्थान) मे स्वय विराजमान है तथा जो प्राण-सूर्य को सम्यक् प्रेरित करता रहता है - वह कल्याणकारी शिव (ब्रह्मतत्व) ही जिसके लिये आत्मस्वरूप बन चुका है (अनुभूत हो गया है) वह ब्रह्मवेत्ता विद्वान किस अन्य देवता की अर्चना करे?[3]

छवपि मत्र शकर वुजे ।।४०।। वही पृ०-१८

[1] ये ग्वरा परमो ग्वरा
सद्भाव भाव् त ॰ , चृह्।

जह् जोनि उपनेय् कन्दापुरा
हुह् कव त्रूनु त हाह् कव ततू ।।५६।। वही पृ०-२६

[2] नाभिस्थानस् चित् जलवञी,
ब्रह्मस्थानयस् शिशिरूनु मुख्
ब्रह्माण्डम् छयय् नद् वहवञी,

तवय् त्रूनु हूह् हाह् गौव् तंतु ।।५७।। लल्लेश्वरी वाक्यानि पृ०-२६

[3] द्वादशान्त-मण्डल् यस देवस् थजूय,

नासिक पवन् अनाहत रव ।
सयस् कल्पन् अन्तिह् चंजूय,

यह ससार नश्वर है यहॉ की हर वस्तु नश्वर है। जो जन्मा है उसका नाश अवश्यम्भावी है और तत्पश्चात् सबका गतव्य भी एक ही है, सबको अन्त मे उसी तत्व मे मिल जाना है जिससे पृथक होकर वे ससार में आये हैं। जीवन की इसी नश्वरता, क्षणभगुरता एव जीवन-मृत्यु के शाश्वत सबध पर लालदेद बहुत ही विचार पूर्ण वाणी से अपनी बात कहती हैं। उनका कथन है कि बृद्धावस्था आ गई, अब यह शरीर और अधिक दुर्बल हो गया अत यहॉ से चलने के लिये निर्णय करना चाहिये। हम लोग जहॉ से आये हैं वही पुन हमें जाना है। वस्तुत इस ससार मे कोई भी (चर या अचर वस्तु) स्थिर (अनश्वर) नहीं है।[1] ठीक यही बात कबीर भी अपने एक दोहे मे कहते हैं।[2] वस्तुत सभी निर्गुण मार्गी एव योगमार्गी सन्तो की शब्दावली एक जैसी ही होती है।

निष्कर्षत हम कह सकते हैं कि सत लालदेद एक सिद्ध योगिनी थी। जीवन के सार तत्व को उन्होने प्राप्त कर लिया था। ब्रह्म एव जीव जगत के सापेक्ष सबधो को जान चुकी थीं और उस परमानन्द की स्थिति पर पहुॅच चुकी थी जहॉ पहुॅच कर और कुछ जानने, समझने एव प्राप्त करने की इच्छा समाप्त हो जाती है। सत लालदेद के पद पूर्णतया भक्ति रस में डूबे एव गेय हैं। उन्होने अपने पदो मे जिस विषय का प्रयोग किया है वह अत्यन्त गूढ है और दर्शन एव योग के विषय मे जानने वाला ही उसके मर्म को समझ सकता है।

पानय देव् त अर्चुन कस् ॥३५॥ वही पृ०-१६

[1] अछान् आय् त गछुन् गछे,
पकुन् गछे दिन क्योह् न राथ।
योरय् आय् तूरि् गछुन् गछे
केहॅ् न-त कॅह् न- त, केहॅ न - त क्याह् ॥१९॥ पृ०-८

[2] जलमे कुम्भ कुम्भ में जल है बाहर भीतर पानी ।
फूटा कुम्भ जलन जलहि समाना यह तत कहो गियानी

उनकी भाषा सहज सरल और विषय को सम्यक् रूप मे व्यक्त करने मे सक्षम है। छद की दृष्टि से भी उनके पद निर्दोष है। ब्रह्मतत्व एव आत्मतत्व का निरूपण वे जिस सहज ढग से कर देती है वह बडे-बडे ज्ञानियो के लिये भी विरल है। निम्न जाति की होते हुये भी उनकी प्रज्ञा इतना प्रखर, इतनी उर्वर है कि सम्पूर्ण मध्यकाल मे उनकी रचनाये उपने आप मे अनूठी है। निर्गुण ब्रह्म की उपासिका लालदेद शकराचार्य के वेदान्त और कहीं-कहीं उपनिषदो से भी प्रभावित दिखाई देती है। उनकी विशिष्टता इस अर्थ मे है कि उत्तर भारत मे उनसे पूर्व किसी भी कवि की रचना इतने सुपुष्ट रूप मे परिलक्षित नहीं होती, इस तरह से वे उत्तर भारत की सत परम्परा की प्रारम्भिक कवयित्री सिद्ध होती है।

(२) महदायिसा

मराठी साहित्य की प्रथम कवयित्री महादायिसा है। इन्हे महदम्बा, उमाम्बा एव रूपाई भी कहा जाता है। इनके जन्म और मरण की तिथियॉ अज्ञात है। 'नागदेव-स्मृति-ग्रन्थ से इतना ही ज्ञात होता है कि उनके पूर्वज वामनाचार्य देवगिरि के यादव र। ।ा महादेव राय के यहॉ पुरोहित थे। वामनाचार्य की पत्नी महादायिसा बहुत बुद्धिमान स्त्री थीं एव धार्मिक ग्रन्थो के प्रणयन मे दक्ष थीं। वे और उनकी पत्नी राजपरिवार के लिये पुरोहित का कार्य करते थे। एक बार अन्य प्रान्तो से कुछ पण्डित शास्त्रार्थ के लिये देवगिरि आये। महदायिसा ने उनके तर्को का कुशलता पूर्वक खण्डन किया। राजा महादेव इससे बहुत अधिक प्रसन्न हुये और उन्हे पॉच गॉवो की जागीर प्रदान की । कवयित्री महदायिसा, इन महदायिसा की पौत्री कही जाती है ।' महाराष्ट्र सारस्वत के परिशिष्ट (पृ० ८८५) मे डॉ० तुलपुले ने वामनाचार्य का वशविस्तार इस प्रकार दिया है।

---
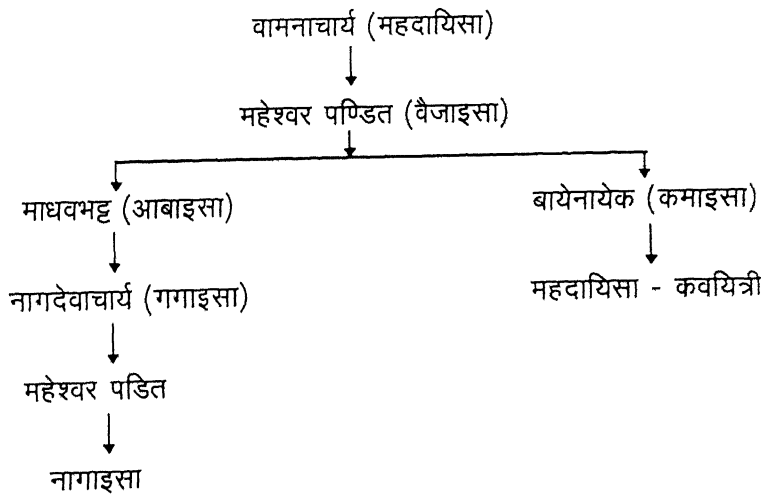
[1] हिन्दी को मराठी सतों की देन डॉ० विनय मोहन शर्मा पृ०-८५

[2] ग्रेट हिन्दू विमेन इन महाराष्ट्र श्रीमती कमला भाई पृ०-३४३

[3] हिन्दी को मराठी सतो की देन से उदघृत पृ०-८५

ये बहुत कम उम्र मे विधवा हो गई थी और पिता के घर रहने के लिये आगई थीं। प्रारम्भ से ही उनके मन-मस्तिष्क का झुकाव धार्मिकता की ओर था। महानुभाव मत के सस्थापक चक्रधर महाराष्ट्र आये और अपने सम्प्रदाय के प्रचार के लिये भ्रमण कर रहे थे। महदायिसा उनकी शिष्या बन गई और उनका अनुसरण करने लगीं। उन्होने चक्रधर से उनके जीवन और दर्शन जिसकी वे शिक्षा दे रहे थे, के बारे मे बहुत प्रश्न किये, ये व्यक्तिगत प्रश्न (कथाये) इतिहास और लीलाचरित नामक पुस्तको मे सकलित हैं। इनके माध्यम से हम उनके और उनके गुरु के बारे मे महत्वपूर्ण सूचना प्राप्त कर सकते हैं । जब चक्रधर बद्री केदार की तीर्थयात्रा पर निकले तो वे चक्रधर के गुरु गोविन्द प्रभु के सानिध्य मे रही और गोविन्द प्रभु की मृत्यु के पश्चात उनके शिष्य नागदेव के पास रहीं। डॉ० तुलपुले ने जो वशविस्तार दिया है उसके अनुसार वे नागदेवाचार्य की चचेरी बहन थीं। वे बहुत विदुषी समझी जाती थीं। जीवन के अन्तिम समय मे उनके एक पैर मे फोडा हुआ और उसे चीरना आवश्यक समझा गया। उन्होने कहा "मेरे गुरु इसकी अनुमति नहीं देगे मै अपने अन्तिम समय मे हूँ, मैं मर जाना चाहूँगी बशर्ते कि अपने गुरु की आज्ञा का उल्लघन करूँ। उनकी मृत्यु के पश्चात नागदेव ने टिपपणी थी कि वृद्ध स्त्री इस मत की सरक्षिका थी। नागदेवाचार्य ने इन्हे वृद्धा (म्हतारी) कहा है इनका प्रमाण काल शके १२३० है। स्मृति स्थल मे नागदेवाचार्य का अपनी म्हतारी के निकट रहने का उल्लेख है।

---

[1] ग्रेट हिन्दू विमेन इन महाराष्ट्र श्रीमती कमलाबाई पृ०-३४३

[2] डॉ० विनय मोहन शर्मा हिन्दी को मराठी सतो की देन पृ०८५

[3] ग्रेट हिन्दू विमेन इन महाराष्ट्र पृ०-३४४

अतएव महादायिसा का प्रयाणकाल शके १२३० के पूर्व होना चाहिये। इन्होने धावळे, मातृकी, रूक्मिणी स्वयवर और गर्भ काण्ड ओव्या नामक ग्रन्थो की रचना की है। इन्हे मराठी की प्रथम कथाकाव्य लेखिका होने का श्रेय प्राप्त है। कविता के अश जिसके लिये वे अच्छी जानी जाती है धावळे (Dhavale) है जो विवाह के अवसर पर गाया जाने वाला शुभ गीत है। इसमे उन्होने कृष्ण और रूक्मिणी के विवाह का वर्णन किया है। गोविन्द प्रभु के विवाह के अवसर पर बिना किसी काट-छॉट और लिखे बिना वहीं उसी समय इस गीत को पूर्ण किया। छावळे गीतो का यह प्रथम भाग था। दूसरा भाग बाद मे पूर्ण किया गया।[3] रूक्मिणी के विवाह के ऊपर उन्होने एक अन्य कविता रची जिसकी पक्तियॉ मातृकी या मराठी वर्णमाला के अनुसार रची गईं है। इन्होने हिन्दी मे भी रचना की है। पदो की सख्या अज्ञात है क्योकि पता नहीं कितने पद काल कवलित हो गये। हिन्दी मे रचित उनका केवल एक पद प्राप्त है जो डा० विनय मोहन शर्मा द्वारा रचित "हिन्दी को मराठी सन्तो की देन" ग्रन्थ मे सकलित है। उक्त पद निम्नलिखित है–

> नगर द्वारा हो भिच्छा करो हो, बापुरे मोरी अवस्थालो।
> जहॉ जाबो तिहॉ आप सरिसा कोउ न करी मोरी चिता लो।
> हाट चौहाटा पड रहू हो माग पच घर भिच्छा
> बापुड लोक मोरी आवस्था कोउ न करी मोरी चिता लो।

---

[1] हिन्दी को मराठी सतो की देन डा० विनय मोहन शर्मा पृ०-८५
हिन्दी को मराठी सतो की देन डा० विनय माहन शर्मा पृ०-८५

[3] श्रीमती कमला बाई पृ०-३४४
हिन्दी को मराठी सतों की देन डा० विनय माहन शर्मा पृ० ८५

"मार्ग" के आचार्य के अनुसार साधिका भिच्छा मॉगकर चौहाटे मे पडी रहती है। उसके गुरुदेव ही उसकी चिता करते हैं। वह उन्हीं का आह्वान करती है। महदायिसा की गुरु भक्ति प्रसिद्ध है।[1] डा० विनय मोहन शर्मा महदायिसा की हिन्दी कविता की विशेषता बताते हुये लिखते है कि महदायिसा के हिन्दी पद की भाषा खडी बोली और ब्रज का मिश्रण है। अभिव्यक्ति में सहज प्रासादिकता है। करूण भाव की छाप है। चक्रधर स्वामी की अपेक्षा महदायिसा की भाषा में अधिक प्रौढता है अधिक हिन्दीपन है। क्या ही अच्छा होता यदि इनके और भी हिन्दी पद प्राप्त हो सकते। इस प्रकार महादायिसा को मराठी साहित्य के इतिहास मे प्रथम कवयित्री होने का गौरव प्राप्त है।

---

[1] हिन्दी को मराठी सन्तों की देन ८५ डा० विनय मोहन शर्मा

(३) मुक्ताबाई

मुक्ताबाई महाराष्ट्र प्रान्त की ख्यातिलब्ध सत कवयित्री है। वे वारकरी सम्प्रदाय से सबध रखती है। वारकरी सम्प्रदाय का प्रवर्त्तन सत पुण्डलिक के द्वारा १२वीं शती मे हुआ था। वारकरी सम्प्रदाय के सत अपना सम्बन्ध नाथ सम्प्रदाय के साथ जोडते है। महाराष्ट्र मे नाथमत का प्रचारक गोरखनाथ को माना जाता है। डा० वासुदेव सिह "हिन्दी साहित्य का उद्‌भव काल" मे इनकी वशावली इस प्रकार मानते है।'

'' हिन्दी साहित्य मे निगुणोपासिका कवयित्रियॉ पृ० ४६
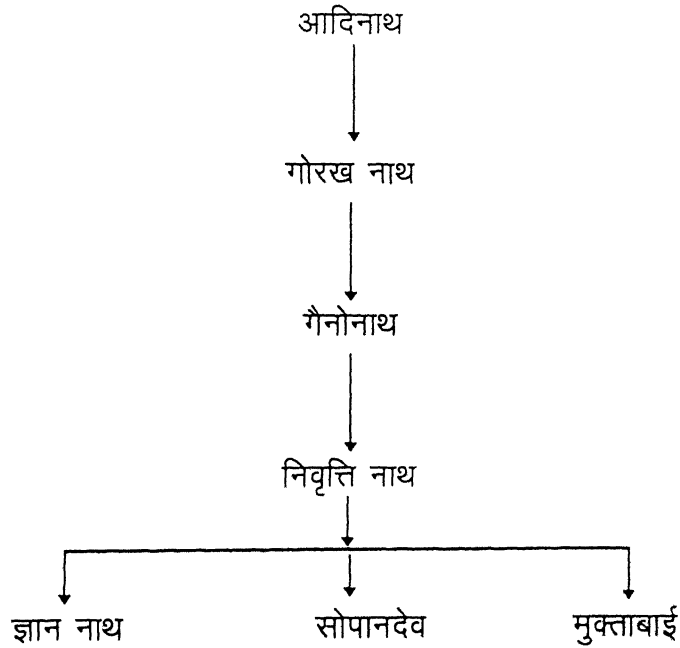
आचार्य विनयमोहन शर्मा इस वशावली को इस प्रकार मानते है
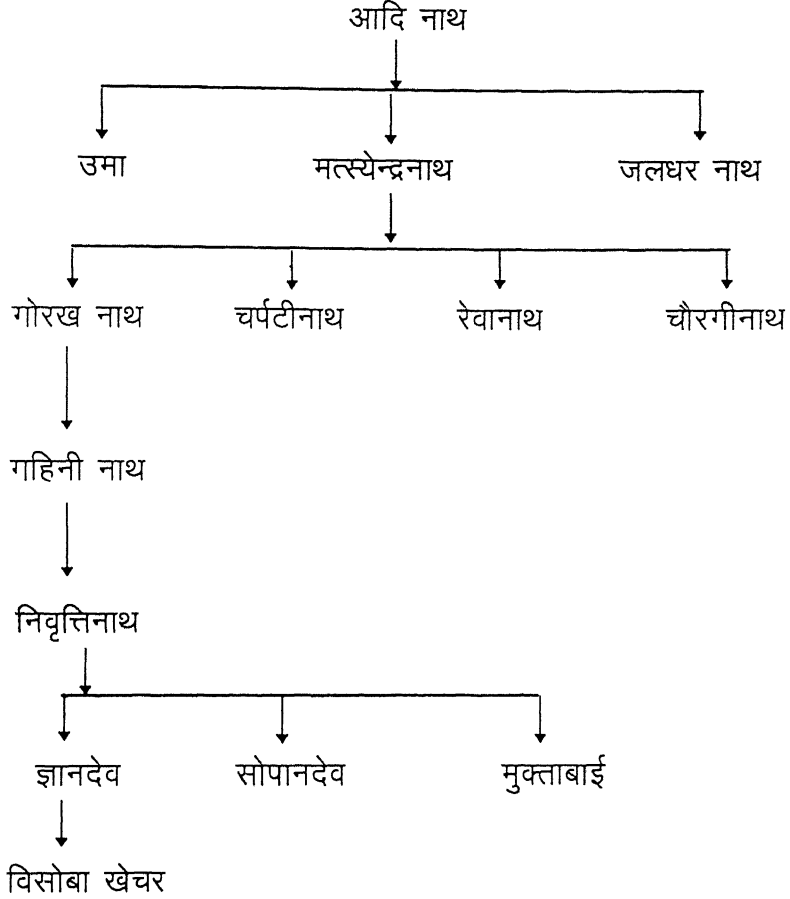
मुक्ताबाई का जन्म पैठण के समीप गोदावरी नदी के तट पर स्थित आपेगॉव के विट्ठल पन्त के यहॉ हुआ था। इनकी माता का नाम राखमबाई था। इनके जन्म सवत के विषय मे विद्वानो मे बहुत मतभेद है। कृ० गो० वानखडे गुरु जी के अनुसार ''ज्ञानेश्वर की बहन मुक्ताबाई का जन्म स० १३३६ की आश्विन शुक्ला को हुआ। प्रो० भी० गो० देशपाण्डे ने मराठी का भक्ति साहित्य मे इनका जन्म सन् १२७९ मे माना है। श्रीमती कमला बाई का भी यही मत है। प०

---

१ हिन्दी को मराठी सन्तो की देन पृ० ६३
हिन्दी साहित्य मे निर्गुणोपासिका कवयित्रीयॉ पृ०-४८

३ वही

बलदेव उपाध्याय इनका समय सन् १२०१--१२१९ मानते हैं।[१] आचार्य विनयमोहन शर्मा के अनुसार ज्ञानेश्वरी ग्रन्थ का समाप्तिकाल शके १२१२ निश्चित है, अतएव इसी शताब्दी मे निवृत्तिनाथ, ज्ञानदेव, सोपानदेव का जन्म होना चाहिए। शक सवत् के अनुसार मुक्ताबाई का जन्म शके १२०१ है।[२] मुक्ताबाई गुरु की आज्ञा से सन्यास धर्म से गृहस्थ धर्म मे आये विट्ठल पन्त की चौथी सन्तान थी। निवृत्ति, ज्ञान एव सोपान इनके बडे भाई थे। इनके पिता विट्ठलपन्त वाराणसी के रामानन्द के शिष्य थे। कालान्तर मे रामानन्द जी आळन्दी आये और राखमबाई को आठ पुत्रो की मॉ होने का आर्शीवाद दिया। राखमबाई के यह बताने पर कि उनके पति विट्ठलपन्त रामानन्द जी के शिष्य है, वे (रामानन्द जी) उन्हे लेकर वाराणसी आये और चैतन्यानन्दजी (विट्ठलपन्त का सन्यास धर्म का नाम) को आळन्दी जाकर गृहस्थ धर्म स्वीकार करने की आज्ञा दी। विट्ठलपन्त ने सन्यासी होकर पुन गृहस्थ आश्रम मे प्रवेश किया था अत उनका सामाजिक बहिष्कार कर दिया गया और प्रायश्चित स्वरूप जलसमाधि का विधान बताया गया। अतत विट्ठल पन्त ने पत्नी सहित प्रयाग मे गगाजी मे जलसमाधि ले ली। चारो बच्चे इस सहानुभुतिहीन ससार मे उनके कर्मों का फल भुगतने के लिये छोड दिये गये। मुक्ताबाई की अवस्था उस समय छ वर्ष की थी।

मुक्ताबाई की रचनाओ मे अद्वैत सिद्धान्त की बात बार-बार घूम फिर कर आई है। इसे लक्ष्य करके बहुत से मराठी ग्रन्थकारो ने उन्हे गोरखनाथ की

---

४ ग्रेट विमेन ऑफ इन्डिया पृ०-३४४

१ भागवत सम्प्रदाय पृ०-५८४

२ 'हिन्दी को मराठी सन्तो की देन पृ०-९३-९४

की दृष्टि इतनी विशाल हो गई कि वे ककड, पत्थर, काटा, नाली के कीडे, पशुपक्षी, स्थावर-जगम, पुष्प, कुत्ते सभी मे उसी पाडुरग के दर्शन करने लगीं। हाथो मे कॉटा चुभ जाने पर अपने हाथो के दर्द की ओर उनका ध्यान कम जाता वरन् उसमे पाडुरग को देखते हुये वे कह उठती "बडे नटखट हैं पाडुरग। काटा, ककड, पत्थर, इन रूपो को धारण करने मे इन्हे न जाने क्यो आनन्द आता है।[1]"

"छि छि विढोबा बडे गदे है, देखो न इस गदी नाली मे कीडे बनकर बिलबिला रहे हैं।[2]" यह एक शुद्ध बुद्ध हृदय मे सर्वेश्वर को ससार के प्रत्येक रूप मे देखने की साधना थी।

मुक्ता विसोबा खेचर की गुरु कही जाती हैं। मुक्ताबाई की कृपा से ही यह ईर्ष्यालु ब्राह्मण महात्मा विसोवा खेचर हो गया। श्री ज्ञानेश्वर की जीवनी से हमे एक तक्ष्य की प्राप्ति होती है। चॉग देव और ज्ञानेश्वर इन दो दार्शनिक भक्त श्रेष्ठो के मिलन से मराठी साहित्य मे 'चॉगदेव पासष्ठी नामक अत्यन्त उच्च कोटि का ग्रन्थ हमे प्राप्त हुआ है इसमे यह उल्लिखित है कि चॉगदेव की गुरु मुक्ताबाई थीं, इसलिये इस ग्रन्थ मे उनकी भूमिका मै की है। उन्होने ही शिष्य को आत्मज्ञान दिया था। कहा जाता है कि चौदह वर्ष की गुरुमाता के शिष्य चॉगदेव की उम्र उस समय ८४ वर्ष थी।[3] स्वय चॉगदेव का कथन है

मुक्ताई जीवन चा गया दिधले
निर्गुणी साघले घर कैसे[4]

---

[1] कल्याण नारीअक, परमयोगिनी मुक्ताबाई पृ०-६५६
[2] वही
[3] विबोधत- बालायोगिनी मुक्ताई पृ०-१७२
[4] हिन्दी को मराठी सेतों की देन से उद्घृत पृ०-९

मात्र चौदह वर्ष की अवस्था मे मुक्ता ने जिस उच्चतम आध्यात्मिक अनुभूति को प्राप्त किया था, उस अवस्था मे एक जीवन मे पहुँचना असम्भव है। वस्तुत साधना क्षेत्र मे वे अनेक जन्मो को लाघ गई थीं। योगी चॉगदेव ने उल्लेख किया है कि मुक्ताबाई पूर्व जन्म मे भी उनकी गुरु थी। प्रसिद्ध मराठी सत साहित्य गवेषक रा० चिग टेरे ने "प्रबन्ध एव तत्वसार ग्रन्थ का अध्ययन करके एक नवीन सत्य उद्‌घाटित किया है। उन्होने मुक्ता के पूर्व जन्म का इतिहास बताते हुये चॉगदेव को पूर्वजन्म मे उनका ही शिष्य होना बताया है।[1] महाराष्ट्र के विदर्भ प्रदेश मे अचलपुर एक ग्राम है, वहॉ के राजा की लडकी का नाम सत्यवती था। उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य के साथ उसका विवाह हुआ था। विक्रमादित्य के भाई राजा भतृहरि सन्यासी हो गये थे। सत्यवती भतृहरि के वैराग्यपूर्ण, पवित्र जीवन से बहुत प्रभावित हुईं। पारमार्थिक लाभ के लिये मुमुक्षत्व की आकाक्षी सत्यवती भतृहरि से सत्य के अन्वेषण मे तत्पर हुई। वे प्रतिदिन भतृहरि को अन्न भिक्षा देकर तब अन्न ग्रहण करती थीं। अत्यन्त निष्ठा के साथ सत्यवती इस व्रत का पालन करती थीं। किन्तु एक दिन इसमे व्यतिक्रम हो गया। बहुत समय तक भतृहरि की प्रतीक्षा करने के पश्चात् वे स्नान करने चली गईं। इसी बीच भतृहरि आ गये। सत्यवती को न देखकर बिना भिक्षा लिये ही वे लौट गये। इधर उनके अलख शब्द को सुनते ही सत्यवती जिस अवस्था मे थीं उसी अवस्था मे स्नानगृह से बाहर आकर देखती हैं तो वे जा चुके थे। सत्यवती वस्त्र आदि की ओर ध्यान न देते हुये भिक्षा का थाल हाथ मे लिये हुये देहभाव से रहित, पागलो की तरह भतृहरि की ओर दौडी। उसी समय उसी पथ से साधु गोरखनाथ आ रहे थे। उन्होने उनमे चेतना का सञ्चार किया और कहा 'मॉ तुम

---

[1] वही

घर लौट जाओ। सत्यवती ने कहा, 'मृत देह को श्मशान मे ले जाने के बाद क्या वह फिर लौट कर आती है? सत्यवती के उस तीव्र वैराग्य को देखकर गोरखनाथ ने उन्हे तत्वोपदेश दिया। परम स्नेह से उनका नाम रखा ' मुक्ताई'। गुरु से उपदेश पाकर सुयोग्य शिष्या श्री शैलपर्वत पर तपस्या करने चली गयी। साधना समाप्त करके वे पुन महाराष्ट्र के विदर्भ प्रदेश मे आईं, वहॉ साधक चॉगा बटेश्वर ने उनका शिष्यत्व ग्रहण किया, किन्तु उनकी शिक्षा समाप्त होने के पहले ही मुक्ताई ने समाधि लेकर ससार त्याग दिया। अमरावती जिले के मोरशी ग्राम से ४-५ कि०मी० दूर सालवरडी पहाड पर आज भी मुक्ताई का समाधि मन्दिर है। बाद के जन्म मे यही मुक्ताई आळन्दी मे विट्ठलपन्त की पुत्री होकर जन्मी और इस जन्म मे पुन चॉगदेव की गुरु होकर उनकी असमाप्त शिक्षा पूर्ण की।'[1] यही चॉगदेव बटेश्वर महाराष्ट्र के प्रमुख सन्त नामदेव के गुरु हुये।

मुक्तावाई मे पद रचना कौशल था। उनके बहुत कम अभग इस समय प्राप्त हैं और यह भी निश्चित नहीं है कि उन्होने कितने अभगो की रचना की, किन्तु जो भी कुछ रचनाये प्राप्त है, वे अभग साहित्य की अमूल्य निधि हैं। जैसे उनका एक अभग जिसमे उन्होने नामदेव के अहकारी व्यक्तित्व को चुनौती दी है और उन्हे तुरन्त किसी गुरु के शरणापन्न होने का आदेश दिया, स्वय मे एक पूरा कथा साहित्य समेटे है, जिसकी वर्णन क्षमता रचना कौशल और सबसे बडी चीज जीवन का सत्य जिसे उन्होने मात्र चौदहवर्ष की अवस्था मे जान लिया था -

---

[1] निबोधत -- बाल योगिनी मुक्ताई पृ०-१७४

घेडनी टालदीण्डी हरि कथा करिसी।

हरिदास महन विसी श्रेष्ठ पणे।

गुरु बिन तूझ नवहेचिगा मोक्ष।

होसिल मुमुक्षु साधक तू।

आत्मवती दृष्टि नाहींच पा केली।

तव वरी ब्रम्ह बोली बोलून काय।

तूझे रूप तूवा नाहीं ओल खिले।

अह ते धारिले कास चासी।[1]

मुक्ता नामदेव से अत्यन्त दृढ स्वर मे कहती है, देख रही हूँ तुम्हे भक्ति का अहकार है। यदि अपना मगल चाहते हो, तो शीघ्र किसी गुरु की शरणापन्न हो जाओ। भक्त होने के लिये केवल भक्ति, ज्ञान और कर्म यथेष्ट नहीं है। मनुष्य का सबसे बडा शत्रु उसके मन के भीतर है वह है अहकार। वास्तविक साधना इस अहकार को दूर करना ही है। अहकार के मूल विनाश के लिये सद्‌गुरु की आवश्यकता है। इन पक्तियो मे मनुष्य की मुक्ति का उपाय सहज किन्तु सुन्दर रूप मे बताया गया है। अपनी प्रतिभा से भास्वर इस रचना के माध्यम से हम उनके तीव्र वैराग्य एव उच्च भाव से परिचित होते है।

अन्त मे यह निश्चित किया गया कि नामदेव आळन्दी जाये, जहॉ एक प्रसिद्ध सन्त गोरा कुम्हार रहते है, वे बतायेगे कि नामदेव पूर्णसन्त हैं, कि नहीं। नामदेव परीक्षा के लिये आळन्दी आये जहॉ गोरा कुम्हार ने उन्हे कच्चा घडा

---

[1] निबोधत -- पृ०-१७२

कहा। नामदेव की परीक्षा के लिये जाते समय जब वे गोरा कुम्हार के घर जाने को निकली तब ऐसा प्रतीत हुआ मानो आकाश मे मोतियो का चूर्ण विखर गया हो अथवा बिजली की कडकडाहट और चमचमाहट से आकाश भासमान हो उठा हो अथवा सारा आकाश ही पीताम्बर ओढे हो।--

मोतियाचा चुरा फेकिला अबरी,
बिजूनिया परी कील झाले।
जरी पीताम्बर नेसविली नया,
चैतन्याचा गाया नील बिन्दु।
तली परी पसरे शून्याकार जाले,
सूर्याची ही पिले नाचूँ लागे।[1]

इस सबध मे आजगॉवकर का विचार है कि मुक्ताबाई की योगविद्या मे अच्छी गति होनी चाहिये।[2] आचार्य विनय मोहन शर्मा के अनुसार यह वर्णन मात्र आलकारिक है। इससे उनके तेजस्वी रूप का ही सकेत मिलता है किसी योग साधना का चमत्कार नहीं। स्वय ज्ञानेश्वर ऐसी क्रियाओ मे आस्था नहीं रखते थे। उन्होने हठ वादियो का उपहास ही किया है।[3]

मुक्ता के निम्नाकित अभग मे आत्म ज्ञान प्राप्त होने पर जीव की क्या स्थिति होती है इसका उपदेश चॉगदेव के प्रति है--

---

[1] हिन्दी को मराठी सन्तो की देन पृ०-९५

[2] हिन्दी को मराठी सन्तो की देन से उदघृत पृ० ९६

[3] वही

सान्डी ते मान्डी, मान्डी ते सान्डी।

सान्डने मान्डने दोन्ही ही सान्डी।

सोऽह शून्य बूझा रेभाई,

सागते एकते दोन्ही हीनाहीं।

नी ते काई माझे ते काई।

परीयेसी चागया बोले मुक्ताई।

अर्थात् जिसने शरीर धारण किया है उसका विनाश अवश्यम्भावी है और जिसकी मृत्यु होती है उसका जन्म भी होता है, किन्तु सृष्टि का यह नियम सिद्ध पुरुषो पर लागू नहीं होता। जिसने ईश्वर के प्रकृत रूप को जान लिया है, जिसने सोऽह तत्व की उपलब्धि की है, वह जन्म-मृत्यु के ऊपर उठ गया है। जब तक आत्मज्ञान नही होता तब तक जो ज्ञान की बात कह रहा है, जो सुन रहा है एव ज्ञान इन तीनो की पृथक सत्ता रहती है किन्तु आत्मज्ञान होने पर सभी एक तत्व मे लय हो जाते है। इस अवस्था मे अपने क्षुद्र अस्तित्व तक का बोध नहीं रहता है। हे चॉगदेव[1] मुक्ता के इस अमूल्य उपदेश को ध्यान से सुनो। महीयसी मुक्ताबाई ने अद्वैत वेदान्त के मूल तत्व को इस उपदेश के माध्यम से बताया है। एक अन्य अभग मे योगी चॉगदेव के प्रति कथन है। सत्य-असत्य, सुख-दुख सब जागतिक प्रपञ्च है। जीवन्मुक्त मनुष्य जिस सहजावस्था मे रहता है उसी का इस अभग मे कथन है।

---

[1] निबोधल -- बालयोगिनी मुक्ताई पृ०-१७१

मुक्ताई महने चागया भ्रमि सदेही,

निरधारी राही स्वप्न कैचे।

बधने नाही बद्ध नाहीं,

साचकी लटिके वर्तते देहि नाही।

भेद नाही भेद सी काही,

साच की लटिके वर्तते देहि।

नाही सुख दुख, पाप पुन्य नाही,

नाही धर्म कर्म कल्पना ही नाही,

नाही मोक्ष ना भव बन्ध नाही,

महने बटेश्वरा ब्रह्ममही नाही,

सहज सिद्ध बोले मुक्ताई।[1]

यहॉ मुक्ता शिष्य कोसमझा रही है--

वास्तव मे सत्य कहकर भी कुछ नहीं है और असत्य कहकर भी कुछ नहीं है। सत्य-असत्य, सुख-दुख ये सब कुछ द्वन्द्व जागतिक है अर्थात देह से सम्बन्धित है, जो विदेही है देह बोध के ऊपर उठ चुका है, उसके लिये यह सब अर्थहीन है, केवल सुख-दुख का अतिक्रमण ही नहीं, जीवनमुक्त मनुष्य का कर्म नाश हो जाता हैं। तब उसका धर्म बोध पूरी तरह पलट जाता है। वह ब्रम्ह की तरह विशाल हो जाता हे। ऐसी एक अवस्था भी आती है जब उसके लिये जगत् ब्रह्म अथवा मुक्ति की कोई पृथक सत्ता ही नहीं रह जाती है। इस अवस्था को शून्यावस्था कहते हैं। फूल जिस प्रकार अपने नियम से सहज रूप मे प्रस्फुटित

---

[1] बाला-योगिनी मुक्ताई निबोधत-
जयश्री नातू - पृ० १७२-१७३

हो उठता है, उसी प्रकार सहज भाव से सिद्ध मुक्ताई तुम्हे ये बात कह रही है। सहज सर्वव्यापी विराट उस ईश्वर का अनुभव होने पर साधक की क्या अवस्था होती है उपर्युक्त पक्तियो मे स्पष्ट रूप से इसका वर्णन है। आश्चर्य तो इस बात पर होता है कि मात्र चौदह वर्ष की आयु मे उन्होने चौरासी वर्ष के चॉगदेव को यह उपदेश दिया। इतिहास मे यह एक महत्वपूर्ण घटना है। वैसे वास्तविक अध्यात्म जगत मे दैहिक आयु का कोई अर्थ नहीं है।

महातपस्विनी एव चित्कला विभूषित मुक्ता ससार मे ससार के नियमो को मानकर चलती है। निवृत्ति, ज्ञान एव सोपान की छोटी बहन होने के कारण उनकी घर गृहस्थी सभालना, तीनो योगी भाइयो को खिलाना,पिलाना आदि कार्य महान आनन्द से करती थीं। सन्यासी की सन्तान होने के कारण चारोभाई बहन समाज से बहिष्कृत थे। भिक्षा मॉगने के लिये जाने पर उन्हे सन्यासी की सन्तान कहकर अपमानित किया जाता था भिक्षा के स्थान पर गोबर, मिट्टी, ककड प्राप्त होना और अश्राव्य भाषा का प्रयोग इन बच्चो को बहुत सन्तापित करता था। ऐसी ही एक घटना से ज्ञानदेव बहुत दुखी हुये और उन्होंने कोठरी का दरवाजा बन्द कर लिया। तब मुक्ता के मुख से निर्झर की भॉति बडी गूढ बाते फूट पडी। सावसील छन्द मे निबद्ध इन पक्तियो को "ताटीके अभग" कहा जाता है, इस रचना मे आठ--नौ वर्ष की अवस्था की मुक्ता भाई को समझाने के लिये कहती है--

योगी पावन मनाचा,
साही अपराध जनाचा
विश्व रागे झाले वनही,
सन्ती सुखे बहावे पानी।[1]

---

[1] निबोधत बालयोगिनी मुक्ताई पृ० १७५, जयश्री नातू

अर्थात् योगी का मन पवित्र एव विशाल होता है। साधारण मनुष्य से भूल भ्रान्ति तो होगी ही। योगी अपनी महत्ता से, उदारता से इन सबको क्षमा कर देता है। उसका मन सर्वथा शान्त रहता है। वह किसी प्रकार विचलित नहीं होता है, उसके हृदय मे विवेक का अमित बल सचित रहता हैं। सम्पूर्ण विश्व धूँ-धूँ कर जल उठे तो भी वह अपने शक्तिबल से सब शीतल कर सकता है। अशान्त को शान्त करना ही तो उसका धर्म है और इसी में उसका आनन्द है। वे आगे कहती हैं।

शब्द शास्त्रे झाले क्लेश,
सन्ती मानाबा उपदेश।
विश्व पट ब्रम्ह दोरा
ताटी उघडा ज्ञानेश्वरा।[1]

आपको निश्चित ही किसी की बातों से बहुत आघात लगा है। आपके कोमल हृदय को इसने विर्दीण कर दिया है। किन्तु आपके समान साधक के लिये इतना विचलित होना, कष्ट पाना शोभा नहीं देता है। इसके अतिरिक्त निन्दा भी तो एक तरह का उपदेश ही है। साधक का मन इतना शान्त, इतना महान होता है कि मनुष्य के निन्दावाद को वह उपदेश रूप में शिराधार्य कर लेता है। जड चेतन वस्तुओं से भरा यह जो विश्व है, इसका स्वरूप क्या है। यह विश्व तो ब्रह्मरूप एक सूते से बुना हुआ एक वस्त्र है। यह तत्व तो आपको ज्ञात है, निखिल विश्व जब एक ही अद्वितीय ब्रह्म सूत्र से ग्रथित है, तो कौन किसको

---

[1] निबोधत - बालयोगिनी मुक्ताई पृ० १७५ जयश्री नातू

गाली देता है, कौन किसे निन्ध समझता है। मेरे भाई ज्ञानेश्वर। इसलिये दरवाजा खोल दो। वे आगे कहती है।

शुद्धज्याचा भाव झाला,
दूरी नाहीं देव प्याला।
अवधी साध्न हात बटी,
मोले मिलत नाही हाटी।
कोणगी कोणा सिक बावे,
सार साधुनिया ध्याबे,
लडी बाल मुक्ताबाई।
जीव मुद्‌दल ढाई चेठाई।
तुमही तरूनी विश्वतारा,
ताटी उघडा ज्ञानेश्वरा।

अर्थात् हम यदि ईश्वर की प्राप्ति करना चाहते हैं तो सबसे पहले अपने मन को पवित्र करना होगा शुद्ध करना होगा, क्योकि जिसका जैसा भाव होगा उसे वैसा ही लाभ होगा। जिस रूप मे हम उनकी चिन्ता करेगे, उन्हें पाने की इच्छा करेगे, उसी रूप में वे दर्शन देगे। जो शुद्ध है, पवित्र है, भगवान उसके साथ छाया की तरह घूमते है। मुक्ता ने इस अभग में जिस शुद्धा भक्ति एव समर्पण की बात कही है, ये दोनो साधनायें अत्यन्त कठिन है। इसीलिये मुक्ता कह रही है कि सब कुछ समर्पण, नि शर्त समर्पण की यह साधना अनायास लक्ष्य नहीं है। यह भाव लाने के लिये ससार का, माया-मोह का, पूर्णरूप से त्याग करना होगा। माया का आवरण पूर्णत हट जाने पर ही अन्तर्स्थित चैतन्य

प्राप्त होता है। ये समस्त बाते आप जानते है। मै आपसे बहुत छोटी हूँ। बहुत सी उल्टी सीधी बाते मैने आपसे कह डाली है। आप केवल सार लीजियेगा।

गुरु जनो को कोई उपदेश देना या सिखाना अपराध है, और यह अपराध मुक्ता ने कर डाला है। इसी से भाई से क्षमा प्रार्थना करती हुई वे कहती हैं, मैं आपकी प्यारी छोटी बहन हूँ, आपके शरीर के कष्ट के लिये मुझे बडा उद्वेग हो रहा है। आपके महामूल्यवान शरीर को लोक कल्याण हेतु यत्न पूर्वक रखना उचित है। सैकडो मनुष्यों को आप भवसमुद्र से पार होने की शक्ति देगे, प्रेरणा देगे। आप मुक्त पुरुष हैं, किन्तु ससार के अन्य प्राणी आर्त्त हैं, पीडित हैं, उनकी मुक्ति का उपाय भी आपको ही करना होगा। आपके कोठरी का द्वार खोलने पर ही इन अज्ञानी लोगो की ऑखो से अज्ञान का परदा हटेगा। ज्ञान का द्वार खुलेगा, अत हे ज्ञानेश्वर। मेरे भाई, मेरी विनती सुनकर दरवाजा खोल दो।

इतनी अल्पायु की बालिका के मुख से ये अमूल्य ज्ञानगर्भित वाणी सुनकर अवाक् हो जाना पडता है। इस अकल्पनीय उपदेश से शान्त हो ज्ञानदेव द्वार खोलते हैं। इस घटना के बाद ज्ञानदेव ''भावार्थदीपिका'' ओर ''अमृतानुभव'' नामक दो रचनाओ की सृष्टि करते हैं। इन दो अमूल्य ग्रन्थों से हम वन्चित रह जाते यदि मुक्ता ने अपनी सारगर्भित वाणी से ज्ञानदेव के क्रोध को शान्त न किया होता।ज्ञानेश्वर के प्रति मुक्ता की भक्ति एव निष्ठा इन दो पक्तियों से प्रमाणित होती है, जो ज्ञानेश्वर की समाधि के बाद कही गयी है।--

आम्हा माता पिता ज्ञानेश्वर,
नाहीं आता थार विश्राती सी[1]

---

[1] हिन्दी को मराठी सन्तों की देन पृ० ९५

मुक्तावाई द्वारा रचित एक अन्य पद जो 'हिन्दी को मराठी सन्तो की देन' मे सकलित है, मे यौगिक शब्दावली का प्रयोग है--

साधना के द्वारा उस स्थिति मे जीव के पहुँचने का कथन हैं जहॉ सारे भेद स्वय मिट जाते हैं --

वाह-वाह साहब जी, सदगुरु लाल गुसाई जी।

लाल बीच भो उडला, काला ओठ-पीठ सों काला।

पीत उन्मनी भ्रमर गुम्फा, रस झूलन वाला।

सद्गुरु चेले दोनो बराबर, एक दस्तयों भाई।

एक से एक दर्शन पाये, महाराज मुक्तावाई।[1]

इस पद मे प्रयुक्त उन्मनी, भ्रमर, गुम्फा, रस, झूलनवाला शब्द हठयोग की पारिभाषिक शब्दावली का ज्ञान कराते हैं। साहब जी शब्द कबीर आदि सन्तो द्वारा गुरु के लिये प्रयुक्त आदरसूचक शब्द है। गुसाईं जी भी इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। उक्त पद में लाल रजोगुण का, उडला अर्थात् उजला सतोगुण का, और काला तमोगुण का प्रतीक है, मनरूपी भ्रमर उन्मनी दशा का आश्रय लेकर चैतन्यानन्द रूपी गुफा मे निरन्तर ब्रम्हानन्द के दिव्य रस का पान करके मदमत्त रहता है। इसस्थिति मे ही वह जीव और ब्रम्ह के ऐक्य का सत्य जानता है।

मुक्ताबाई की मृत्यु के बारे में विद्वानो के अलग-अलग विचार हैं। ग्रेट विमेन ऑफ इन्डिया मे श्रीमती कमलाबाई ने बिजली गिर जाने से उनकी मृत्यु होने का

---

[1] वही पृ० ९५-९६

सकेत दिया है।[1] कृ० गो० वानखडे गुरु जी के अनुसार मुक्ता ने तापी नदी के किनारे स्वत अपना मर्त्य कलेवर त्याग दिया।[2] जयश्री नातू ने भी खानदेश के एदलाबाद से छ मील दूर नामदेव के निवासस्थान के समीप मेहूँण नामक ग्राम मे आकाश से आते हुये जयोर्तिमय प्रकाश में मुक्ता के विलीन होने का वर्णन किया हैं।[3] उनके मृत्यु सवत् के बारे मे भी बहुत मतभेद हैं, आ० विनय मोहन शर्मा के अनुसार ''जिस समय ज्ञानदेव ने शके १२०९ में समाधि ली, उनकी आयु २१ वर्ष थी। --------- ज्ञानदेव की समाधि के अनन्तर सोपानदेव ने भी शके १२१२ में समाधि ली शके १२१९ बैशाख बडी १२ को मेघगर्जन और जलवृष्टि के समय मुक्ताबाई ने इह लीला समाप्त की।[4] जबकि इसी पुस्तक में उन्होने ज्ञानेश्वरी का समाप्तिकाल शके १२१२ बताया है। इस हिसाब से तो ज्ञानेश्वरी का समाप्तिकाल ज्ञानदेव की समाधि के पश्चात ठहरता है। भी० गो० देशपाण्डे[5] और कमलाबाई देशपाण्डे[6] ने उनका जीवन काल सन् १२७९ से १२९७ तक माना है। आचार्य विनयमोहन शर्मा ने इनका समाधि स्थल माणगॉव मे माना है, जबकि महाराष्ट्रीय ज्ञान कोष मे इनका समाधि स्थल एदलाबाद बताया गया है।

मुक्ताबाई को ब्रह्म ज्ञान था उसी ज्ञान की अमूल्य सम्पत्ति उन्होंने प्राणि मात्र को दी। उनका ज्ञान वेदान्त तत्व पर निर्भर है। उनके उपदेश में उनके ज्ञानी रूप का दिग्दर्शन होता है, किन्तु अहकार का लेश मात्र भी नहीं है।

---

[1] ग्रेट विमेन आफ इन्डिया, पृ० - ३४८

[2] हिन्दी साहित्य में निर्गुणोपासिका कवयित्रियॉ से उदधृत पृ०- ५१

[3] निबोधत पृ०-१७६

[4] हिन्दी को मराठी सतों की देन पृ० ९५

[5] हिन्दी साहित्य मे निर्गुणोपासिका कवयित्रियॉ से उदघृत पृ०- ५१

[6] ग्रेट विमेन ऑफ इन्डिया पृ० ३४८

साधना के मार्ग की पहली सीढी है अहकार का नाश। कबीर के मैमता मन मा'रे रे' की तरह वे भी, मूढ जनसमुदाय कोही नहीं वरन् नामदेव जैसे भक्त को, जिसमे अभी तक अभिमान शेष था, ''अह ते धारिले कास चासी' कहकर प्रबोधित करती है।

मुक्ता स्वय मे एक परिपूर्ण व्यक्तित्व थीं। वे एक सात्विक साधिका थीं। उनके अभग सत साहित्य की दैनिक प्रार्थना के अग है। ज्ञान के क्षेत्र मे उनका स्थान इतना ऊॅचा था कि वहॉ आयु तो तुच्छ उनका नारीत्व भी आडे नहीं आ सका। अभग साहित्य मे उनके अभगो की दीप्ति ही दिव्य हैं। वे दिव्य आलोक से दीपित है। नाथ परम्परा मे आने वाली मुक्ता अद्वैत तत्व ज्ञान की उच्छल निर्झरिणी है। सत परम्परा मे इतनी कम आयु मे उनका यह योगदान अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

(४) बहिणा बाई

महाराष्ट्र की सत कवयित्रियो मे बहिणाबाई अद्वितीय स्थान रखती हैं। उनका जन्म १६२८ और मृत्यु १७०० ई० मे हुई थी। केवल वे ही ऐसी सन्त कवयित्री हुई है जिन्होने अपने जीवन के बारे मे कुछ साक्ष्य दिये हैं। उनका जन्म वेरूला, के पश्चिम मे स्थित "देवगॉव" मे हुआ था। उनके पिता का नाम औदेव कुलकर्णी और माता का नाम जानकी बाई था। उनके पिता ग्रामीण स्तर पर लेखन कार्य करते थे। उनके कोई सन्तान नहीं थी इसलिये उन्होने अत्यन्त कठिन तप किया उसके बाद ही बहिणाबाई का जन्म हुआ। इनके पश्चात दो पुत्र उत्पन्न हुये। जब वे पाच वर्ष की थीं, तब उनका विवाह तीस वर्ष के विधुर एक विद्वान ब्राह्मण रत्नाकर पाठक से कर दिया गया।

पारिवारिक कलह के कारण बहिणाबाई के माता-पिता ने "देवगॉव" छोड दिया। औदेव के अनुरोध पर उनके दामाद अर्थात् बहिणा के पति भी उनके साथ चल दिये। दो वर्ष तक भ्रमण के पश्चात इन लोगो ने कोल्हापुर में एक विद्वान ब्राम्हण बहिराम भट्ट के बरामदे मे शरण ली। भ्रमण के दौरान बहिणाबाई के मस्तिष्क पर पण्ढरपुर की यात्रा ने अमिट प्रभाव छोडा। विट्ठल के दर्शन से वे भक्ति रस से ओतप्रोत हो उठीं। वहीं उन्होने तुकाराम के अभगो का गायन भी सुना, फलस्वरूप उनकी लौकिक चिन्ताये तिरोहित हो गईं। ह्रदय शुद्ध-बुद्ध एव मन प्रसन्न हो गया। तदनन्तर वे सभी "देहूगॉव" गये, वहॉ बहिणाबाई ने तुकाराम जी को वैसा ही पाया जैसा उन्होने एक बार स्वप्न मे देखा था। वे तुकाराम जी के ससर्ग मे रहकर नित्य उनके अभगो का श्रवण करने लगीं। यहॉ भी इन लोगो

के लिये बहुत कठिनाईयॉ थीं। कुछ लोगो को ब्राम्हण दम्पत्ति द्वारा तुकाराम जी के शिष्यो को बुलाना आपत्तिजनक लगता था, क्योकि वे निम्न जाति के थे।

बहिणाबाई की रुचि योग मे थी, यद्यपि वह औपचारिक रूप से उसमे दीक्षित नहीं थी जैसा कि उन्होने स्वय कहा है, 'मैने तीन दिनो तक लगातार ध्यान किया। अन्त मे मैने महसूस किया कि जैसे तुकाराम मेरे सामने आये मेरे सिर पर अपना हाथ रखा और मुझसे रचना करने के लिये कहा, मै नहीं जानती कि ये वास्तविकता है या स्वप्न, लेकिन मैंने बहुत प्रसन्नता और उल्लास का अनुभव किया।मै उठ बैठी और नदी मे स्नान के लिये गई। जैसे ही मै नदी से बाहर आई, मेरे मुॅह से शब्द झरने लगे, मै नहीं जानती कि कैसे

उनके एक पुत्र और एक पुत्री थी। ऐसा प्रतीत होता हे कि वे देहू मे तब तक रही जब तक तुकाराम रहे। उसके बाद के अपने जीवन के बारे मे उन्होने कोई उल्लेख नहीं किया है अपने पुत्र को अन्तिम उपदेश के रूप मे उन्होने जो रचना की है उसमे उन्होने अपने पूर्व जन्मो का उल्लेख किया है और यह वे अपनी मृत्यु से पूर्व जान पाई थीं। बहिणा बाई के गुरु को लेकर विवाद है। कुछ लोग इन्हे तुकाराम की शिष्या मानते हैं, कुछ समर्थ रामदास जी की। तुकाराम जी के द्वारा समाधि ले लेने के पश्चात् ये कुछ समय तक समर्थ रामदास जी के सम्पर्क मे रहीं, अत यह विवाद उठना स्वाभाविक है, किन्तु डा० तुलपुले ने महाराष्ट्र सारस्वत की पुरवर्णी मे लिखा है कि अब इस शका के लिये कोई स्थान नहीं रहा जाता कि बहिणाबाई वारकरी थीं या रामदासी, क्योकि स्व० पागारकर ने शिउर की पोथियो को देखकर यह निर्णय दिया है कि बहिणाबाई

---

[1] ग्रेट विमेन ऑफ इन्डिया पृ० ३५३

नाम की महाराष्ट्र मे एक ही सत कवयित्री हुई हैं और वह तुकाराम की शिष्या है।[1] बहिणाबाई की गुरु परम्परा इस प्रकार है।

---
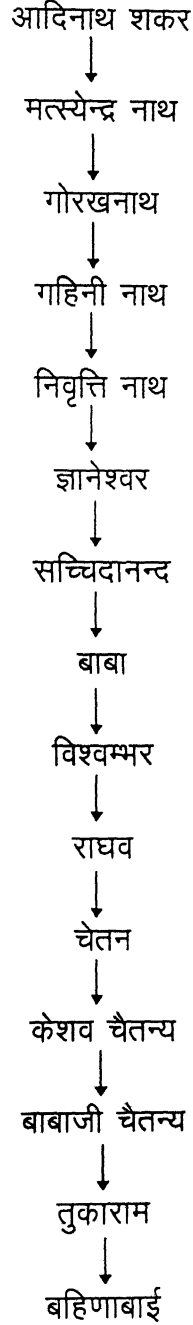
[1] हिन्दी को मराठी सतो की देन से उदघृत

बहिणा बाई की एक हिन्दी रचना ''गौलणी हिन्दी को मराठी सन्तो के देन'' मे सकलित है। हिन्दी मे उनकी यही रचना प्राप्त है-- गौलण का अर्थ है ''गोपी ' अत गौलणी'' गोपी भाव की रचना है। इसमे कारागार मे कृष्ण जन्म से लेकर उनके गोकुल गमन एव नन्द के घर आनन्दोत्सव ओर कृष्ण के गोपियों के प्रति अनुराग एव कृष्ण का ब्रम्हस्वरूप मे वर्णन है।

कारागार मे कृष्ण का जन्म होता है और देवकी भय से कातर होकर अपने पति वसुदेव से अनुनय विनय करती है कि इसे लेकर तुम कहीं अन्यत्र चले जाओ नहीं तो कस इसके भी प्राण ले लेगा।[१] वसुदेव चिन्ता करते है कि रात्रि का अधेरा है यमुना बढी हुई है घनघोर वर्षा हो रही है और हाथो -पैरो मे हथकडी-बेडी पडी है, ऐसे मे नन्द गृह जाना कैसे सभव है।[२] उसी समय बेडी टूट जाती है, पट खुल जाते है- बहिणाबाई उस ईश्वर की दयालुता का वर्णन करती है कि जिसकी कृपा से इस जगत का अस्तित्व है, उसका भला यम-पाश क्या बिगाड सकता है।[३] स्वय अविनाशी ईश्वर ही हथकडी-बेडी खोल देता है।[४]

---

[१] देवकी कहे सुन बात भतारो
सुनि के आवे कस रे -----
शल के जावाजी तुम वसुदेवा,
आयेगे कस विखार
दख विखे प्राण लेवे सबके-----
हिन्दी को मराठी सतो की देन मे ' गौलणी शीर्षक से पृ० ३४७

[२] अच्छी रात भयी है
जमुना आये मेघ तुसार
पाव मे बेरी कुलपो कैसे
जाना नद के बार, वही पृ० ३४७

[३] बेरी तब ही तूट परी है
बधन तूटो पासे रे
बहिणी कहे जीस कृपा
उस कहा करे जमपास रे
हिन्दी को मराठी सतों की देन मे गौलणी शीर्षक स उदघृत पृ० ३४७

वसुदेव कृष्ण को लेकर गोकुल चल देते है, मुसलाधार वर्षा से स्वय शेषनाग अपने फन का छत्र लगाकर रक्षा करते है।[१] यमुना का जल पर्वत के समान ऊँची-ऊँची लहरो के रूप मे बढ रहा था क्योकि यमुना जी ने श्रीकृष्ण के ''अलौकिकत्व'' को पहचान लिया था और समस्त दोष उस चरण स्पर्श से बह जायेगे इस लिये चरण स्पर्श के लिये तरगायित हो उठीं[२] जिस चरणो से नि सृत सुरसरि को भगवान शकर ने अपने मस्तक पर धारण किया है, वे चरण अब स्वय उसके पास आये है तो क्यो न उस पुण्य फल को प्राप्त किया जाय[३] सम्स्त बाधाये दूर हो जाती है जब सकट काटने वाली स्वय वसुदेव के हाथ मे है तो सकट कैसे आ सकता है।[४] वसुदेव गोकुल पहुँचते हैं दरवाजे, सॉकल स्वय खुल जाते है, यशोदा माया के वशीभूत हो निद्रामग्न है, माया का प्राकट्य होता है, माया को लेकर एव कृष्ण को यशोदा के पास छोडकर वसुदेव मथुरा पहुँचते है, एव देवकी को माया सौपते हैं।[५]

देवकी वसुदेव को भगवान अपना चतुर्भुज रूप दिखाते हैं शख,चक्र, गदा, पद्म, कौस्तुभमणि से युक्त रूप देखकर देवकी - वसुदेव अचभित हैं एव उन्हें

---

४ बेरी कुलपो आप ही खोलत
जावत है अविनाश रे, वही पृ० ३४७

१ मेघ तुसार निवारे फनिधर सेवा करे बलिहारी वही पृ० ३४८

२ जैसा परवत वैसा नीर हवो जानी के हास
पाव लागे जवु बहे जायेगे सब दोस वही पृ० ३४८

३ जिस चरन को तीरथ शकर माथा रखीया नीर।
वो चरन अब प्राप्त भये हो ये जान उधार।।
हिन्दी को मराठी सतो की देन गौलणी से पृ० ३४८

४ वसुदेवा कर आप ही मुरारी
काहे कु सकट आवे, वही पृ० ३४८

५ वसूदेवा तब बारन आवें----
-----दरवाजे रखेप्रा वही पृ० ३४८

विश्वास हो गया कि भगवान ने अवतार ले लिया है[1] और अब वे भगवान से अपना रूप बदलने को कहते है, क्योकि इससे कस उन्हे पहचान लेगा।[2] वे अचभित है कि किस जन्म का फल उदित हुआ है क्यो कि उन्होने जप, तप, दान, नहीं किया अर्चना-वदना भी नहीं जानी, तीर्थ यात्रा भी नहीं की, न तो वन मे ही नगे शरीर एव पैरो से विचरण किया, न तो पर्वत मे योगी होकर तपस्या ही की, न तो ग्रीष्म ऋतु मे पञ्चाग्नि से तप्त हुये, न शीत ऋतु मे जल मे निवास किया, तो यह किस जन्म का सचित फल है, जो भगवान ने अपने नील वर्ण स्वरूप का दर्शन मुझे कराया है।[3] अवश्य ही कोई पुण्य बेला प्रकट हुई है जो आपने मेरे उदर से जन्म लिया है।[4] इसका समाधान श्री कृष्ण अपने

---

[1] चारभुजा तुमको गोबिन्द चक्र गदा और शख
जबहि कौस्तुभ देखत तब वो मारेगा छोडो भेख
हिन्दी को मराठी सतों की देन मे सकलित गौलणी से पृ ३४९

[2] तुम रूप छोडा देवा हमसे
कस कु है दावा, वही पृ० ३४८

[3] नहीं कीये जप तप दान
नै गृही ब्रह्मन पूजन
तुम क्यो प्रगट भयो कहा जानो
अर्चन बदन नहि कहुपायो
हाय अचभा मान वही पृ० ३४९
नगाह पॉव नगा देहहि
बन-बन जानत रान
परबत माहे जोगी होकर
छोड दियो ससार
घूमरपान और पचाग्नी साधन
बैठे जल की धार
बहिनी कहे कहा जलम का
सचित प्राप्त भये इस बेला
चार भुजा हरि मुज को दिखाया
ये ही कहा घन नीला

[4] बहिनी कहे हरि प्रगट भयो है उदर मे कारण कौन
पुण्य की बेला प्रगट भई है, वोही कारण जान
हिन्दी को मराठी सतों की देन में सकलित ' गौलणी से पृ० ३४९

मुख से स्वय करते है कि बिना पुण्य के कोई सत्-चित् आनन्द स्वरूप भगवान का दर्शन नहीं प्राप्त कर सकता है।[1] जिसके घर मे ईश्वर का अवतार होता है वह अवश्य कोई पुण्य राशि होगा। उस घर मे शाति और क्षमा निवास करती है और सभी सम्पत्तियॉ दासवत् रहती है।[2] तब वसुदेव-देवकी को अपने पूर्व जन्म में किये घोर तप का स्मरण आता है, जब कठिन तपस्या के उपरान्त भगवान ने तीन जन्मो तक देवकी के उदर से जन्म लेना स्वीकार किया था।[3] उस तप के कारण ही श्री कृष्ण का जन्म हुआ है[4] तप, व्रत, दान विहीन के सम्मुख श्री कृष्ण नहीं आ सकते है और बिना श्री कृष्ण के ससर्ग के जीव की मुक्ति नहीं होती[5] जैसे फूल के बिना फल, जल के बिना अकुर, पुरुष के बिना स्त्री (यहॉ बहिनी ने स्त्री के लिये छाया शब्द का प्रयोग किया है।) सूर्य के बिना कमलिनी, सूर्य के बिना तेज अस्तित्व विहीन है, वैसे ही पूर्ण पुरुष के बिना जीव का अस्तित्व नहीं

---

१ सुनो कहत है शाम सुजानो
पुण्य बिना न हीं कोई
जिसके पल्ले जप तप दान है
पावै दरसन वोही, वही पृ० ३४९

२ बहिनी कहे जिसकु हरि आवे
के ही है पुण्य की रास
शाती क्षमा उस घर मे सोवे
सबही सपत दास, वही पृ० ३५०

३ पूरब जनम तप करत है
तब वरद मिलो बनमाली
मेरे पेट मे प्रगटो निरगुन
योही मागत बाली वही पृ० ३५०
तीन जनम मे मेरे उदर मे
आऊॅ बर दियो उस रात

४ उस तप के लीये उदर कूॅ आये जन
वोहि कृष्ण भयो है येही तप के कारन।
हिन्दी को मराठी सतो की देन मे सकलित गौलणी से पृ ३५०

५ तप व्रत दान बिन विहिन
सेवा कृष्ण न आवे सग
सग बिननहीं मुक्तिजिवाकू

है मुक्ति नहीं है वसुदेव देवकी को मुक्ति प्रदान करने के लिये श्री कृष्ण उनके घर जन्म लेते है।[1] उधर ब्रज मे जैसे ही यह समाचार फैलता है, कि श्री कृष्ण नद यशोदा के घर जन्म ले चुके है तो नर-नारियाँ मिलकर श्री हरि को देखने चल पडती है नारियाँ आरती लेकर गा रही हैं। तोरण द्वार सजाये जा रहे हैं, आनन्दोत्सव मनाये जा रहे हैं, सभी नन्द के सौभाग्य की सराहना कर रहे हैं।[2] घर-घर राग-रागिनी का गायन हो रहा है। उस मुख सौन्दर्य का वर्णन नहीं किया जा सकता है। बृजनारी स्वर्ण लुटा रही हैं। कुकुम, केसर, चदन, फूल, गुलाल की शोभा और सुगन्ध चतुर्दिक फैल रही है। इन्द्र शेष, शिव उत्सव का अवलोकन कर रहे हैं, रभा आदि देव नर्तकियाँ नृत्य-गान कर रही हैं दिव्य वाद्य बज रहे है।[3] बहिणा के अनुसार तो हरि के जन्म का क्या कारण है, क्या कहूँ

ये ही कहत श्रीरग वही पृ० ३५०

१ बहिनी कहे उस वसुदेव
देवकी कु देव मुक्ति
वयसो तपबिन प्राप्त नहीं वो साधु की सगती। वही पृ० ३५१

२ सब ब्रज नारी सुनो
हरि जनमो नद जसोदा पेट
चलवो चलय उस हरि कु देखे
मिल निकलत है घाट
नारी आरती कर ले गावत
हिन्दी को मराठी सतों की देन मे सकलित गौलणी से पृ० ३५१
अपने अपने घर तोरन
गुडिया धरत है जनमे सुत
नद को भाग कोई न जाने, वही पृ० ३५१

३ घरघर गावत राग रागिनी
ठोरे-ठोरे भयी भार
वा मुख कहा कहू
अपने मुख से आवे न जाने पारइअहजित५४
ब्रजजन नारी मगल गावत
चिरलुटावे भार --------वही पृ० ३५२
कुकुम केसर चुव्वा चदन
फूल गुलाल की शोभा
देखत इन्दर, फणींदर महेदर

उसे तो हरि ही जान सकते है, यह स्त्री (बहिणा) देह भाव से रहित हो छन्द प्रबंध सुना रही है।[1] बडे-बडे मल्लो को कटक सदृश निकाल फेकने के लिये, दैत्यो के शिरोच्छेदन के लिये, गोपियो को सनाथ करने के लिये प्राणनाथ कृष्ण का जन्म हुआ है।[2] भक्तो के विरद हेतु, धर्म की रक्षा हेतु, पाप के समूल नाश हेतु वही परब्रम्ह कृष्ण के रूप मे अवतरित हुआ है यह शास्त्रो का वचन है और सतो का अनुभूत सत्य है।[3] नन्द के प्रति भी उनका कथन है कि इन्हे सुत मत कहो, ये तो स्वय अविनाशी ब्रह्म है--[4] जिस परम ब्रह्म से साक्षात्कार की आशा मे योगी ससार का परित्याग करके वैराग्य धारण कर वन मे वास करता है, पत्तो का भक्षण करता है, गगा मे स्नान करने जाता है, धरती पर शयन करता है एव

गावत है सब रभा
नाद न भेरी ताल ही
जब झट नाद ने अबर गाजे
नाना सुर बजावत
छेदे ढोल ढमामे बाजे

1 बहिनी कहे हरि जन्म को कहा कहूँ हरि जाने
छन्द प्रबन्ध सुनावत नारी वही पृ० ३५२
देह भाव नहि जने

2 कटक को मल्ल मर्द
दौतन को सिर छेद
सुत तेरा नद कृष्ण
तोही जानी है, गोपिन को प्राननाथ वही पृ० ३५२

3 भक्तन कू करे सनाथ
शास्तर की ऐसी बात
सत जानी है
धरम का रक्षन आया
पाप कू सब डार दिया
वो ही सुत नद भया
बात ये सत्य जानी है, वही पृ० ३५२

4 सुतमत कहो नद, ब्रम्ह सो ये ही गोबिन्द
बहिनी का भार प्रबध, सत्य सुदाईये। वही पृ० ३५२

जप-तप करता है।[1] जिसकी प्राप्ति की आशा मे सिर मूँछ मुडाता है जल मे निवास करता है वही गोबिन्द तेरे घर मे प्रकट हूये है।

किशोर कृष्ण यमुना के तट पर गाय चराते है। हास्य-विनोद करते है, गीत गाते है, नृत्य करते है। ऐसे श्री कृष्ण से मिलने एक गोपिका आती है। यहॉ गोपिका के माध्यम से बहिणाबाई श्री कृष्ण के प्रति अपना अनुराग व्यक्त करती है। पीत वस्त्र पहने हुये कानो मे कुण्डल, सिर पर मयूर पिच्छ धारण किये श्री कृष्ण के मोहक स्वरूप पर उक्त गोपिका आसक्त है। मन्द-मन्द स्वरो मे मधुर गीत श्री कृष्ण गा रहे हैं, ऐसी स्थिति मे बहिणा को समस्त बाह्यजगत की सुधि भूल गई, उनका मन तो अविनाशी ईश्वर से लग गया है।[3]

---

[1] जीस आस जोगी जग
जीस आस छोड भाग
जीस आस ले बैराग बनवास जात है
जीस आसपानखावे
जिस आस गग जावे
जीस आस धरत सोवे
जप तप ही करतु है।, ' हिन्दी को मराठी सतो की देन मे सकलित गौलणी से पृ० ३५३

[2] जीस आस शिर मुडे
जीस आस मुच्छ खडे
जीस आस होत रडे
जलमे वसतु है
वो ही सत्य जान नन्द
प्रगट भया है गोविन्द
पुण्य ही तेरा अगाध
बहिणी ये कहतु है, वही पृ० ३५३

[3] जमुना के तट धेनु चरावत
गावत है गोपाल री,
गीत प्रबध हास्य विनोद
नाचत है श्री हरी
मै येरी देखत भय
नदलाल कासे पीत वसन है झलाल
कानों में कुडल देती ढाल

श्री कृष्ण भक्त वत्सल हैं, भक्त भय भजन है, पातक गञ्जन है आर्त भक्तो की पुकार सुनने वाले है, उनके इसी विरद का वर्णन रावण-विभीषण, प्रहलाद, हिरण्याकश्यप, गज-ग्राह के माध्यम से किया है, जिसमे रावण, हिरण्याकश्यप और ग्राह की मुक्ति हो जाती है और विभीषण, प्रहलाद एव गज को उनकी कृपा प्राप्त होती है। मीरा के लिये तो विष का प्याला ही अमृत का कर दिया एव सुदामा की कुटिया सोने की नगरी में परिणत कर दी।' कहीं-कहीं बहिणाबाई पूरी यौगिक शब्दावली का प्रयोग करती हैं, स्वय को योगी, साधु, सत कहती हैं और ग्रहस्थ जीवन के बारे में अनभिज्ञता प्रकट करती हैं—

सिर पर मोर पिखा मोर दिखा नदलाल,
छन्द धीमा-धीमा सुनावत है
हरि बध गयो मेरो प्रान
बहिना कहे सब भूल गये
मेरा हरि सुलगा है मन, वही पृ० ३५३

' रावन मार के विभीषण लका
यह पाई राज्य कमाई
राक्षस कू अमराई दीयो
ये वैसे राम नवाई
पहरातों विश्व समिदर बुरना
परवत लोट दिया है
आगी जलावे पिता उसका
सत्व से राम रखाने
पानी माहे गजकू छोडे
सावज मार न भाई
उसको रन्यों कुटनी मुक्तो
करता राम सो वोही
मिराको बिख अमृत किया
फत्तर कू दूध पिलाया
*   *   *
ब्रह्मन सुदामा सून्नों की नगरी
वैसे करे जगदीश हिन्दी की मराठी सतों की देन से पृ० ३५५

जटा न कथा सिगी न शख

अलख भेक हमारा बाबू

झोली न पत्र कान मे मुद्रा

गगन पर देख तारा[1]

बाबा हमतो निरजन वासी

साधू सत योगी जान लो हम क्या जाने घरवासी

माता न पिता बन्धु न भगिनी

गव गोत ओ सब न्यारा

काया न माया रूप न रेखा

उलटा पथ हमारा बाबा

धोती न पोथी जात न कुल

सहजी - सहजी भेक पाया

अनुभवी पत्रि सी सिद्ध की खादी

उन नी ध्यान लगाया

बोध बल पर बैठा भाई

देखत है तिन्ह लोक

उर्ध्व नयन की उलटी पाती

जहॉ प्रकाश आनन्द कोटी[2]

ससार की निस्सारता, क्षणभगुरता का वर्णन करती हुई वे कहती हैं कि यह दुनिया दो दिन की है, इसे व्यर्थ नहीं गॅवाना चाहिये, ईश्वर का नाम लेकर

---

[1] हिन्दी को मराठी सतो की देन मे सकलित गौलणी से

[2] हिन्दी को मराठी सतों की देन में सकलित गौलणी से

ध्यान-धारणा करनी चाहिये, क्योकि एक बार शरीर छूट जाने पर यहॉ दुबारा आना नहीं है। यहॉ पर बहिणाबाई पुनर्जन्म के सिद्धान्त का एक तरह से खण्डन करती है। भारतीय मनीषा मे तो पुनर्जन्म एव कर्मवाद का सिद्धान्त बहुत गहरे पैठा है एव इस तथ्य का प्रतिपादन है कि अपने शुभाशुभ कर्मों को भोगने के लिये जीव पुन जन्म लेता है, लेकिन यहॉ बहिणाबाई जीव को शीघ्रता करने को कहती है एव उसका (अल्ला) का जिक्र (स्मरण) करने को कहती हैं। इस पद मे बहिणाबाई उस परमतत्व के लिये अल्ला एव कृष्ण दो शब्दों का प्रयोग करती है यहॉ एक तरह से सगुण एव निर्गुण की ही एकता नहीं अपितु हिन्दू एव इस्लाम इन दो धर्म साधनाओ का भी समन्वय है।

दो दिन की दुनीया ऐ बाबा

दो दिन की दुनीया।

ले अल्ला का नाम कूल धरो ध्यान

बदे न होना तुम

गाव रतन से ही सार

नई आवेगा दूज बार

वेगी करो हे फिकीर

करो अल्ला की जिकीर

करो अल्ला की फिकीर

तव मिलेगा गामील पीर

बहिणी कहे तूजे पुकार

कृष्ण नाम तमे हुसियार[1]

---

[1] हिन्दी को मराठी सतों की देन मे सकलित गौलिणी से पृ० ३५६ ३५७

एक अन्य पद मे भी उसी परमतत्व (साहेब) के प्रति निष्ठा एव भक्ति का उल्लेख करती हुई कहती है कि तू ही एक मेरा सच्चा साहब है, मुझे किसी चीज की फिक्र नहीं, महल मुल्क की भी परवाह नहीं, अब तो मैने गोबिन्द की चाकरी पकड ली है, हे साहब! आपका जिक्र करते ही माया का पर्दा दूर हो गया और सारी वास्तविकता सामने आ गई।

सच्चा साहेब तू येक मेरा

काहे मुजे फिकीर

महाल मुलुख परवा नहीं

क्या करू पील पथीर

गोबिन्द चाकरी पकरी

पकरी पकरी तेरी

साहेब तेरा जिकीर करते

माया परदा हुवा दूर

चारो दील भाई पीछे रहते है

बदा हुजूर

मेरा भी पन सट कर

साहेब पकरे तेरे पाव

बहिनी कहे तुमसे गोबिन्द

तेरे पर बलि जाय[१]

---

[१] हिन्दी को मराठी सतो की देन म सकलित गोलणी स पृ० ३५४

ससार अनित्य है, अनृत है, निन्दक जनो से भरा है। ससार की नश्वरता एव असत्यता को बहिणाबाई अनेक उदाहरणो से व्यक्त करती हुई कहती हैं--

ये अजब बात सुनाई भाई

गरूड को पख हिरावे कागा

लक्ष्मी चरन चुराई

ये सूरज को बींब अधोर

सोवे चदर कू आग जलावे

राहू के गिहो भोगी कहा

अमृत ले मर जावे

कुबेर सोवे धन के आस

हनुमान जोरू मॅगावे

वैसे सब ही झुटा है

निन्दा की बात सुनावे

समीदर तान्हो पीयत कैसो

साधु मॉगत दान[1]

काग गरुड के पख एव लक्ष्मी के चरण चुराये सूर्य का बिम्ब प्रकाश के स्थान पर अन्धकार फैलाये, चन्द्रमा द्वारा शीतलता फैलाने के स्थान पर स्वय अग्नि उसे जलाये, राहु के सदृश भोगी कौन है, जो अमृत पिये और कट जाये,

---

[1] वही पृ० ३५१

कुबेर धन की आशा मे सलग्न हो, हनुमान स्त्री की कामना करे, प्यासा समुद्र पी जाये और साधु दान मॉगे, जैसे यह सारी बाते असम्भव हैं वैसे ही ये ससार एव ससारी लोग झूठे है। ससारी जनो की निन्दा के प्रति जो आसक्ति होती है उसे अनेक गूढ उदाहरणो द्वारा बहिणाबाई ने समझाया है, जो इनके गहन "शास्त्रीय अध्ययन" का परिचायक है। वैसे यह पद कबीर द्वारा रचित उलटबासियो की तरह का है जहॉ कबीर अपनी उलट बासियो मे यौगिक क्रियाओ, अनुभवो एव अबोधगम्य क्रिया-व्यापारो को दुरूह शब्दावली मे व्यक्त करते है, वहॉ बहिणाबाई सरल शब्दों के माध्यम से ससार की असत्यता ज्ञापित करती है। ससार की वास्तविकता जान लेने के पश्चात् इस दृश्य जगत के उद्धरणशील जिज्ञासु जनो को केवल एक सत्य का दिग्दर्शन कराती हैं, कि मृत्यु अवश्यम्भावी है, जिसका जन्म हुआ है वह अवश्य मरेगा ये दोनों सहोदर के सदृश है जन्म के साथ ही मृत्यु का भी निश्चय हो जाता है,[1] यहॉ पर बहिणाबाई "श्री मद् भगवद्गीता में भगवान श्री कृष्ण के उद्घोष---

जातस्य हि ध्रवोमृत्यु ध्रुव जन्म मृतस्य च।

तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्व शोचितुमर्हसि ।।[2]

से प्रभावित जान पडती हैं। जीवन-मृत्यु के शाश्वत सबधों को स्वीकार कर लेने पर मृत्यु का भय नहीं रहा जाता है,[3] ज्ञानी तो आत्मा की अमरता को

---

[1] काहे डारावत मोहे बाबा उपजे सो मर जाये भाई।
मरन धरन सा कोई बाबा जनम मरन ये दोनो भाई मोकले तन के साथ
हिन्दी को मराठी सतों की देन मे सकलित गौलणी से पृ० ३५४

[2] श्री मद्भगवद्गीता २ / २७

[3] मरन सो हक हैरे बाबा

जानता है और वह मृत्यु को अपने से दूर कर देता है, क्योंकि उसे उस अव्यक्त, अविनाशी का पता मालूम होजाता है एव वहउसी पर अपने योग क्षेम का भार डाल देता है।

''ज्ञानी होवे तो समज लेवे

मरन करे आपे दूर

तारन हार तो न्यारा है रे

हकीम वो रहिमान'[1]

यहॉ पर भी बहिणाबाई कबीर के दर्शन से प्रभावित दिखाई देती है जहॉ कबीर कहते है--

हम न मरै मरिहै ससारा।

हमकू मिला जियावन हारा।।

इतना सब ज्ञात होने पर भी स्वय को सतो की दासी कहती हैं, एव अपने आराध्य से भाव भक्ति की भिक्षा मॉगती हैं।--

भाव भगत मागत भिक्षा

तेरा मोक्ष कीदर रहा दिखाई

बहिनी कहे मैं दासी सतन की

तेरे पर बलि जावे।[2]

मरन सो हक है-- गौलणी पृ० ३५४

काहे डरावत मोहे बाबा

[1] वही पृ० ३५४

[2] हिन्दी को मराठी सतों की देन में सकलित 'गौलाणी से पृ० ३५६

भगवान के कूर्म, नरसिह, परशुराम, वामन, मत्स्य एव वराह रूपो मे अवतार का भी उल्लेख वे करती है[1] एव यह भी निर्देश करती हैं कि स्वय निर्गुण ब्रह्म ही श्री कृष्ण के रूप मे अवतरित हुये हैं, केवल वे ही सत्य है[2]

बहिणाबाई के आराध्य देव श्री कृष्ण हैं। वही गोबिन्द हैं,[3] पूरन निरजन[4] कृष्ण है[5], शाम है,[6] गोपाल है,[7] वनमाली हैं,[8] निरगुन है,[9] अल्ला हैं,[10] हकीम और[11] श्री रग है[12] नन्द लाल,[13] ब्रह्मस्वरूप हैं।[14]

बहिणाबाई अपने आराध्य देव कृष्ण को ही अल्लाह, हकीम, रहमान भी कहती हैं, इस तरह वे एकेश्वरवाद की प्रतिष्ठा भी करती हैं कि परमतत्व एक

---

१ कूर्म नरसिव्ह रूप
फरश वामन रूप
मत्स्य ही वराह रूप
योही कृष्ण सत्य जी, वही पृ० ३५८

२ योही --- ब्रह्म निर्गुण वाको नाम कृष्ण जी वही ३५८

३ बहिनी कहे तुमसे गोबिन्द, वही ३५४

४ जमुना के तट आयके देखे पूरन निरजनों, वही ३४८

५ जय-जय कृष्ण कृपाला 'हिन्दी को मराठी सतों की देन मे सकलित 'गौलणी से पृ०-३५७

६ कहत है शाम तुमारोदरशन वाक्षित
रात दिन सारी, वही पृ० ३४८

७ जमुना के तट धेनु चरावत
गावत हैं गोपाल री, वही पृ० ३५३

८ तब वरद मिलो वनमाली, वही पृ० ३५०

९ मेरे पेट में प्रगटों निरगुन, वही पृ० ३५०

१० करो अल्ला की फिकीर, वही पृ० ३५७

११ हकीम वो रहिमान, वही पृ० ३५४

१२ ये ही कहत श्री रग, वही पृ० ३५०

१३ सिर पर मोर पिता मोर दिखा नदलाल ,वही पृ० ३५३

१४ सुत मत कहो नन्द ब्रम्ह सो येही गोबिन्द, वही पृ० ३५२

ही है चाहे उसे किसी भी नाम से पुकारा जाये। साथ ही ''निरगुन' एव ' पूरन ' निरञ्जनो'' कहकर तुलसीदास के मत की प्रतिष्ठा भी करती हैं।

अगुन अरूप अलख आज होई।

भगति प्रेम वस सगुन सो होई।।[१]

गौलणी मे ही अत मे उन्होने ब्रह्म निर्गुणहिवाको नाथ कृष्ण जी [२] कहा है। अत उनके आराध्य देव सगुण - निर्गुण गोबिन्द - अल्लाह, नन्दलाल - हकीम - रहमान सब है, उनमे कोई भेद नहीं है। यहॉ पर शकराचार्य और बहिणा का मत एक सा है, जहॉ शकराचार्य

''सर्वदेव नमस्कार केशव प्रतिगच्छति '' कहते हैं वहीं बहिणा बाई--

सुतमत कहो नद, ब्रह्म सो ये ही गोबिन्द

और

''ब्रम्ह निर्गुणहि वाको नाम कृष्ण जी

स्वरूप धाम वैकुण्ठ को जाग जी

कूर्म नारसिव्ह रूप, फरश वामन रूप

मत्स्य ही वराहरूप, यो ही कृष्णसत्य जी''

सभी रूपो में उन्हीं की दिग्दर्शन करती है।

---

१ रामचरित मानस

२ हिन्दी को मराठी सतों की देन में गौलणी से पृ० ३५८

''गौलणी'' हिन्दी की रचना है, तथापि क्षेत्रीय प्रभाव के कारण मराठी पुट आ गया है -- उसकू, भतारो, हातो, जसवदा, शल के, डखबिखे, कुलपों, तूट, जीस, पालख, जानीये, रखीया, जिसकू, तुमकू नगाह, मुज, ताहा, बिज, शाती, बिहिन, जिवाकू, सगती, बींव, हलदिर, मय, मोकले, फत्तर, कीदर, जाण, पहरादो, मिरा, फरश, मनुख आदि पर यह प्रभाव परिलक्षित किया जा सकता है। तुसार, शास्तर चाकरी, पकरी आदि तद्भव रूप भी हैं। इसके अतिरिक्त फिकीर, समज, जिकीर, महाल, मुलुख, साहेब, दुवा, बदा, हुजूर, गामील, पीर आदि अरबी, फारसी के भी शब्द हैं--

पूरी रचना मे शान्त रस व्याप्त है। एक पद मे अद्भुत रस एव कहीं-कहीं वात्सल्य रस की भी झलक मिलती है।

छन्दो मे मात्राओं का ध्यान नहीं रखा गया है, अलकारों पर भी ध्यान नहीं दिखा गया है। वस्तुत भावात्मकता की उच्च्च भूमि पर रचित इस रचना में कलात्मकता की खोज करना उस भाव दशा के साथ अन्याय है, जिसमें बहिणा बाई ने उक्त रचना की है।

निष्कर्षत हम कह सकते हैं कि बहिणाबाई न केवल वारकरी सम्प्रदाय की, अपितु सत परम्परा मे महत्वपूर्ण स्थान की अधिकरिणी हैं।

(५) देवी रूप भवानी

देवी रूप भवानी कश्मीर प्रान्त की सत कवयित्री हैं। कश्मीरी सत कवयित्री लालदेद की परम्परा मे आने वाली वे दैवीय गुणो से सम्पन्न थीं। कश्मीरी पण्डित माधव जू दर के यहॉ १६२१ ई० मे ज्येष्ठ पूर्णिमा के दिन देवी रूप भवानी का जन्म हुआ। दैवीय गुणों से सम्पन्न ये दुर्गा था सारिका (कश्मीर मे दुर्गा इस नाम से प्रसिद्ध हैं) का अवतार कही जाती हैं। माधव जू धार्मिक एव दार्शनिक तत्वो से अनुप्राणित थे अत उनका अधिकास समय इन्हीं कार्यो मे व्यतीत होता था । वे ईश्वर की उपासना मॉ दुर्गा के रूप में करते थे ।

१६२१ की ज्येष्ठ पूर्णिमा को प्रात वेला में उनके यहॉ एक कन्या का जन्म हुआ जिसका नाम उन्होने "अलक्ष्येश्वरी" रखा जिसका अर्थ है अगोचर एव अवर्णननीय, जी देवी के निराकार, अद्वैत स्वरूप का परिचायक है। अलक्ष्येश्वरी का बचपन आध्यात्मिकता के परिवेश में बीता अत उनके दैवीय गुण अनुकूल परिस्थितियों में शीघ्र ही प्रस्फुटित होने लगे। उनके पिता माधव धू स्वय उनके गुरु थे।

अलक्ष्येश्वरी का विवाह निकट के ही सप्रू परिवार में हुआ। उनके पति का नाम हीरानन्द सप्रू था। उनका वैवाहिक जीवन सुखी नहीं था। उनके पति और सास सोपकुञ्ज का व्यवहार उनके प्रतिकूल था, अत उनका जीवन कष्टों से भर गया ।

अलक्ष्येश्वरी मध्यरात्रि मे हरपर्वत पर मॉ सारिका के पवित्र पीठ पर साधना के लिये जाती थीं। उनकी सास सोप कुञ्ज ने अलक्ष्येश्वरी पर मध्य रात्रि मे घर से बाहर जाने का दोषारोपण करके पति को पत्नी के चरित्र पर शका करने को विपश कर दिया। हीरानन्द ने एक रात्रि उसका पीछा किया। अलक्ष्येश्वरी ने पवित्र पीठ पर पहुॅच कर हीरानन्द से भी साधना के लिये आग्रह किया लेकिन अपनी सीमा मे सकुचित पत्नी के दैवीय गुणो से अनभिज्ञ हीरानन्द घर लौट आया।

दूसरी घटना भी उनके ससुराल से ही सबधित है, जिससे हम उनके दैवीय गुणो का परिचय प्राप्त करते है। किसी त्योहार के अवसर पर माधव जी ने अपनी पुत्री के यहॉ खीर से भरा पात्र भेजा। अलक्ष्येरवरी की सास ने खीर को देरव्रकर व्यग्य से कहा "मै इस छोटे से पात्र की खीर का क्या करूॅ मेरे इतने सारे सबधी है, यह उनके लिये पर्याप्त नहीं होगी।" अलक्ष्येश्वरी ने उत्तर दिया आप जितने लोगो को देना चाहे खीर दे, लेकिन पात्र के अन्दर न देखे। सोप कुञ्ज ने पात्र से खीर उडेलना शुरू किया और जितने लोगों को वह जानती थी सबको दी, लेकिन खीर समाप्त नहीं हुई। अत मे क्रोध से भरी सोपकुञ्ज ने पात्र में झाक कर देखा तो पात्र में केवल कुछ अन्न कणों को पाया।

दूसरे दिन अलक्ष्येश्वरी ने पात्र को साफ करके वितस्ता नदी की लहरो मे यह कहते हुये फेक दिया, "मेरे पिता दिद्दमारघाट पर सध्या कर रहे है, जाओ और वहॉ रूक जाओ। पात्र वितस्ता नदी की और लुढकते हुये गया और माधव जू जहॉ सध्या कर रहे थे वहॉ रुक गया।

इस प्रकार की विलक्षण घटनाओ को अनेक बार देखते हुये भी सोपकुञ्ज ने अलक्ष्येश्वरी के प्रति अपना व्यवहार नहीं बदला। हीरानद भी मूर्ख और अज्ञानी बना रहा अत मे जब वहॉ रहना दुष्कर हो गया तब अलक्ष्येश्वरी ने हमेशा के लिये पति का घर छोड दिया। ऐसा कहा जाता है कि सप्रू परिवार का वैभव इसके बाद शीघ्रता से नष्ट हो गया।

अलक्ष्येश्वरी ने अनन्त परमेश्वर की खोज के लिये पिता का घर भी छोड दिया। निर्जन एकान्त स्थान मे वे साधना में तल्लीन होना चाहती थी। उन्होने श्रीनगर के उत्तर पूर्व के एक स्थान को चुना जो अपने प्राचीन नाम ज्येष्ठ रुद्र के नाम से जाना जाता है। वहॉ पर उन्होंने साढे बारह वर्ष तक तपस्या की। जब लोग उनकी तेजस्विता से आकृष्ट हो भारी सख्या में वहॉ पहुँचने लगे तो उन्होने उसे भी छोड दिया। और उत्तर कश्मीर के एक गॉव मणिगॉव की ओर आई। वहीं निर्जन घने जगल से युक्त पहाडी पर झोपडी बनाकर तपस्या में रत हो गई। यहॉ पर भी उन्होंने साढे बारह वर्ष तक तपस्या की। इस प्रकार उन्होंने निर्जन स्थान की खोज मे अनेक स्थानो पर अपना निवास बनाया और छोडा। शाहकोल नदी के तट पर वे बहुत दिनो तक रही ओर तत्पश्चात "वासकोरा" में जहॉ नाग वासुकि ने तपस्या की थी, और भगवान शिव से उनके गले का हार बनने का वरदान पाया था, अपना निवास बनाया।

देवी रूप भवानी के जीवन वृत्त के साथ अनेक चमत्कारिक आख्यान जुडे है। जैसे एक बालक जो जन्मान्ध था को उनकी कृपा से दृष्टि प्राप्त हुई और उनके भाई लाल जू का पुत्र जो कि निरक्षर था, को उन्होंने कलम पकडाई और वह शिक्षित व्यक्ति की तरह लिखने लगा।

रूप ही है, यह निस्सीम है, सर्वव्यापी है। न तो यह ब्रह्माण्ड की ही प्रकृति है न केवल एक व्यक्ति की आत्मा मे ही इसका स्वरूप सीमित है। आत्मतत्व शक्ति की एक प्रकृति है, मै जो आत्म रूप हूँ वह परब्रह्म के साथ मिल कर एकाकार हो गया है।[1] आत्मा न पुरुष है न पौरुष, सभी तर्को और विमर्शो से परे है। जाति, वर्ण से परे वर्णातीत है। वह शान्त स्वरूप है और ध्यानावस्था मे स्वय के अन्तर्मन मे ही उसे प्राप्त किया जा सकता है। न वह सूक्ष्म है न उसका कोई विस्तार ही है, उसका कोई कार्य व्यापार भी नहीं है। वह प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर स्थित है। आत्मस्वरूप मैं परब्रह्म मे लयमान हो गया हूँ और वह मैं ही परब्रह्म हूँ।[2] यह परब्रह्म होने का स्वीकार ही उनकी उस अद्वैतावस्था का परिचायक है, जिसमे आत्मतत्व-ब्रह्मतत्व मे समाहित हो जाता है। वे आगे लिखती है, न वह स्थावर है न जगम है, न चारो वर्णों (ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र) मे सीमित है। वह विश्व के चराचर प्राणियो तक सीमित नहीं है, समस्त सृष्टि रचना का परम कारण है। न वह सत्य से न असत्य से परे है फिर भी दोनो मे समान रूप से उपस्थित है। सूक्ष्म समाधि मे आत्मा का साक्षात्कार होता है और यही आत्मतत्व परब्रह्म है।[3] आत्मा न योग मे है न

---

[1] बूयो न बीजम् तूयो न तीजम।
वायो न आकाश अथाह सर्वसर्वम।।
नहि ब्रह्माण्ड नच खात्म आत्मम।
शक्ति स्वरूपम् पर ब्रह्म सोऽहम।।
कलकत्ता से प्रकाशित अग्रेजी पत्रिका प्रबुद्ध भारत के जुलाई ९६ अक में श्रीमती अपर्णा दर के लेख "टेन वर्सेस ऑन द डिवाइन इक्सपीरियेन्स ऑफ देवी रूप भवानी" से उद्घृत पृ० ४२९

[2] पुरुषो न पुरुषात् विमर्शो न मर्शात।
वर्नातीतो शान्त अन्दर् आकाशाम्।।
सूक्ष्मो न विस्तार न पर व्यापारम।
सु अन्तदारम् पर ब्रह्म सोऽह्म्।। प्रबुद्धभारत जुलाई ९६ पृ० ४२९

[3] थावर न जगम नह् चतुर्वर्णम्
जग न चराचर तथ् परमकारम्

योगान्तर मे और न सन्यास मे ही उसका निवास है। तीनो अवस्थाओ (जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति) के पश्चात तुरीयावस्था मे आत्म स्वरूप का ज्ञान होता है। आत्मा प्रम्सिद्ध भी है। आत्मस्वरूप कल्पनातीत है। वह सृष्टि का परम कारण है। वह स्थिर है, वह केवल एक है। मैं वही आत्म तत्व हूॅ जो परब्रह्म में लयमान हो गई हूॅ। आगे आत्मा का स्वरूप निर्धारण करती हुई वे उसे सभी सासारिक सबधो से परे मानती है। वे कहती है–"आत्मा के न माता है न पिता है न भाई है न बधु बाधव। वेदो मे आत्मा को एक और अकेला कहा गया है। मैं वहीं आत्मतत्व हूॅ। न कोई उसका गुरु है न शिष्य है, न किसी मन्त्र से वह जाना जाता है। न उसकी कोई लीला ही है ऐसी यह अद्वितीय आत्मा अकेली है, मैं वहीं आत्मतत्व हूॅ जो परब्रह्म मे लयमान हो गई हूॅ।[2] आत्मा सभी विकारो, सभी व्याधियों ओर सभी स्थितियो से परे है इस सत्य का उद्घाटन करती हुई देवी रूप भवानी कहती है–

मोहो न व्यादि नच वैराग्यम्
नच राग द्वीषम् निवेर शान्ति
सोपुन् न जागथ् सु शोद बोदम्
सूख्मो स्वयभू पर ब्रह्म सोऽह्म्।।[3]

सथ् न असथ अछिन्नदारम
सूख्मो समाधि पर ब्रह्म सोऽह्म्।। प्रबुद्ध भारत के जुलाई ९६ अक से पृ० ४३०

[1] योगु न योगान्तर सन्यास वर्णम्।
तुरीया अतीता तथ् प्रसिद्धोहम।
अचिन्त्य रूप तथा परम कारम्।
थ्यर केवलोऽहम परब्रह्म सोऽह्म।। प्रबुद्ध भारत के जुलाई ९६ अक से पृ० ४३१

[2] माता न पिता ब्राता न बन्दु।
वार्ता स वेदम् एको केवलोऽह्म।
गोरू न चेला मत्रों न लीला।
सु युस् अकेला परब्रह्म सोऽह्म्।। प्रबुद्ध भारत के जुलाई ९६ अक से पृ० ४३१

[3] अग्रेजी पत्रिका प्रबुद्ध भारत के अगस्त ९६ अक से उद्घृत पृ० ४८०

अर्थात् आत्मा राग-द्वेष, मोह, माया इत्यादि व्याधियो से मुक्त है, वह वैराग्य से भी मुक्त है। उसका कोई वैरी नहीं है। वह शान्त स्वरूप है, वह न सोती है न जागती है। वह शुद्धबुद्ध स्वरूप है, वह सूक्ष्म है, स्वयभू है, मैं वहीं आत्मा हूँ जो परब्रह्म में लीन हो गई है। आत्मा न वृक्ष रूप है न बीज रूप है, न उसका चतुर्भुजाकार स्वरूप ही है। आत्मा तीनो विश्व (आकाश-पाताल-पृथ्वी) मे व्याप्त है, चर-अचर प्राणियो मे व्याप्त है। इस तरह आत्मा के अनन्त रूप है। आत्मा का कोई नाम भी नहीं है और उसके सहस्त्रो नाम भी हैं। आत्मा का कोई आधार भी नहीं है, वही शुद्ध स्वरूप परब्रह्म रूप आत्मा मैं हूँ।[1] आत्मा न सीधी है न टेढी है, न वह अविद्या है न विद्या है। ऋद्धि सिद्धि से भी परे है। उसका आकार आकाश की तरह सर्वव्यापी है। आत्मा न तो आकाश में ही और न पृथ्वी मे ही बीज रूप मे बोई जा सकती है। न इसे राज योग से ही जाना जा सकता है। आत्मा न सालब है न निरालब है, मैं वही परब्रह्म रूपी आत्मतत्व हूँ।[2] आत्मा न रूप है, न रस है, न स्पर्श है, न गन्ध है, और न शरीर ही है। न द्वैत भाव मे है, न किसी का दास ही है, 'अह्म' रूप मे वह केवल एक ही है। आत्मा के बिना न जीवन है, और न जीव ही, न वार्त्ता है न वार्त्ताकार ही, वह सभी कार्यों का कर्त्ता है, सभी कार्यों का नियन्ता है, वही कर्त्ता रूपी ओंकार स्वरूप परब्रह्म

---

[1] पादप न बीजम न चतुर्बुजाकारम।
सु त्रे-जग चराचर अनन्तरूपम्।
अनाम सहस्रनाम किन्तु निरादारम्।
शुद्ध स्वरूप तथ पर ब्रह्म सोऽह्म्।। प्रबुद्ध भारत के आगस्त ९६ अक से उद्घृत पृ० ४८०

[2] स्यदू न कजू अविद्या न विद्या
रेद्धी न स्यद्धी न सुआकाश रूपम्
बोवा काश वोलगिथ् नच राज यूगम
न सालब नैरालब परब्रह्म सोऽह्म्।। प्रबुद्ध भारत के अगस्त ९६ अक से उदघृत पृ० ४८०

मैं हूँ।[1] ब्रहम का साक्षात्कार होना एक आनन्दमय अवस्था है और इस आनन्दावस्था को आत्मतत्व कैसे प्राप्त करता है इस तथ्य का उद्घाटन करती हुई देवी रूप भवानी का कथन है कि "इडा, पिगला नाडियॉ आत्मस्वरूप को नहीं पहचान पाती जब ब्रह्म नाडी (सुषुम्ना) जाग्रत होती है तभी ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। मै स्वय वह उपाय हूँ जिससे सुषुम्ना जाग्रत होती है। आत्मा अनाहत है, विकाररहित (अनामय) है, तुरीयावस्था मे इसका साक्षात्कार होता है, यही आनन्दावस्था है और मैं वही आनन्दस्वरूप आत्मतत्व हूँ।[2] आत्मतत्व की विवेचना के पश्चात अब वे ईश तत्व (ब्रह्म) के स्वरूप का विचार करती हैं। उनके अनुसार "ईश्वर ब्रह्माण्ड का नियन्ता है और हमेशा अपने सहज स्वरूप मे स्थित रहता है। सभी दिशाओं, सभी स्थानों मे व्याप्त है। सबसे निकटस्थ सुहृद है, गभीर चितक है। वह असीम शक्तिमत्ता से युक्त है, स्वभाव से अकेला है। वह स्वय ही उत्पन्न होने वाला है, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मे उसका स्वरूप व्याप्त है। ऐसे ईश्वर को साधक अपने अन्तर्मन मे ही देख सकता है और तत्पश्चात मुक्ति के रहस्य को जान लेता है और परमगति को प्राप्त हो जाता है।[3] वह ईश्वर (ब्रह्म) सर्वरूपमय है, सर्वव्यापी है। यही सर्वरूपता और सर्वव्यापकता का

---

[1] रूप न रस न स्पर्श गन्द देहू।
दुयी न दयस् छु केवलोऽहम।
जीवो न जीवात् वार्ता न वार्तात्
कर्त्ता सु ओकार पर ब्रहम सोऽह्म्।। वहीं पृ० ४८१

[2] इडा न पिगला सच ब्रह्मनाडी।
स्वय सु उपाया सुषुम्ना अहमेव।
अनाहत अनामय सुतोरियावस्था।
आनन्द पद सु पर ब्रह्म सोऽह्म्।। वहीं पृ० ४८१

[3] सहज सर्वत्र व्यापी स्वाह्लेथ विचारेयम्।
बाहुबल स्वभाव ईकान्त स्वयबू परमाकारी
अन्तरमोखी द्रेष्टी नेरवान रहस्य तती परमगती। अग्रेजी पत्रिका प्रबुद्ध भारत के मई ९६ अक मे श्रीमती अपर्णादर के लेख देवी रूप भवानीस टेनवर्सेस आन निर्वाण" से उद्घृत पृ० ३२७

ज्ञान मुक्ति की परमगति प्रदान करने वाला है। वह जड चेतन सबमे एक समान रूप से गतिमान है। वह सर्वशक्ति मान सत्ता सभी प्राणियो की भूख और प्यास को तृप्त करती है। वह जड चेतन सभी को पूर्णता प्रदान करता है। वह समर्थ स्वामी यह निश्चित करता है कि आत्मा कब आत्मसाक्षात्कार करे।[१] उपनिषदो मे इस अविनाशी कल्पतरू (ईश्वर) और उसके दैवी फल की विवेचना की गई है। वास्तविक रूप मे वह सद्गुरु है जो योगी रूप धारण करके ईश्वर के साथ एकात्मकता का उपदेश देता है। वह सृष्टि का आदि कारण है। लेकिन अशरीरी है। वह तेजस्वी ईश्वर असख्य वाणियो वाला है। (प्रत्येक जीव की वाणी उसकी वाणी है और सबकी वाणी भिन्न है इस प्रकार वह अनेक अनेक वाणियो वाला है।) वह सुशील है, सुदर्शन है, निरायु है, अग्रायु है (वह सृष्टि के पूर्व से अस्तित्ववान है अत अग्रायु है।) सैकडों सूर्यों से अधिक दैदीप्यमान है, प्रसन्न मना है। ऐसे ईश्वर के साधक अन्तर्मुखी होकर अन्तर्मन में देख सकता है, और मुक्ति के रहस्य को जान सकता है।[२]

ईश्वर के स्वरूप का ज्ञान पवित्र नेत्रों से ही हो सकता है, इसीलिये वे उसे ध्यानस्थ होकर पवित्र नेत्रो से स्वय के अन्तर्मन मे ही देखने को कहती है, और ऐसा द्रष्टा आध्यात्मिक धन प्राप्त करता है। असख्य कार्यों को करने योग्य

---

१ तथ रूपमयी तथ् परमगती सर्वथानी प्रवाही
गतिगटपूरनी छद्वा देह त्रेपितम्
समरथ स्वामी परमारथ विदानम
अन्तरमोखी द्रेष्टी नेरवान् रहस्य तती परमगती, वही पृ० ३२८

२ उपनेषद् परिजाता अखेय फल एक
अरथी सद्गवर योगी अदेहो पुरानम्
बहु तीज वाणी सुशीलम् सुदरशन्
निरायु अग्रायु परम दीप बानो प्रसन्नो
अन्तर मोखी द्रेष्टी नेरवान रहस्य तती परम गती। वही पृ० ३२८

हो जाता है। वह राजयोगी होकर सभी वस्तुओ का दाता और सभी जीवो का पिता हो जाता है। सभी आकाक्षाओ को पूर्ण करने मे समर्थ हो जाता है।[1] आत्मतत्व और ब्रह्मतत्व का साक्षात्कार कुण्डालिनी शक्ति के जाग्रत होने के पश्चात् होता है। कुण्डलिनी शक्ति का स्वरूप और वह कैसे जाग्रत होती है इस सबध मे देवी रूप भवानी का कथन है कि, "शुद्ध प्रयासों से साधक मूलाधार चक्र से कुण्डलिनी शक्ति को जगाने मे समर्थ होता है। यह शक्ति मण्डलाकार और गौरवर्णी है। मुक्ति की शुद्ध कामना से सूक्ष्म प्रयासो से गहन ध्यानावस्था मे जागतिक कार्यों एव प्रपञ्चो से विरत होकर साधक कुण्डलिनी शक्ति को जगाकर षट्चक्रो (मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध आज्ञा) का भेदन करके सहस्रार में शान्त अवस्था मे ध्यानस्थ होता है। वहॉ तुरीयावस्था में ईश्वर (ब्रह्म) से उसका साक्षात्कार होता है। ये परमतत्व से मिलन की बडी आनन्दमयी अवस्था है।[2]

आत्मस्थ व्यक्ति ही निर्वाण का रहस्य प्राप्तकर सकता हैं आत्मस्थ व्यक्ति का परिचय देवी रूप भवानी इस प्रकार देती हैं– सासारिक रिश्तों नातों से उदासीन, हर स्थान में स्वय के अतिरिक्त कुछ और नहीं देखता है। विश्व के सृष्टि, पालन और सहार तीनो नियमों से परे है। उसका केवल आत्मसत्ता में

---

[1] पवितूर नेथूर पश्यूत मोखी अन्तर
वाहो बहुदनाडी असख्य काम करतू
यिहोय राजयूगी दाता पिता सुय
सर्व काख्या सु अर्थ पूरनी
अन्त मोखी द्रेष्टी नेरवान् रहस्य तती परमगती। वही पृ० ३२९

[2] शुद्धयोक्त मूलाधारी कुण्डली मण्डली गौरी
सेद अरथ सूक्ष्म सोष्पती चखूर विरख्त शान्तादारी
ईश्वरी तोरियातीत परमानन्दी नेतिस्तस्थी
अन्तरमोखी द्रेष्टी नेरवान् रहस्य तती परमगती। वही मई ९६ अक से पृ० ३२७

विलय हो जाता है। वह न कुछ देखता है, न किसी बधन मे बधता है। वह कुछ जानता भी नहीं है, प्रसन्नमन रहने वाला है। स्थितप्रज्ञ की स्थिति में होकर वह शुद्ध आत्मस्थ और अविनाशी ईश्वर के स्वरूप का चिन्तन करता है।[1] ऐसा आत्मस्थ मुक्त सन्त न तो रूद्राक्ष धारण करता है न कोई मन्त्र ही उच्चरित करता है। न उसकी कोई इच्छा शेष रह जाती है और न वह जाति गोत्र के नियमो मे बधा रहता है। न उसकी कोई वशावली होती है, न वह किसी प्रकार की पूजा ही करता है। वह हमेशा महाआनन्द मे रहता है। उसकी प्रज्ञा हमेशा आज्ञा चक्र मे रहती है और इसी कारण वह समस्त ससार मे अपनी व्याप्ति महसूस करता है। नाद बिन्दु के रहस्य से परिचित ऐसा सन्यासी स्वय को जीत लेता है।[2] ऐसे मुक्त सन्त की न पत्नी होती है न पुन जन्म ही होता है। सभी कर्मो से रहित उसका स्वभाव भस्म की तरह शान्त और आकार रहित होता है। वह शारीरिक चेतना से परे समाधि मे रत रहता है। हमेशा आनन्दमय स्थिति मे रहता है। वह बिना किसी लगाव के हमेशा सावधान रहता है वह निष्काल, निराकर ब्रह्म मे तल्लीन रहता है।[3] मुक्त सन्त अह और मोह का त्याग कर देते

---

[1] नेरलजा रमनू पर रूफ निदारा
सेष्ठ थेथ सहारी वेलय् चेथ
अद्रेष्टो अग्रन्थो निजानो प्रसन्नो
आदिदीव तथ निहानो नेष्कल थेररूफ
अन्तर मोखी द्रेष्टी नेरवान् रहस्यतती परमगती। प्रबुद्धभारत जून ९६ अक देवी रूप भवानीस टेन वर्सेस ऑन निर्वान पृ० ३९७

[2] लुद्र व वुच्चा न आसा न गुत्री न बाशी
न कुली न क्रेत्य महानन्द रूपम्
शेयुम् थान वासी आदि सर्व मध्य
जिता सन्यासी न बेउन बेन्द नादी।
अन्तर मोखी द्रेष्टी नेरवान् रहस्य तती परमगती।।वहीं जून ९६ अक पृ० ३९७

[3] न जाया न जन्मो दग्द कर्मकाण्डी
यथा शान्त बस्मी अरूपा स्वरूप
सु सर्व सोखीं अदेहो समादि

है। जन्म मृत्यु के चक्र से मुक्त होकर परमसत्ता मे पूर्णतया लयमान हो जाते है। यहः मिलन कमल के पत्ते पर पडी जल की बूँद के सदृश नही होता वरन् आकाश के मध्य मे वृक्ष के अस्तित्व की तरह अकाल्पनिक हैं। वर्णन की सभी सीमाओ से परे जो ब्रह्म है उसकी कौन सी वाणी व्याख्या कर सकती है, अर्थात् नहीं कर सकती उसकी साधना का फल केवल आत्मिक ज्ञान प्राप्त करना हैं। वह कभी-कभी पत्थर से भी कठोर और कभी-कभी जल से भी तरल हो जाता है। कभी-कभी अग्नि से भी अधिक तप्त हो जाता है कभी भस्म से भी अधिक शान्त हो जाता है विस्मयाकुल होकर वह दैवी चेतना मे निवास करता है उसके ध्यान मे समस्त दृश्यमान विश्व का अस्तित्व है।[1] वेद वाक्यो के अर्थो को अमृत नदी के जल की भॉति पीकर (आत्मसात करके) तृप्त हो जाते है। ज्ञान की विविध धाराये उसमे उसी प्रकार समहित होती है जैसे पूर्ण चन्द्र मे उसकी सोलहो कलाये। वह पण्डित है, समदर्शी है, जगदगुरु है अनन्त प्राणियो मे पूजा के योग्य है।[2]

अमोह सावदान तथ् निष्कल निराकार
अन्तर मोखी द्रेष्टी नेरवान् रहस्य ततीपरगती।। वही जून ९६ अक पृ० ३९८

[1] अह त ममता गालिथ थेथ प्रेलय ना आसे
युथ ना आसे मीलिथ् कवलदल जल बेन्द
मध्य आकाशी कदाचित ब्रेछ ना आसे
लगि न तु क्या वाचे फला रस ग्येनी

शेला जल सग अगुनदाह बस्मो
साद तैय पसमु सर्व अन्तर् स्रेष्टी
अन्तरमोखी द्रेष्टी नेरवान् रहस्यतती परमगती पृ० ३९८

[2] वीदवाख अर्था अम्रेत नदी सप्रीता
अनीख प्रवाही समनय् षोडश चन्द्र कल
स पण्डिता समदर्शयग्नी अरचनीदीव
सु नेरमल तोत्री सथ तव पाठि
सर्वत्र जगद् ग्वरू सीवा अनन्त पूजनी एक
अन्तर्मुखी द्रेष्टी नेरवान् रहस्य तती परमगती।। वही पृ० ३९९

इस प्रकार आत्मा, ब्रह्म और आत्मस्थ व्यक्ति के स्वरूप की विवेचना करके देवी रूप भवानी ने स्वय के दृष्टिकोण का परिचय दिया है। आत्मा-परमात्मा के विवेचना विषयक सिद्धान्तो से परे उनका अपना विलक्षण सिद्धान्त है जिसमे होने और न होने की दोनो परस्पर विरोध मूलक स्थितियों की कल्पना है। उनका आत्मतत्व ब्रह्मतत्व से अलग नहीं है। उससे अलग उसका कोई अस्तित्व भी नहीं हैं वह केवल ब्रह्माण्ड तक भी सीमित नहीं है। ब्रह्माण्ड से परे भी उसका अस्तित्व है। उसका अनुभव आनन्द का अनुभव है। वे अपना यही साक्षात्कारित सत्य लोगो के सम्मूख पद्य रूप मे उद्घाटित करती है।

अत्यन्त सहज सरल भाषा मे वे इतना गहन ज्ञान मनुष्य मात्र को प्रदान करती है, ऐसा लगता है वे बहुत पास बैठकर अपने बच्चो को सृष्टि के रहस्यो से परिचित कराती है।

(६) बयाबाई

हिन्दीतर प्रदेश की सत कवयित्रियो की चर्चा करते समय महाराष्ट्र प्रदेश की "बयाबाई" नामक सत कवयित्री विशेष उल्लेखनीय है। ये समर्थ रामदास की शिष्या थीं। समर्थ रामदास का समय बयाबाई का भी माना जाना चाहिये।

बयाबाई का उल्लेख आचार्य विनय मोहन शर्मा ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी की मराठी सन्तो की देन" मे किया है। इसमे उनके जीवन के किसी भी तथ्य का परिचय दिये बिना उन्होने उन्हे केवल समर्थ रामदास की शिष्या के रूप मे उल्लिखित किया है।

"ग्रेट विमेन ऑफ इन्डिया मे सकलित' निबन्ध 'ग्रेट हिन्दू विमेन इन महाराष्ट्र मे डा० कमलाबाई देशपाण्डे ने वेणाबाई (Venabai) नाम की एक स्त्री सत का उल्लेख किया है। इनका परिचय देते हुये उन्होंने कहा है कि "ये रामदास की शिष्या और बहिणाबाई की समकालीन थीं। वे एक ब्राह्मण परिवार में जन्मी थीं और बाल विधवा थीं[1] एक अन्य सन्त कवयित्री अक्काबाई के वर्णन प्रसग मे भी डॉ० कमला बाई देशपाण्डे ने वेणावाई का उल्लेख किया है, और कहा है कि "जब भी लोग रामदास की स्त्री शिष्याओं के बारे मे बात करते हैं तो वेण्णबाई के साथ अक्काबाई का नाम भी अवश्य लिया जाता है।[2] कहने का तात्पर्य यह है कि "वेणाबाई" बहुत प्रसिद्ध सत कवयित्री रही होंगी क्योकि,

---

[1] ग्रट विमेन ऑफ इन्डिया पृ०-३५३

[2] वही पृ०-३५३

महाराष्ट्र प्रदेश भी सत कवयित्रियो का वर्णन करते समय महदम्बा, मुक्ताबाई, जनाबाई, कान्हूपात्रा, बहिणाबाई, अक्काबाई के साथ डा० कमलाबाई देशपाण्डे ने वेणाबाई का भी उल्लेख किया है, जबकि हिन्दी मे महाराष्ट्र प्रान्त की सत कपयित्रियो के वर्णन प्रसग मे अन्य सत कवयित्रियो के साथ वेणाबाई का नामोल्लेख न होकर बयाबाई का उल्लेख मिलता है। हिन्दी को मराठी सतो की देन, महाराष्ट्र सत कवयित्री, और हिन्दी साहित्य मे निर्गुणोपासिका कवयित्रियॉ मे बयाबाई का ही उल्लेख है, वेणाबाई का नहीं। कुछ तथ्य ऐसे है जिनके आधार पर हम दोनो कवयित्रियो को भिन्न न कह कर एक ही कह सकते हैं।

(१) दोनो का समय एक ही है।

(२) दोनो समर्थ रामदास की शिष्या हैं।

(३) हिन्दी मे बयाबाई के अतिरिक्त वेणाबाई का उल्लेख न होना सन्देह उत्पन्न करता है।

(४) दोनो की गुरु के प्रति ऐसी उत्कट भावना है कि दोनों लोक निन्दा का पात्र बनती हैं।

"बयाबाई की रामदास पर अपरम्पार भक्ति थी, इतनी अधिक कि किसी पतिव्रता स्त्री की अपने पति पर भी न होगी। सभवत इसी कारण लोगों को

फब्तियाँ कसने का अवसर मिला हो। वे प्रेम मे इतनी भूली-भूली दीख पडती हे कि अपने गुरु को "भाई" तक से सबोधित कर बैठती है।

वेणाबाई रामदास की हर कीर्तन सभा मे उपस्थित रहती थीं, और उनसे इतना अधिक प्रभावित हुईं कि लोक निन्दा का पात्र बनी। उनके माता-पिता उन्हे इस रास्ते से हटाने की बहुत कोशिश करते है। परिवार की प्रतिष्ठा पर ऑच न आये, अत उन्हे विष देने का उपक्रम भी होता है। (Ramdas was there and this Kirtana was drawing crowds Venabai attended them and was so much charmed with him that scandal spread Her parents tried her to dissuade her from her path, but in vain In their anxeity to save the good name of the family they are said to have poisoned her)

(५) दोनो का अपने गुरु के मत के प्रचार के लिये भ्रमण (यात्राओ) का प्रस॑ग उल्लिखित है।

"महाराष्ट्र सत कवयित्री" में स्वय बयाबाई की कविता का एक अश उद्धृत है-

रामदास गुरु उनकी दासी।

दास वचन फिरे देस विदेसी।।

' हिन्दी को मराठी सतो की देन से पृ० - १९२

' ग्रेट विमेन ऑफ इन्डिया पृ०- ३५४

मै रामदास गुरु की दासी हूँ और रामदास के वचनो को देश विदेश मे घूमकर फैलाती रहती हूँ।

"ग्रेट हिन्दू विमेन इन महाराष्ट्र" की लेखिका डा० कमलाबाई देशपाण्डे ने भी यही तथ्य प्रस्तुत किया है। उन्होने अपने गुरु की सेवा की और छ साल तक कीर्तन और पुराणो को सुनकर स्वय को शिक्षित किया। कवित्व के गुण जो उनमे प्रसुप्त थे, जाग गये और अब वे कविता करने लगीं। उनकी योग्यता को देखकर उनके गुरु ने उन्हे कीर्तन रचने की आज्ञा दी और उन्हे मिरज भेजा, जिससे उनके सम्प्रदाय का प्रचार-प्रसार हो सके।[1]

(She left her people and followed Ramdas as his disciple She served her guru, and educated herself by listening to Kirtana and Purana for six years The germs of poetry that was dormant in her now flowered, and she began to compose Seeing her ability, her guru admitted her to his order, allowed her to perform Kirtans and sent her to Miraj to lay the foundation of a monastery for the spread of his cult)

ये उद्धरण उनकी कवित्व प्रतिभा और उस प्रतिभा के कारण गुरु द्वारा उनके मत के प्रचार के योग्य समझी गई बयाबाई के भ्रमणशील व्यक्तित्व के परिचायक हैं।

उक्त तथ्यो के आधार पर इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि दोनों (बयाबाई और वेणाबाई) सत कवयित्रियॉ भिन्न न होकर एक ही हैं।

---

[1] ग्रेट ह्रिन्दू विमेन इन महाराष्ट्र पृ०- ३५४

बयाबाई ने कितनी मात्रा मे कवित्व रचना की है यह अभी बहुत स्पष्ट नहीं है क्योकि सकलन न हो पाने के कारण मौखिक रूप में यह बहुत दिनो तक सुरक्षित नहीं रह पाते हैं और सभवत यही इनके साथ भी हुआ है। हिन्दी और मराठी दोनो मे इनके कुछ पद मिलते है या ये कहें कि इनकी भाषा का स्वरूप बहुत कुछ दोनो भाषाओ के मिश्रण से बना है। अभी तक इनके पॉच पद प्राप्त हैं जो निम्नलिखित हैं-

(१) क्या कहूँ के गुरुनाथ की बात मे (मैं)

मस्त भया है दिल मेरा रग मे

लाल रग में सफेद खुला है।

कोई नहि जाने आपे भुला है।

जब सद्‌गुरु के पग लीन होन

रामदास गुरु पथ की दासी।

दास बया फिरे देस विदेसी।[1]

(२) अल्ला हे बेफिकीर मे कहॉ जावो रे।

जाहाता बोहि खडा येहि मेरे नैना रे।

नजर के सदर में खल्के हजर होरे।

रात दिन जाहा नही सोहि खुदा पायो रे।

जी लिया जान लिया मेरा मुजा का नही।

---

[1] हिन्दी को मराठी सतो की देन से पृ० - १९०

जब तो बेयान छुवा आज, कछ सुनता नहि रे।

पल-पल के खेल न्यारे जिसके हजारो हुवे

रगातीत मेरा साई दास बया को मिलारे।[1]

(३) जायो (जाओ) सखी री जहॉ गुरु बैठा ।

जिसके दिल मे येहि जग बैठा ।। ध्रुवपद ।।

बाग रगेला महल बना है।

इस झुलने पर झुलो रे भाई।

जनम मरन की झूल न आई।

दास बया कहे गुरु भैया ने ।

मुझ कू सुलाया सोहि झूलने ।[2]

(४) ध्याइये गुरु पग अधमोचन । सुखदायक भवाब्धितम ।

चिद् गगन मे आसन खूला । जापर सदगुरु राज रमीला।।

सूर्यचद्र वो दिवटि जलत है

जब देखा तब डूब गई तन ।।

जाकी सत्ता जग मो भरि हैं जो देखी तहॉ ढाह रही है,

सो सद्गुरु किरिपा सो मिलती, सब छॉड के पग जा सरन।

---

[1] हिन्दी को मराठी सतो की देन पृ०- १९१

वही पृ० - १९२

[2] वही पृ०- १९२

(५) लिखा पढा कछु नहि आवे,

अतकाल मे सबही जाये।

जोरू लडके महल मजालस,

यहॉ रहती फेरे आपत्ति जाना।

दिल मेहर मिल गया दिल को,

तारनहारा गुरु है सबको

दास बया कह कछु नही देखा,

जब देखा तब उलटा नयन।[१]

बयाबाई की अपने गुरु पर आगाध श्रद्धा है और ये श्रद्धा उनके प्राप्त पदो मे अभिव्यक्त भी हुई है। उनका मन गुरु के रग मे रगकर सराबोर हो गया है। गुरु उन्हे हृदय के हिडोले पर बैठा कर झुलाते हैं और वे भाव विभोर हो कह उठती है-

दास बया कहे गुरु भैया ने।

मुझ कू सुलाया सोहि झूलने ।।

उनके गुरु के चरण पाप विनाशक हैं। ससार रूप अधेरे में सुख देने वाले हैं। उनकी दृष्टि मे सूर्य चन्द्र का प्रकाश है और जब उस दृष्टि का वास्तविक

---

१ हिन्दी को मराठी सतो की देन पृ०- १९२

स्वरूप उन्हे दिखाई देता है तो उनका तन मन सब डूब जाता है, अत वे सब कुछ छोडकर गुरु के चरणो मे शरण लेने को कहती है।

ससार की नश्वरता का उल्लेख करते हुये वे मानव मात्र को आगाह करती है कि एक दिन सब कुछ नष्ट हो जायेगा, अत सासारिकता से विरत होकर गुरु जो तारनहार है, जो दिल को दिल से जोडने वाले है, से ही सबध रखना उचित है।

उक्त पदो के आधार पर उनकी गुरु के प्रति भक्ति भावना बहुत कुछ स्पष्ट हो जाती है। इस भक्ति भावना का सबसे बडा गुण आत्मविभोरता है, उसी आत्मविभोरता की स्थिति मे आत्मस्थ होने-

बाग रगेला महल बना है

इस झुलने पर झुलो रे भाई ।

का उपदेश देकर ससार की वास्तविकता का तथ्य भी उद्घाटित करती हैं। बयाबाई की भाषा के सबध मे आचार्य विनय मोहन शर्मा का मत है, "बया की हिन्दी मे बहुत कुछ स्वच्छता है मुस्लिम प्रभाव से जनता में अरबी फारसी का प्रचलन हो गया था। कवि भी उन्हें अपनी रचनाओ में प्रयुक्त करने लगे थे। इसके अतिरिक्त बयाबाई ने उत्तर भारत के नगरो की यात्रा की थी। जहॉ विदेशी

शब्दो का चलन लोकभाषा मे महाराष्ट्र की अपेक्षा अधिक था अत बया की भाषा मे मिश्रण स्वाभाविक है।[1]

यद्यपि उनकी बहुत कम रचनाये उपलब्ध हैं तथापि प्राप्त रचनाओ के आधार पर उनकी गुरु भक्ति, साधना पद्धति का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है।

बयाबाई सत काव्य परम्परा मे अद्वितीय स्थान की अधिकारिणी है। तत्कालीन परिस्थितियो मे जबकि देश अज्ञानता के चगुल मे ग्रस्त था, विदेशियो एव स्वय के आन्तरिक युद्धो की विभीषिका झेल रहा था, ऐसी साहसी महिला के रूप मे बयाबाई सामने आती है, जो ज्ञान प्राप्ति के लिये न केवल अपना घर-बार त्यागती है, अपितु अपने गुरु के मत के प्रचार-प्रसार मे भी अमूल्य योगदान देती है। सतकाव्य परम्परा मे उनका स्थान अछुण्ण है।

---

[1] हिन्दी को मराठी सतो की देन से - पृ० - १९३

(७) जनाबाई

भक्तिमती जनाबाई महाराष्ट्र की सत कवयित्रियों में अपना अद्वितीय स्थान रखती है। ये ज्ञानेश्वर की समकालीन थीं। भक्तप्रवर नामदेव जी के घर का कार्य करने वाली दासी थीं। ये नामदेव जी के पिता द्वारा पालित पोषित कही जाती है। इस सबध मे एक प्रसग ''ग्रेट विमेन ऑफ इन्डिया'' के अन्तर्गत सकलित निबन्ध ''ग्रेट हिन्दू विमेन इन महाराष्ट्र'' मे उल्लिखित है। ''पण्ढरपुर के मन्दिर की सीढियो पर एक लडकी बैठी रो रही थी। दामा शेट्टी जो एक दर्जी थे, ने लडकी की पीठ थपथपाते हुये पूछा, ''बेटी तुम क्यो रो रही हो। तुम्हारे मॉ-बाप कहॉ है? लडकी ने उत्तर दिया, मेरे कोई नहीं है और वह बुरी तरह से रोने लगी ''तब तुम मेरीसन्तान हो'' ऐसा कहकर दामा शेट्टी उसे अपने घर ले आये। ये घटना कोई ६०० वर्ष पूर्व की है जब दामा शेट्टी कार्तिक के महीने में होने वाले वार्षिकोत्सव में विठोबा के दर्शन हेतु पण्ढरपुर गये थे। ये अनाथ लडकी जिसे जानी कहा जाता था, बाद में अत्यन्त सम्माननीय सत कवयित्रियों में से एक हुई।[1] दामा शेट्टी परभानी नगर के नरसी ब्रह्माणी कस्बे में रहते थे। वारकरी सम्प्रदाय की परम्परा के अनुसार कार्तिकी एकादशी को विठोबा के दर्शन करने आये थे। भक्ति विज्ञान के लेखक महीपति के अनुसार जानी के पिता का नाम दामा था और माता का नाम करूण्द था। वे निम्न जाति के थे। वे गगाखेडा के निवासी थे और वहॉ से विट्ठल के दर्शन के लिये पण्ढरपुर आये थे। जानी भी उनके साथ थी। लेकिन भगवान के विग्रह को देखने के पश्चात् उसने वहीं

---

[1] पृ० ३९८

ठहरने का निश्चय किया।[1] कल्याण के 'सत विशेषाक' मे जनाबाई का दामा शेट्टी के परिवार मे आने का प्रसग इस प्रकार उल्लिखित है। -- जनाबाई श्री नामदेव जी के घर का काम-धधा करने वाली एक दासी थीं। इनका जन्म गोदावरी तीर पर गगाखेडा नामक स्थान मे एक शूद्रकुल मे हुआ था। पिता का नाम दमा और माता का नाम करूण्ड था। माता बचपन मे ही चल बसी। पिता बच्ची को लेकर पण्ढरपुर की यात्रा करने गये। पण्ढरपुर के भगवन्नाममय वातावरण और श्री विट्ठल के दर्शन का इस छोटी कन्या के हृदय पर कुछ एसा असर पडा कि इसने पिता से कहा कि अब मै यहीं रहूँगी। पिता ने हर तरह से जब देख लिया कि जना के हृदय मे भगवन्मिलन की सच्ची लगन है तब उसने ममता का पाश तोडकर अपनी इस सात वर्ष की कन्या को नामदेव जी के पिता दामासेठ के घर काम-काज करने के मिस रहकर भगवद्भजन करने के लिये छोड दिया। नामदेव जी का अभी जन्म नहीं हुआ था। पीछे नामदेव जी जन्मे। नामदेव जी को बचपन मे जना ने ही खिलाया। नामदेव जी के घर के सभी लोग भगवान का नाम लेने वाले और भजन करने वाले आनन्दी जीव थे। जना भी दासी होकर भी उनमे धुल मिल गयी।[2]

दामा शेट्टी के परिवार मे दासी के रूप मे स्वीकार की गई जनाबाई नामदेव के साथ बडी हुईं, जो विठोबा के भक्त थे। "वह कोई भी काम करती भगवान्नाम का कीर्त्तन किया करती। वह साध्वी थीं। काम करना था उसे भग्वदभक्त-भवन का। सारी क्रियाओं से उससे भगवत्सेवा स्वय होती जाती थी

---

१ ग्रेट विमेन ऑफ इन्डिया से उद्धृत पृ० ३४८

२ कल्याण सत पृ० ४९९

३ कल्याण नारी अक पृ० ६५७

जनाबाई आजन्म अविवहिता रहीं।[1] इनके आराध्य देव विट्ठल थे। सवत् १४०७ की श्रावण कृष्ण त्रयोदशी को इहलोक से चल बसी।

एक बार नामदेव जी ने असख्य अभगो की रचना का निश्चय किया। लेकिन यह कार्य एक व्यक्ति के लिये बहुत कठिन था, इसलिये उन्होंने अपने परिवार के सदस्यो की सहायता लेने का विचार किया। प्रत्येक सदस्य को निश्चित सख्या मे पद रचना के लिये कहा गया। जना को भी बडी सख्या मे पद सृजन के लिये कहा गया। जना की रचनाये औरो की रचनाओं से परिमाण और गुण सभी दृष्टियो मे बढकर निकली क्योकि वह स्वय को प्रतिक्षण भगवान विठोबा के सानिध्य मे पाती थी।[3]

जना जब भी कोई कार्य करती थीं वह सोचती थी कि भगवान विट्ठल उसके साथ हैं। वह प्रात काल जल्दी उठती थी और परिवार के लिये अनाज पीसने का कार्य करती थीं। ये बात बहुत शीघ्र ही प्रकाश में आई कि भगवान विठ्ठल उसके साथ स्वय अनाज पीसते थे। एकदिन नामदेव जी की मॉ ने जना की झोपडी मे किसी की बातचीत सुनी लेकिन जब उसने अन्दर झाककर देखा तो एक अन्य स्त्री जना की सहायता कर रही थी। पूछने पर उसने अपना नाम विठाबाई बताया। अब नामदेव जी की मॉ समझ गईं कि ये विठ्ठल ही हैं और जना के प्रति अपने मन मे शका के कारण बहुत लज्जित हुई।[4]

---

[1] मराठी का भक्ति साहित्य पृ० ९२

[2] कल्याण सत अक पृ० ५००

[3] ग्रेट विमेन ऑफ इन्डिया के ग्रेट विमेन इन महाराष्ट्र से उद्घृत पृ० ३४९

[4] वही

इसी तरह एक बार जना द्वारा धोये जाने वाले वस्त्र वृद्धा के वेश मे विठोबा ने धो दिये। जना नामदेव जी के द्वारा यह जानकर कि वे स्वय विठ्ठल थे, बडी दुखी हुई कि भगवान को उनके लिये कष्ट उठाना पडा। प्रतिपल विठोबा का सानिध्य पाने वाली जनाबाई के सबध मे एक अन्य कथा भी है। विठोबा नामदेव के साथ भोजन ग्रहण करते थे। एक दिन जना खेत मे उपले बनाने गई थीं। भगवान ने कहा, 'मै जना की अनुपस्थिति मे भोजन नहीं ग्रहण कर पाऊँगा। जनाबाई बुलाई गईं तो भगवान् ने अतीव आनन्द के साथ भोजन ग्रहण किया।

इन कथाओं के पीछे क्या सत्यता है, यह इसी से निश्चित हो जाता है कि अपने जीवन काल मे वे लोगो के द्वारा बहुत पूजित थीं और वह सम्मान उन्हे आज भी प्राप्त है। यह निश्चित नहीं है कि उन्होने कितने अभगो की रचना की, लेकिन करीब ३५० अभग उनके नाम से मिलते हैं। उनमे से बहुत से पद इधर-उधर कर दिये गये हैं अर्थात् दूसरो के नाम से मिलते हैं और बहुत से काट-छॉट दिये गये हैं, इसलिये यह कहना कठिन है कि उनके मौलिक पद किस रूप मे रहे होगे। लेकिन इसमे कोई सन्देह नहीं है कि उनके अभग प्रसिद्ध है और वारकरी सम्प्रदाय की दैनिक प्रार्थना मे शामिल किये जाते हैं। उनके अभगो मे भाव भक्ति निरहकारिता, सयम, नीति, ज्ञान और वैराग्य की चर्चा है। सत नामदेव ज्ञानेश्वर एव सत चोखामेला का नाम सकीर्तन उन्होने अपने अभगो मे किया है। उनका कहना है--

माझी भेटवा जननी,

सन्ता विनवी दासी जनी।

*   *   *

मतिमन्द भी तुझी दासी,

ठाव घावा पाया पाझी।[1]

वे सत ज्ञानेश्वर की वन्दना सख्यभाव से करती हुई कहती है-

ज्ञानाचा सागर।

सखा माझा ज्ञानेश्वर।

मरोनिया जावे।

वा तुझयाचि पोटी पावे।

ऐसे करीगा माझ्या देवा

सख्या माझ्या ज्ञानदेवा।।

जाईन ओवाळनी

जन्मो जन्मी म्हेण जनी।[2]

अर्थात् मेरे सखा ज्ञानेश्वर सचमुच ज्ञान के सागर हैं। मैं चाहती हूँ कि मर जाऊँ और उनके घर फिर से जन्म लूँ। हे ज्ञानेश्वर! मुझ पर इतनी कृपा कीजियेगा कि मै आपके चरणो पर जन्म जन्मान्तर न्योछावर होती रहूँ।

---

१ सत काव्य में नारी से उद्धृत पृ० १९४

२ वही

जनाबाई अपनी भक्ति, ज्ञान से सत परम्परा की श्रीवृद्धि करती हैं। यद्यपि उनके अभगो का कोई सकलन प्राप्त नहीं है, तथापि वे अपने युग की सम्मानित, पूजित सतकवयित्री हैं, जिसने सत मत की धारा को पुष्ट करने मे अपना योगदान दिया। ये उस काल से सम्बन्ध रखती हैं जब सतमत की धारा के प्रवाह से सम्पूर्ण भारत आप्लावित हो रहा था। उनकी निशिष्टता इस सन्दर्भ में भी है कि वे एक दासी थीं। दासी जो निम्न वर्ग से सबध रखती है, जिसके सामान्यतया अपने कोई विशिष्ट विचार नहीं होते, ऐसा विचारशून्य कार्य करते हुये भी वे इतनी विचारवान है, ये उनको ही नहीं, सम्पूर्ण सन्त परम्परा की उपलब्धि है।,

(८) इन्द्रामती

इन्द्रामती धामी सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक प्राणनाथ जी की पत्नी थीं। इनका उल्लेख पीताम्बरदत्त बड्थ्वाल ने "हिन्दी काव्य मे निर्गुण सम्प्रदाय" मे एव डा० सावित्री सिन्हा ने "मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियॉ" मे प्राणनाथ की पत्नी के रूप मे किया है। प्राणनाथ जी का समय १६१९ से १६९५ ई० माना जाता है अत इन्द्रामती का भी यही समय अनुमानित है। ये जाति से क्षत्रिय थी एव इनका निवास स्थान गुजरात के कठियावाड का जामनगर नामक स्थान था। इन्द्रामती की मृत्यु सन् १६९४ ई मे हुई थी।[1]

इन्द्रामती सत मतावलम्बी थी। विक्रम की १७वीं शताब्दी के लगभग जब ईसाई धर्म का प्रचार-प्रसार भारतवर्ष मे शुरू हुआ तो निर्गुण मार्गी सन्तो ने स्वय को उसके करीब पाया। इसी समय प्राणनाथ जी ने हिन्दू, मुसलमानो एव ईसाइयो को एक घोषित किया। इसके साथ-साथ उन्होने स्वय को एक साथ मेहदी, मसीहा और कल्कि घोषित किया।[2] इस पथ के सिद्धान्तों के अनुसार धर्म के नाम पर विभाजन एव दूसरे धर्मावलम्बी को स्वय से भिन्न एव निम्न कोटि का समझना मिथ्या है, झूठ है। इन्होंने सूफियों के प्रेम और ईसाइयों की आचार निष्ठा को स्वीकार किया और एक सर्वमान्य सिद्धान्त की प्रतिष्ठा की, प्रेम तत्व सवलित एकेश्वर वाद"। धामी सम्प्रदाय का उद्देश्य ही है भगवान के धाम की

---

[1] हिन्दी साहित्य मे निर्गुणोपासिका कवयित्रियॉ पृ० ८५

[2] मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियॉ । पृ० ८३

प्राप्ति। प्राणनाथ एक विख्यात सन्त थे। इन्होने पन्ना नरेश छत्रसाल के लिय हीरे की खान का पता लगाया था। इतने प्रसिद्ध सन्त की पत्नी भी उन्हीं के समान प्रतिभाशाली थीं उन्होने अपने पति के साथ सयुक्त रूप से रचनाये कीं।

धामी पथ के वृहद ग्रन्थ मे इन्द्रामती के रचे हुये बहुत से अश है। ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रति के ऊपर के पृष्ठ कुछ खण्डित है, इस कारण उसका नाम ज्ञात नहीं होता। पर उसमे जो छोटे-छोटे ग्रन्थ सम्मिलित है, उन सबमे विभिन्न धर्मों विशेष कर हिन्दू और इस्लाम धर्म मे एकत्व दिखलाने का प्रयास किया गया है, और आश्चर्य तो यह होता है कि लगभग प्रत्येक ग्रन्थ मे इन्द्रामती की लिखी हुई कविताये सम्मिलित हैं।[१] नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिर्पोटों में इन्द्रामती एव प्राणनाथ की बारह से भी अधिक सयुक्त कृतियों का उल्लेख है।[२] इस ग्रन्थ मे सकलित सयुक्त कृतियॉ निम्नाकित हैं।

१ किताब जम्बूर

२ षट रुत

३ षट रुत नो कलस

४ किताब तोरेत

५ सनधे

६ कीर्त्तन

७ खुलासा फुरमान

---

[१] मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियॉ पृ० ८४

[२] मधकालीन हिन्दी कवयित्रियॉ पृ०८४

८ खिलवत

९ परिक्रमा

१० आठो सागर

११ कयामत नाम छोटो

१२ कयामत नामा बडो

१३ मारफत सागर

१४ रामत रहस्य

इन रचनाओ मे षट रुत, षट् रुत नो कलस और रामत रहस्य पूर्ण रूप से इन्द्रामती रचित है। कीर्त्तन के भी अधिकतर पद उन्हीं के द्वारा रचित हैं। इनमे खुलासा फुरमान, सनधे, कयामत नामा छोटो, कयामत नामा बडो, मारफत सागर, खिलवत मे इस्लाम धर्म की विवेचना है। किताब जम्बूर में हिन्दू धर्म के अनेक सम्प्रदायो पर प्रकाश डाला गया हैं। परिक्रमा मे हिन्दू और इस्लाम धर्म के मूल तत्वो की तुलना करते हुये दोनो की विरोधी धारणाओं का निराकरण एव समानताओ द्वारा समन्वय का प्रयास किया गया है, षट रुत नो कलस की रचना के विषय मे प्राणनाथ जी का कथन कि–

साथ के सुख कारने इन्द्रमती को मै कह्या।

ताथे मुखइन्द्रामती से स्रवण कर भया।[१]

---

१ मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियॉ पृ० ८६

साथ के सुख के लिये इन्द्रामती को जो उन्होने कहा, इन्द्रामती ने उसे काव्य रूप मे परिणत कर दिया। इससे तो ऐसा लगता है कि इन्द्रामती में काव्य प्रतिभा तो थी किन्तु प्रेरणा और विषय वस्तु प्राणनाथ की थी। इन्द्रामती द्वारा रचित विप्रलम्भ श्रृगार के कुछ प्रसग उद्धरणीय है, जिनमे हम उनकी तीव्र विरहानुभूति और उत्कट भक्ति भावना के दर्शन करते हैं—

सब तन बिरह खाइया, गल गया लोहू मास।

न आवे अदर बाहर, या विधि सूकतासॉस।[१]

*   *   *   *   *

हॉड भयो सब लकडी सर, श्रीफल विरह अग्नि।

मॉस भीज लोइ रगा, या विधि होत हवन।[२]

उक्त उद्धहरण किताब तोरेत से उद्धरित है, जिसमें विरह का सूक्ष्म एव मार्मिक चित्रण है। यद्यपि इस रचना के विचित्र नाम से इस का कोई तारतम्य नहीं बैठता, तथापि इसकी पक्तियॉ गहन वेदनात्मक स्तर को व्यक्त करने वाली हैं। इसी प्रकार बारह मासी मे भी उनकी विरहाभिव्यक्ति इस रूप में फूट पडी है।

हूॅ तो बाला जी बिना

सोभा जिये वणराय, रूचे बरस्या मेघ।

तेन्डीं मीडयों अगनाये घर आये कियो श्रृगार।

---

[१] मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियॉ पृ० ८७

[२] मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियॉ पृ० ८७

ऐ नीर तेरे आधार।

छेम दीजिये

एनेवचण इन्द्रमती अग बाला तेडी लीजिए।[1]

इन्द्रामती ने अपनी रचनाओ को मल्हार, राग बसत, राग सामेरी, राग परभाती आदि मे प्रस्तुत किया है।[2] भाषा अस्पष्ट एव अटपटी है, जिसमे विदेशी भाश के शब्द प्रचुर मात्रा मे है जिससे अर्थ विश्लेषण मे बाधा आती है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है–

श्री किताब कुरान श्री सन्नध।

असराफी लेखुस अवाज से, कुरान को गाया है।[3]

*   *   *   *   *

हैं सैया फुरमान लाये हम।

------------------ सो कहूँगी जो लिषा कुरान।

इन विधि फुरमान फरमावती जाहिर देखती।[4]

कहीं कही तो उनकी भाषा गद्यात्मक हो गई है

तू न भूल इन्द्रामती

---

[1] मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियॉं पृ० ८६

[2] हिन्दी साहित्य मे निर्गुणोपासिका कवयित्रियॉं पृ०८७

[3] मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियॉं पृ० ८८

[4] मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियॉं पृ० ८८

ऐसा समया पाये। तू ले धनी अपना। और जिन दिषाये।। तो ही यो धनी के बान लसी। पहिचान ले सुहाग ऐसी एकात कब पायेगी।। मेहरे करी महबूब।। करके सग मिलाप आषा षोल के ढापिये जिन चूकिये इतनी बेर।। रात दिन तेरे राज का सूत कात सवा सेर।।[1]

उपर्युक्त पक्तियो मे धामी सम्प्रदाय के प्रति आस्था और इस आस्था के फलस्वरूप मनुष्य का ईश्वर से अवश्यभावी मिलन होने के तथ्य के अतिरिक्त सम्पूर्ण पदावली छद की दृष्टि से, भाषा की दृष्टि से अस्पष्ट, अतुकान्त एव अशुद्ध प्रयोगो से युक्त है। काव्य कला की दृष्टि से उनकी रचनाओं का आकलन करने से अनेक दोष परिलक्षित होते है। उनकी रचनाओ की विशिष्टता इस सदर्भ मे है कि इन्होने अपने पति के साथ सहयोग करके ऐसे समय मे सर्व धर्म समभाव की रचनाये रचीं जब धार्मिक विद्वेष चरम पर था। यह उस युग के लिये ही नहीं वरन् आज भी गौरव की वस्तु है। उन्होने धामी सम्प्रदाय के प्रवर्त्तन मे महत्वपूर्ण सहयोग किया। इस प्रकार इन्द्रामती उस परम्परा की एक महत्वपूर्व कडी है, जिसने विश्व बन्धुत्व की भावना के प्रचार-प्रसार में अपना योगदान दिया।

इन्द्रामती सत परम्परा में महत्वपूर्ण स्थान की अधिकारिणी हैं। इन्होने न केवल भारतीय साधना पद्धति के दोनो मार्गों सगुण एव निर्गुण को अपने काव्य का विषय बनाया वरन् नवागत इस्लाम और ईसाई धर्म भी उनकी रचना के विषय थे। इनका मतव्य बहुत ही विशाल था। जहॉ सत भारतीय समाज के धार्मिक विद्वेष को दूर करके एकत्व लाने की चेष्टा कर रहे थे, वहॉ इन्होंने विश्व

---

[1] मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियॉ पृ० ८५

के अन्य धर्मों के साथ तारतम्य बैठाने की कोशिश की। धामी सम्प्रदाय का उद्देश्य है भगवान के धाम की प्राप्ति। ससार के सभी धर्मों का उद्देश्य भी यही है। विशुद्ध प्रेम की अनुभूति ही वास्तविक सत्य है। इन्होंने आचरण की शुद्धता, पवित्रता, सदाचार और प्रेम भावना पर बल दिया। प्राणनाथ जी के साथ सयुक्त रूप से रचनाये करके इन्होने स्वय की काव्य प्रतिमा का प्रमाण तो दिया ही है, साथ ही एक पुरुष के समकक्ष अपनी योग्यता भी प्रमाणित की है।

(९) मल्ला या मल्लिका

मल्ला या मल्लिका आन्ध्र प्रदेश की एक प्रमुख सत कवयित्री हैं। ये एक ाधारण कुम्हार के घर सन् १४४० को उत्पन्न हुई थी। इनके पिता का नाम सना था। इनका जन्मस्थान पन्नार नदी के बॉये किनारे पर स्थित नेलूर से छ मील उत्तर मे गोपावरम गॉव था। अब उस गॉव का नाम पदुगुपाडु है।

मल्ला तेलुगू साहित्य की प्रथम व सर्वोत्तम कवयित्री हैं। वे राजा ष्णदेवराय की समकालीन थीं। मल्लिकार्जन एव मल्लिकाम्बा (शिव-पार्वती) की ःम भक्त मल्लिका की दीक्षा वीर शैव मठ मे हुई थी। इनका एक और नाम ।शिवि' भी कहा जाता है। जिसका अर्थ है विश्वेश्वर की सेवा मे रत। ये जीवन ब्रह्मचारिणी थी, सन्यास धर्म मे दीक्षित होकर इन्होने दिव्य आत्मिक न प्राप्त किया। मल्ला ने तेलुगू भाषा मे रामायण की रचना की जिसके बारे में य उनका कथन है कि, "सस्कृत में रामायण अनेकों है, जिन्हें पण्डितगण दन को ढोने वाले पशु के समान ढोते रहते है। मेरी रामायण साधारण नमानस के लिये उन्हीं की भाषा में है। सस्कृत की उच्च शैली उनकी समझ परे हो जाती है, वैसे ही जैसे गूँगे, बहरे के समक्ष सगीत। उस पर सभी ाते।[1] महाराजा कृष्णदेव राय ने इन्हे कविरत्न की उपाधि तथा स्वर्ण अभिषेक अलकृत किया। इन्होने तेलुगू भाषा मे अनेक रचनाये की है। इनकी कवितायें ुगू समाज मे बडे प्रेम से गाई जाती हैं। इनके गीत सरलता एव भक्तिभाव से

"विवेक ज्योति" नामक पत्रिका के "आन्ध्र की सन्त मल्ला" नामक निबन्ध से उद्धृत पृ० ७९

परिपूर्ण होने के कारण तेलुगू समाज मे अत्यन्त लोकप्रिय हैं। इनकी काव्य प्रतिभा की परीक्षा के लिये एक बार इन्हे राजदरबार मे बुलाया गया। महाराज के मन्त्री तेनालीराम ने इनकी परीक्षा के लिये उन्हें गजेन्द्र की पुकार एव प्रभु के तुरन्त पहुँचने का प्रसग वर्णित करने को कहा। मल्ला ने नेत्र बन्द करके ध्यान की मुद्रा मे अपने मधुर कण्ठ से गायन प्रारम्भ किया और निर्धारित समय सीमा के भीतर काव्य रचना प्रस्तुत कर सबको आश्चर्य चकित कर दिया। तेनालीराम द्वारा पूछे गये प्रश्न कि तुम्हारा गुरु कौन है, मल्ला ने उत्तर दिया, "श्रीकान्त मल्लिकार्जुन, जो गुरुओ के भी गुरु है। पुन यह पूछने पर कि, "सुदूर गॉव मे एक कुम्हार के घर जन्मी, तुम इतनी बडी दार्शनिक कैसे बनगई, उन्होंने उत्तर दिया कि, "परम ज्ञान प्रदान करने वाले भगवान गोरेश्वर की असीम कृपा, मेरे अध्यवसाय तथा तीक्ष्ण दृष्टि के फलस्वरूप मुझे बोध प्राप्त हुआ। मेरे पिता कुम्हार थे, मै देखती थी कि वे सभी तरह की मूर्तियॉ बनाते हैं, मनुष्य पशु, पेड़-पत्ते, फूल, गुडिया, बर्तन इत्यादि। हर आकार की किन्तु सबमें एक ही तत्व है मिट्टी। अपने गॉव मे मैं नित्य देखती थी कि तिलहनों में तेल, धरती के नीचे पानी के स्रोत, लकडी मे अग्नि विद्यमान है, उसी प्रकार सभी जीवों में आत्मा भी विद्यमान है। ये उदाहरण एक ही तथ्य प्रकट करते हैं, ईश्वर सभी में व्याप्त है।'[1]

मल्ला ने अपने जीवन का अन्तिम समय श्री सैलम में बिताया। अपने अन्तिम दिन उन्होने कडी तपस्या एव साधकों का मार्गदर्शन करने में बिताये। मल्ला ने सन् १५३० में लगभग ९० वर्ष की आयु मे शरीर त्याग कर जीवन लीला से मुक्ति प्राप्त की।

---

[1] - विवेक ज्योति- आन्ध्र की सन्त मल्ला, प्रवाजिका श्यामाप्राणा पृ० ८०

मल्ला ने तेलुगू समाज मे धार्मिक प्रवृत्तियो को जाग्रत कर उसे नवीन दिशा दी। वे तेलुगू साहित्य की लोकप्रिय सत कवयित्री हैं। तेनालीराम और मल्ला के बीच वार्तालाप के प्रसग से वे अत्यन्त ज्ञानी प्रतीत होती हैं, यद्यपि उनकी साधना सगुण भक्ति भाव की प्रतीत होती है, किन्तु हमें इस तथ्य का ध्यान रखना चाहिये कि दक्षिण मे सन्त और भक्त की वैसी विभाजक रेखा नहीं है जैसी उत्तर मे है। वहॉ सन्त और भक्त एक दूसरे के पर्यायवाची जैसे प्रयुक्त होते है।
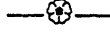
पंचम अध्याय
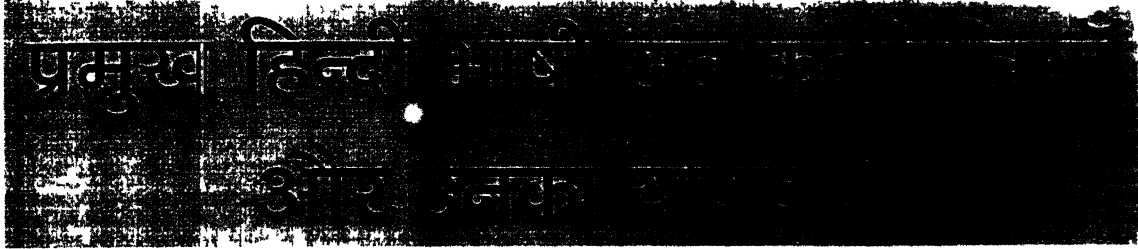
(१) सहजोबाई

सहजोबाई चरणदासी सम्प्रदाय के प्रवर्तक चरणदास जी की शिष्या एव उनकी सजातीया थीं। इन्होने स्वय अपने विषय मे कोई उल्लेख नहीं किया है, केवल अपनी रचना 'सहज प्रकाश' की रचना तिथि का उल्लेख करते हुये कहा है कि–

फाग महीना अष्टमी, सुकल पाख बुधवार।
सबत अठारे सै हुते, सहजो किया विचार।।

अत स० १८०० मे इनका विद्यमान होना निश्चित होता है। वियोगी हरि ने "सत सुधासार" मे तथा आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने "उत्तरी भारत की सत परम्परा" में सहजोबाई का जीवनकाल स० १७४०–१८२० माना है। डा० सावित्री सिन्हा ने "मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियॉ" मे इनका जन्म सन् १७४३ मे माना है।

सहजोबाई ने 'सहज प्रकाश' में स्वय को ढूसर कुल में उत्पन्न एव अपने पिता का नाम हरिप्रसाद बताया है और दिल्ली के समीप परीक्षितपुर में अपना निवास स्थान बताया है। अपने बारे मे उन्होने केवल इतना ही अन्त साक्ष्य दिया है। नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिर्पोट मे भी इन्हे धूसर वैश्य, परीक्षित पुर (दिल्ली) की निवासिनी कहा गया है। "सत सुधासार" में वियोगी हरि के अनुसार "डेहरा गॉव मे वास, राजस्थान में जन्म, जाति ढूसर बनिया, बेष ब्रह्मचारिणी, गुरु चरनदास'', अत सहजोबाई का जन्म राजस्थान के डेहरा गॉव के ढूसर कुल में हुआ था और अनुमान है कि चरणदास जी से दीक्षा प्राप्त करने के उपरान्त वे "परीक्षितपुर" दिल्ली मे निवास करने लगी थीं।

कुछ विद्वानो के मतानुसार ये चरणदास की सगी बहन थीं परन्तु सहज प्रकाश मे स्वय सहजोबाई ने अपने पिता का नाम हरिप्रसाद[1] एव चरणदास जी के पिता का नाम मुरलीधर और माता का नाम कुञ्जोरानी[3] उल्लिखित किया है। चरण दास जी के शिष्य "जोगजीत" द्वारा रचित "लीलासागर" ग्रन्थ से ये चरण दास जी की बुआ की बेटी सिद्ध होती हैं। अत चरणरास जी इनके ममेरे भाई थे। इनके चार भाई राधाकृष्ण, गगा विष्णु, दासकुँवर एव हरिनारायण थे। इनकी शिक्षा घर पर ही हुई थी। ये एकमात्र पुत्री होने के कारण अपने माता–पिता की लाडली थीं। इनके विवाह का प्रसग चरणदास जी के समकालीन शिष्य जोगजीत के लीलासागर ग्रन्थ मे वर्णित है, इसके अनुसार ११–१२ वर्ष की अवस्था मे सहजोबाई का विवाह भार्गव कुल के सुसम्पन्न परिवार मे होना निश्चित किया गया। सहजोबाई विवाह के लिये तैयार हो रही थीं, उसी समय चरणदास जी वहाँ पधारे और उन से बोले–

"सहजो तनिक सुहाग पर, कहा गुथाए सीस।

मरना है रहना नहीं, जाना बिसवे बीस।।

इतना सुनते ही सहजोबाई विवाह का विचार त्याग कर उठ खडी हुईं। सभी सम्बन्धी सहजो को विवाह के लिये समझा रहे थे, किन्तु उनके मन में वैराग्य जाग्रत हो चुका था और वे अपने निश्चय से नहीं डिगीं। इधर यह घटना हुई और उधर बारात पक्ष में बाराती जब आतिश बाजी एव धूम धडाके के साथ द्वार पर आ रहे थे तो बारूद के धमाके से बिदक कर घोडा भाग निकला एव एक पेड से टकरा कर गिर गया और वहीं वर की मृत्यु हो गई। इस हृदय द्रावक समाचार को सुनकर सभी लोग शोक निमग्न हो गये। हरि प्रसाद जी भी चरणदास जी की

---

[1] सहज प्रकाश पृ० ४०

[2] सहज प्रकाश मिश्रित पद पृ० ५०

[3] सहज प्रकाश मिश्रित पद पृ० ५०

२३ नन्हा महा उत्तम का अग

२४ प्रेम का अग

२५ अजपा गायत्री का अग

२६ सत बैराग जग मिथ्या का अग

२७ सच्चिदानन्द का अग

२८ नित्य अनित्य साख्यमत का अग

२९ निर्गुन सर्गुन सशय निवारन भक्ति का अग।

अध्ययन को सुविधा के लिये इसे निम्नाकित बिन्दुओ मे बॉट सकते है –

१ गुरु महिमा २ साधु महिमा ३ अग ४ जीवन की दशाये।

गुरु महिमा

गुरु–महिमा के अन्तर्गत पहले वे चरणदास जी के गुरु शुकदेव जी की वन्दना करती है। तब सभी देवो का देव चरणदास जी की स्तुति प्रारम्भ करती हैं, जो निरालम्ब के आलम्ब, तीनो लोको के स्वामी, अन्तर्यामी, पाप विनाशक, ब्रह्मस्वरूप, त्रिगुणातीत, भक्ति ज्ञान एव योग के राजा एव शरणागत को तुरीयावस्था मे पहुँचा देने वाले हैं[1], स्वय तो ब्रह्म स्वरूप हैं ही, शिष्य को भी ब्रह्मरूप कर देते हैं एव जीव रूप की समस्त आधि-व्याधियो को नष्ट कर देते है।[2]

सहजोबाई ने गुरु की कोटियॉ निर्धारित करते हुये ४ भागो मे बॉटा है।

---

[1] सहज प्रकाश पृ० १

[2] सहज प्रकाश पृ० १

गुरु है चार प्रकार के अपने अपने अग।

गुरु पारस दीपक गुरु, मलयागिरि गुरु भृग।।

सहजोबाई ने अपने गुरु चरणदास मे इन सभी अगो का समावेश एक साथ माना है। वे अपने पारस स्पर्श से लौह रूप शिष्य को कञ्चन मे परिणत कर देते है। पलाश रूप शिष्य को चन्दन मे एव कोट रूप शिष्य को भृगकीट मे और प्रकाशरहित दीपक को अपनी उज्जवल ज्योति देकर प्रज्वलित कर देते है।[२] जिस शिष्य की जैसी बुद्धि है उसमे वैसी ही धारणा जाग्रत करते है।[३] ऐसे समर्थ सद्गुरु को प्राप्त कर लेने के पश्चात सहजोबाई हरि से गुरु की विशेषता बताते हुये गुरु को कभी न छोडने का निश्चय करती है।

राम तजूँ पै गुरु न बिसारू। गुरु के सम हरि कूँ न निहारूँ।।

हरि ने जन्म दियोजग मॉही। गुरु ने आवागमन छुटाहीं।।

हरि ने पॉच चोर दिये साथा। गुरु ने लई छुटाय अनाथा।।

हरि ने कुटुँब जाल मे गेरी। गुरु ने काटी ममता बेरी।।

हरि ने मो सूँ आय छिपायो। गुरु दीपक दै ताहि दिखायो।।[४]

ये कारण है जिससे वे गुरु पर अपना सर्वस्व न्यौछावर करती है और हरि को भी उसके बदले छोडने को तैयार हैं। गुरु का माहात्म्य इतने से ही नहीं समाप्त होता। यदि समस्त पर्वतो

---

[१] सहज प्रकाश पृ० २

[२] सहज प्रकाश पृ० २

[३] सहज प्रकाश पृ० २

[४] सहज प्रकाश पृ० ३

को कूट कर समुद्र मे घोल कर स्याही बनायी जाय और समस्त धरती को कागज बनाकर गुरु की स्तुति की जाय तब भी गुरु की महिमा इतनी अनत है कि वर्णन असम्भव है।[1]

गुरु मार्ग पर चलने का उपदेश देती हुई सहजोबाई का कथन है कि, "गुरु के मार्ग पर दृग रूपी पग रखकर चलना चाहिये, सशय का परित्याग कर देना चाहिये। सहजोबाई तो स्वय को शूरवीर एव सती की कोटि मे रखती है, और गुरु मार्ग से जरा भी नहीं डिगती।[2] गुरु मार्ग पर चलने पर ठग नहीं लगते और कपट एव भय भाग जाते है। गुरु मार्ग मुक्ति का प्रकाश फैलता है, सासारिक कालिमा नष्ट हो जाती है, द्वैत भाव मिट जाता है एव अनादि ब्रह्म का भेद पता चल जाता है।[3]

गुरु चरणो की महिमा व्यक्त करती हुई सहजोबाई कहती हैं कि अडसठ तीर्थों का वास गुरु चरणो में हैं। समस्त ब्रह्माण्ड मे ऐसा अन्य कोई तीर्थ नहीं है।[4] गुरु के चरणोदक का पान कर लेने से सहज ही मुक्ति हो जाती है, जीव ससार में नहीं रह जाता है,[5] अत वे गुरु के चरण कमलों की निशदिन अर्चना करती हैं और किसी अन्य देवता का ध्यान नहीं करती हैं। उनके इष्ट केवल गुरु के चरण ही है।[6] गुरु के चरणों में चित्त रखने से हानि-लाभ, सुख-दुख और मृत्यु भी उन्हे स्वीकार हैं। गुरु के चरण मुक्ति फल को प्रदान करने वाले और सर्वदा सहायक है। आठो सिद्धियो और नवोंनिधियो को नकार कर भी वे गुरु के चरण कमलो मे चित्त रखने की चेष्टा करती हैं, क्योंकि समस्त पदार्थ गुरु के चरणों में हैं। गुरु के चरणों के स्पर्श से

---

१ सहज प्रकाश पृ० ३
२ सहज प्रकाश पृ० ४
३ सहज प्रकाश पृ० ४
४ सहज प्रकाश—१७ पृ० ४
५ सहज प्रकाश—१८ पृ० ४
६ सहज प्रकाश—१९ पृ० ५

समस्त दुख नष्ट हो जाते हैं, तीनो लोको की सत्यता परिलक्षित होने लगती है। मोह, ममता के बन्धन छूटने लगते है आवागमन के बन्धन से मुक्ति मिल जाती है।[1]

गुरु की आज्ञा मानने का निर्देश करती हुई सहजोबाई का कथन है कि गुरु की आज्ञा के बिना कोई कार्य नहीं करना चाहिये, चाहे हानि ही हो जाये। गुरु आज्ञा मानने वाले के मार्ग मे कोई विघ्न नहीं आता है, भक्ति बढती है और शिष्य भवसागर से पार हो जाता है। वही हरि का जन है, साधु है, समस्त भेदो को जानने वाला ज्ञानी है।[2] जो गुरु की आज्ञा नहीं मानते वे आवागमन के चक्र मे बधे रहते है और गर्भवास का कष्ट भोगते है। ऐसे लोगो (गुरु विमुख) का दर्शन, चर्चा वाद-विवाद, एव इनके सग गोष्ठी नहीं करनी चाहिये। इनकी चौरासी योनियो मे भटकने की यातना समाप्त नहीं होती है। ये यम के काल-जाल मे लिपटे रहते हैं। इनका मन मैला और तन अकर्मण्य रहता है।[4] तृष्णा, काम, क्रोध से दग्ध ऐसे दुष्टों की बुद्धि नष्ट हो जाती है, वे लोभ-लहर में डूब जाते है, सपने मे भी इन के चित्त में क्षमा, शील नहीं आता, इनके हाथों में सदैव हिसा का अकुश रहता है।[5]

कृपण के धन के सदृश गुरु के वचनो को सहेज कर हृदय में रखना चाहिये। गुरु के प्रबोधन से ही यम पाश से मुक्ति होती है एव मोह निद्रा टूटती है,[6] कुबुद्धि का नाश होता है, परम गति की प्राप्ति होती है, मनुष्य की जीव बुद्धि का नाश होता है, ईश्वर से साक्षात्कार और अभय की स्थिति प्राप्त होती है।[7]

---

[1] सहज प्रकाश–२० पृ० ५
[2] सहज प्रकाश–२३ पृ० ६
[3] सहज प्रकाश–२३ पृ० ६
[4] सहज प्रकाश–२५ पृ० ६
[5] सहज प्रकाश–२८ पृ० ७
[6] सहज प्रकाश–२९-३० पृ० ७
[7] सहज प्रकाश–३० पृ० ७

गुरु भक्ति का उपदेश करती हुई सहजो कहती हैं कि गुरु यदि लाख बार भी झिडके तो भी गुरु का द्वार नहीं छोडना चाहिये। यही ध्यान की धारणा है। गुरु का दर्शन, गुरु का ध्यान एव कुल अभिमान त्याग कर गुरु की सेवा करनी चाहिये। कृपण कगाल शिष्य को सतगुरु सब कुछ देता हैं। गुरु से न कुछ छिपाना चाहिये न असत्य भाषण करना चाहिये, जो भी भाव हो उन्हे गुरु के सम्मुख व्यक्त कर देना चाहिये।[१]

गुरु महिमा का गान करती हुई सहजोबाई का कथन है कि ससार का कोई भी कार्य गुरु के बिना पूरा नहों हो सकता है। कबीर की भॉति वे भी गुरु का दर्जा ईश्वर से ऊॅचा रखती है। अठारह पुराण, च्रार वेद और छहो प्रकार के ज्ञान से भी गुरु के बिना मर्म भेद नहीं प्राप्त किया जा सकता है।[३] गुरु की कृपा से ही भवसागर से पार पाया जा सकता है और वेदार्थ को गूॅगा भी भाषित कर सकता है।[४] काग (तुच्छ व्यक्ति) हस (निर्मल) की गति को प्राप्त हो जाता है।[५] लोभ, मोह, काम, क्रोध से गुरु ही उबारता है।[६] यह गुरु की ही कृपा है कि जिस लोक मे चीटी जैसी जीव का भी प्रवेश नहीं हो सकता एव सरसों के भी ठहरने की गुजाइश नहीं होती वहीं स्थान गुरु कृपा से निवास स्थान बन गया।[७] यहॉ चीटीं एव सरसो के उदाहरण से कवयित्री का आशय योग मार्ग के दिव्य अनुभवो से है। शिष्य को तो मिट्टी के सदृश होना चाहिये, जो स्वय को गुरु रूप कुम्हार के हाथो मे सौंप दे एव जैसा स्वरूप गुरु चाहे निर्मित करे।[८] गुरु धोबी की तरह शिष्य के कल्मष रूप मल को ज्ञान के साबुन से धो देता है।[९]

---

१ सहज प्रकाश–३५ पृ० ८
२ सहज प्रकाश–३६-३७ पृ० ८
३ सहज प्रकाश–३८ पृ० ८
४ सहज प्रकाश–४१ पृ० ८
५ सहज प्रकाश–४२ पृ० ९
६ सहज प्रकाश–४३-४४ पृ० ९
७ सहज प्रकाश–५३ पृ० ९
८ सहज प्रकाश–५४ पृ० १०
९ सहज प्रकाश–५७ पृ० १०

साधु महिमा

साधु के लक्षण बताती हुई सहजोबाई कहती हैं कि साधु वही है, जो आलस्य और वाद-विवाद छोडकर काया को साधे। ध्यान की धारणा करे, विकलता, निन्दा का परित्याग करे। क्षमाशील और धैर्यवान हो। पॉचो इन्द्रियों को वश मे करके कामनाओं का दमन करे असत्य भाषण का परित्याग एव सत्य भाषण करे।[१] ससार एव उसके भोगो में उदासीन रहे। वह –

निर्गुन ध्यानी ब्रह्म गियानी । मुख सूँ बोले अमृत बानी ।।

निर्दुन्दी निबैरता, सहजो अरू निर्बास । सन्तोषी निर्मल दसा, तकै न पर की आस ।।

जो सोवै तो सुन्न मे, जो जागे हरि नाम । जो बोलै तो हरि कथा, भक्ति करे निष्काम।।[२]

वह निर्गुण का ध्यान करने वाला ब्रह्म ज्ञानी होता है। मुधर वाणी बोलता है। वह दुख द्वन्द से दूर रहता है, उसका कोई शत्रु नहीं होता है, उसका कोई घर नहीं होता है। वह शून्य समाधि में सोता है। जाग्रतावस्था में हरिनाम स्मरण करता है। बोलने की स्थिति मे केवल हरिकथा उच्चरित होती है और वह निष्काम भक्ति करता है। यहॉ पर सहजोबाई गीता के भक्तियोग से प्रभावित हैं। साधु विद्या एव वाद-विवाद में सुखी नहीं होते हैं। वे तो केवल शून्य समाधि में परमात्मा से नित्य विहार की स्थिति में सुखी रहते हैं। सहजो को इस सृष्टि में धनवान, निर्धन, रक, राजा सभी दु खी दिखाई देते हैं। वे कहती हैं कि तृष्णा रोग नाश से ही साधु सुखी रहते हैं। सुख तो अपने अन्दर है उसे बाह्य जगत मे स्त्री पुत्र महल में खोजना व्यर्थ है।

---

१ सहज प्रकाश–२१ पृ० १४

२ सहज प्रकाश–२२-२४ पृ० १४

ना सुख दारा सुत महल, ना सुख भूप भये।

साध सुखी सहजो कहैं, तृस्ना रोग गये।।[१]

द्वादस प्रकार के साध एव दुष्ट वचनों का मात्र नामोल्लेख ही सहजोबाई ने किया है।

निर्गुण पथ मे सत्सग का बडा ही महत्व है, सत्सग मे दिव्य यौगिक क्रियाओं एव अनुभवो को साधक साधना पथ मे अग्रसर अन्य सतो से सम्पर्क कर प्राप्त करता है। ऐसे सतो एव साधुओ का ससर्ग सहजोबाई की दृष्टि में जैसे ईश्वर से साक्षात्कार के समान है।[२] इनके दर्शन से समस्त कामनाये नष्ट हो जाती है एव चित्त मे स्थिरता आ जाती है।[३] समस्त दुखो का नाश हो जाता है, जन्म–मरण की पीडा मिट जाती है।[४] सत्सगति से तीनों ताप (दैहिक, दैविक, भौतिक) नष्ट हो जाते हैं और काग हस की गति को प्राप्त हो जाता है।[५]

सहजोबाई दुष्टो को भक्ति, योग और ज्ञान को दृढ करने वाला मानती है। इनके द्वारा दिये गये तानों से ये और भी पुष्ट होते है।[६] दुष्ट जन धन्य है जो निन्दा करके सज्जनों के जो पाप होते हैं उनकों भी हर लेते हैं। दुष्ट जन बडे महान त्यागी होते हैं। वे सत्सग, गुरुचरण, भक्ति, ध्यान-धारणा, उत्तम कोटि का व्यवहार, सत्यवचन, क्षमा, वैराग्य, सतोष एव ईश्वर की ओर जाने वाले मार्ग का परित्याग करते हैं।[७]

---

[१] सहज प्रकाश–४१ पृ० १५
[२] सहज प्रकाश–४ पृ० १२
[३] सहज प्रकाश–३ पृ० १२
[४] सहज प्रकाश–५-६ पृ० १२
[५] सहज प्रकाश–१०-१६ पृ० १२-१३
[६] सहज प्रकाश–१८ पृ० १३
[७] सहज प्रकाश–१९ पृ० १३

अंग

वैराग उपजावन का

हरि नाम स्मरण करना चाहिये एव ससार से स्नेह का परित्याग करना चाहिये, क्योंकि इस ससार मे अपना तो कोई भी नहीं है, शरीर भी नहीं।[1] ससार का त्याग कर देना चाहिये, अन्यथा ससार तो अन्त मे छूट ही जाता है।[2] ससार मे सुख-दुख उसी प्रकार लगा रहता है जैसे लोहे की सडसी का स्पर्श एक क्षण मे जल से और दूसरे क्षण अग्नि से होता है।[3] समस्त सासारिक नाते झूठे है, घर द्वार झूठा है। (वास्तविक नाता और घर तो दूसरा है) जब तक चावल धान मे रहता है तब तक उसमे उत्पन्न होने का गुण रहता है। जैसे ही ससार रूप छिलका उतर जाता है (जीव के सदर्भ में मुक्ति) उत्पत्ति का क्रम समाप्त हो जाता है।[4] समस्त सासारिक सबध बीच के हैं, अर्थात जन्म के पश्चात बनते है और मृत्यु के पश्चात समाप्त हो जाते है।[5] इसमें आदि अन्त नहीं है कभी वह तेरा पिता था, कभी तेरा पुत्र, कभी तेरा मित्र था, और कभी तेरा शत्रु, चौरासी योनि चक्र में तो बहुत से मिले और छूटे, तो शोक किसके लिये है, शरीर से, तो वह तो तुम्हारे सम्मुख अक्षत पडी है और यदि आत्मा से तो वह तो अजर अमर है।[6] यहॉ पर सहजोबाई शकराचार्य के दर्शन से प्रभावित दिखती है

---

[1] सहजो भज हरि नाम कूँ तजो जगत सूँ नेह।
अपना तो कोई है नहीं अपनी सगी न देह।। सहज प्रकाश पृ० १६

[2] सहजो भज हरि नाम कूँ तजो जगत सूँ नेह।
अपना तो कोई है नहीं अपनी सगी न देहा।। सहज प्रकाश पृ० १६

[3] सहज प्रकाश - पृ० १६

[4] सहज प्रकाश– पृ० १६

[5] सहज प्रकाश– पृ० १६

[6] सहज प्रकाश– पृ० १९

पुनरिपि जनन पुनरपि मरण, पुनरपि, जननी जठरे शयनम्।

इह ससारे खलु दुस्तारे, कृया पारे पगहि मुरारे।।

कस्तव कोऽह कुत आयात , का मे जननी को मे तात।

इति परिभावय सर्वम् सारम्। विश्व त्यक्तवा स्वप्न विचारम्।।

रोग, मृत्यु और दुख के समय कोई किसी का साथ नहीं देता है, इतने पर भी लोग उन्हे अपना सगा कहते हैं, ये अन्धे नहीं तो और क्या है।[१] दर्द बॉट नहीं सकते, मरने पर साथ जा नहीं सकते हैं, जैसे वृक्ष से पत्ते विलग होते हैं, मुॅह से बात निकलती है वैसे ही शरीर से प्राण अलग हो जाते हैं।[२] हिरण्याकश्यप, दुर्योधन, शिशुपाल, कुभकर्ण, और रावण जैसे महाबली भी काल से नहीं बच सके।[३] मृत्यु तो धनी-निर्धन के लिये एक जैसी है। सबको मरकर एक ही जगह जाना है। यदि स्वय का जीवन स्थिर रहने वाला हो तो किसी की मृत्यु का शोक मनाया जाय, लेकिन यहॉ ससार में तो सभी जलमार्ग के पथिक हैं।[४] ससार रूप वृक्ष के नीचे बैठते-बैठते बहुत से लोग चले गये। सहजोबाई ने ससार की नश्वरता का रूपक 'रस्ता बहता रहे''[५] के रूप में बॉधा है पथिक तो चलते ही हैं किन्तु "रस्ता बहता रहे" में गम्भीर व्यजना है। मानों रास्ता स्वय काल तक ले जा रहा हो। जीव के प्रति कथन है कि ससार के देखते-देखते तुम काल का ग्रास बनोगे और तुम्हारे देखते-देखते ससार। यही रीति है। बहुत आते हैं, बहुत जाते हैं इसे ज्ञान

---

१ सहज प्रकाश- पृ० १७

२ वही - पृ० १७

३ वही - पृ० १८

४ वही- पृ० १८

५ यह रस्ता बहता रहे थमै नहीं छिन एक। सहज प्रकाश ३३ पृ० १८

चक्षुओ से देखो एव व्यर्थ चिन्तन न करो।[1] यहॉ पर सहजो बाई शकराचार्य के सदृश लोक और जीव की निस्सारता प्रतिपादित करती है।

नाह न त्व नाय लोक। तदपि किमर्थं क्रियते शोक ।।

अत बहुत खो चुका, थोडा ही बचा है, यह भी नहीं रहना है। ईश्वर की भक्ति के बिना जीवन व्यर्थ जा रहा है, इसका मन में विचार करना चाहियें।[2]

नाम का अग

नाम का अग मे नाम स्मरण की महत्ता प्रतिपादित की गई है। नाम स्मरण से चौरासी लाख योनियो के दुख, यम की फॉस, छप्पन नरको के त्रास एव गर्भ वास से मुक्ति मिल जाती है।[3] जिस घट में राम का नाम है वह मगल रूप है, राम-नाम से रहित सुन्दर, धनवान राजा भी धिक्कार के योग्य है।[4] राम-नाम नौका के सृदश है जिसका सहारा लेकर भवसागर से पार पाया जा सकता है। जो नामस्मरण नहीं जानते वे तो मझधार में डूब ही जाते हैं।[5] स्वर्ण दान, गजदान, और भूमिदान कुछ भी हरिनाम स्मरण की बराबरी नहीं कर सकते।[6] वर्षा, शीत और ग्रीष्म को सहन करके किया गया तप भी राम के नाम से छोटा है।[7] इन्द्र का पद एव ब्रह्मा की आयु मिले तब भी मृत्यु तो अवश्यभावी है।[8] राम का नाम लेकर अन्य सबको न्यौछावर कर देना चाहिये।

---

[1] सहज प्रकाश ३४ - पृ०-१८

[2] बहुत गई थोडी रही, यह भी रहसीनाहि दो० पृ०-४९
जन्म जाय हरि भक्ति बिनु सहजो झुर मन मॉहि ।। पृ०-२०

[3] सहज प्रकाश पृ०-३१

[4] सहज प्रकाश ९ - पृ०-३०

[5] सहज प्रकाश १० - पृ०-३०

[6] सहज प्रकाश १३ - पृ०-३०

[7] सहज प्रकाश १४ - पृ०-३०

[8] सहज प्रकाश ३ - पृ०-३०

तीनो लोको का राज्य भी अन्त समय छूट जाता है।[1] भक्ति के बिना योग-यज्ञ, आचार-विचार सभी निस्सार है। मनुष्य की देह प्राप्ति का अवसर दुर्लभ है, इस दुर्लभ सयोग का लाभ हरिनाम स्मरण करके उठा लेना चाहिये।[2] सहजो बाई ने नाम स्मरण की महत्ता कबीर आदि सतकवियो के समान ही स्वीकार की है, साथ ही नाम स्मरण की विधि के बारे में वे निर्देश देती हैं, कि हृदय मे छिपाकर नाम स्मरण करना चाहिये, होठ भी नहीं हिलने चाहिये, केवल ईश्वर के अतिरिक्त और कोई न जान सके।[3] बैठकर, लेटे हुये, चलते समय, खाते समय, जब भी जहॉ भी सभव हो नाम स्मरण करते रहना चाहिये[4] जिससे नामस्मरण का तार न टूट जाये।[5] अठ्ठारह पुराणों और चारों वेदों मे नाम स्मरण की विशेषता बताई गई है, अत भगवन्नामस्मरण ही विवेक पूर्ण है। नाम स्मरण करना भी सब नहीं जानते, करोडों में कोई एक ही जानता है।[6]

नन्हा महाउत्तम का अग

"नन्हा महाउत्तम का अग" में लघु बनने में महा सुख है और बडप्पन निकृष्ट चीज है, इस तथ्य का प्रतिपादन किया गया है। तारे अत्यन्त सुखी है उनको कभी ग्रहण नहीं लगता है, जबकि सूर्य चन्द्र जो बडे है और ससार को आलोकित भी करते है, उनको ग्रहण लगता है।[7] नाहर विशाल पशु है वह उजाडते हुये घूमता फिरता है, जबकि नन्हीं बकरी को सभी प्यार करते हैं।[8] शीश, कान, मुख, नाक बडे-बडे नाम है, किन्तु नीचे रहने के कारण चरणों की ही

---

[1] सहज प्रकाश ४ - पृ०-३०
[2] सहज प्रकाश ६ - पृ०-३०
[3] सहज प्रकाश १६ - १७ पृ०-३१
[4] सहज प्रकाश १८ पृ०-३१
[5] सहज प्रकाश १९ पृ०-३१
[6] सहज प्रकाश २० - २१ पृ०-३१
[7] सहज प्रकाश २ पृ०-३३
[8] सहज प्रकाश ३ पृ० ३३

पूजा होती है।[१] चींटी लघु होने के कारण हर स्थान मे जाकर रसास्वादन कर लेती है, जबकि विशाल होने के कारण हाथी अपने सिर पर धूल ही डालता है।[२] द्वितीया के चन्द्रमा का सभी दर्शन करते हैं, वही चन्द्रमा छोटे से दिन रात बढता है और पूर्ण रूप प्राप्त करता है। पूर्ण रूप प्राप्त करते ही वह आदर नहीं रह जाता है और सभी कलाये घट जाती हैं, एव जरा सी भी रेखा नहीं रह जाती है।[३] छोटा बालक राजा के महल में प्रवेश पा सकता है। स्त्री भी उससे परदा नहीं करती है, और उसे गोद मे खिलाती है।[४] ईश्वर के दरबार में भी अभिमानी (बडा) व्यक्ति नहीं जा सकता है, द्वार से ही उसकी प्रताडना प्रारम्भ हो जाती है।[५] अत गुरु के वचनो को सम्हाल कर नन्हा बनने की चेष्टा करनी चाहिये।[६]

प्रेम का अंग

"प्रेम का अग" में प्रेम के कारण साधक की क्या दशा होती है, इसका वर्णन है। जो मतवाला होता है उसका मन चकना चूर होता है, केवल अपने इष्ट को देखकर प्रसन्न रहता है प्रेम रस में निमग्न रहकर घूमता है। सुधि-बुधि चली जाती है, शरीर का भी भान नहीं रहता है राजा रक सब उसके लिये समान होते हैं। जाति वर्ण के भेद मिट जाते हैं। वाणी बहकने लगती है, मुख से हँसी छूटती है, नेत्रों से अश्रु प्रवाहित होते हैं, ससार उन्हें पागल कहता है, नियम धर्म सब खो जाता है, सगे सबधी दूर हो जाते हैं, लोग उसकी अवस्था पर हँसते है और वह

१ सहज प्रकाश ४ पृ० ३३
२ सहज प्रकाश ५ पृ० ३३
३ सहज प्रकाश ६-७ पृ० ३३
४ सहज प्रकाश ८ पृ० ३३
५ सहज प्रकाश ९ पृ० ३३
६ सहज प्रकाश १ पृ० ३२

अपने मन मे आनन्दित रहता है। शरीर प्रेम में मत्त होने के कारण डॉवाडोल रहता है, पैर कही के कहीं पडते हैं। न वह किसी के सग रहता है न कोई उसके सग रहता है।[1]

अजपा गायत्री का अग

"अजपा गायत्री का अग" मे आत्मा द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति की प्रक्रिया बताई गई है, इस स्थिति में जिह्वा, तालु के बिना भी नाम स्मरण होता है। हसा सोह के तार में सुरति रूपी मोती पिरोकर उसके उतार चढाव से ही स्मरण का ज्ञान होता है। बाह्य उपादान (माला इत्यादि) कारक नहीं होते है। षट्चक्रो (मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा) का भेदन करने के पश्चात जब कुन्डलिनी शक्ति जाग्रत होती है, तो सहस्रार के शतदल कमल से अमृत रस की वर्षा होती है, इसे ही वे "कला गगन मे खाय" कहकर अभिहित करती है। शून्य मे टकटकी लग जाती है, सहज ही श्वॉस मे तीर्थों का पुण्य रस बहने लगता है जो भी इसमे नहा उठता है उसके पाप पुण्य दोनो छूट जाते हैं यही अजपा जाप की स्थिति है।[2]

सत्त बैराग जगत मिथ्या का अंग

"सत्त बैराग जगत मिथ्या का अग" में वैराग्य ही सत्य है, और ससार मिथ्या है, यह तथ्य प्रतिपादित किया गया है। ससारी जीव अज्ञान की स्वप्नावस्था में लीन रहते हैं, इस अवस्था में ही रोग, भोग और सयोग होते है।[3] यदि ज्ञान की दृष्टि हो तो करोडों वर्ष एक क्षण जैसे प्रतीत होते हैं, लेकिन स्वप्न मे सोया होने के कारण, वास्तविकता का ज्ञान नहीं रहता है।[4] स्वर्ग लोक,

---

[1] सहज प्रकाश पृ० ३४-३५

[2] सहज प्रकाश पृ० ३५

[3] सहज प्रकाश पृ० ३६

[4] सहज प्रकाश पृ० ३६

मृत्यु लोक, पाताल लोक, सब मिथ्या हैं, तीनो लोक इन्द्रजाल के सदृश छल रूप है। मृगतृष्णा का जल तब तक सत्य मालूम होता है जब तक, उसके निकट न जाया जाय उसी तरह जब तक सतगुरु की कृपा दृष्टि नहीं मिलती, तब तक यह ससार भी सत्य प्रतीत होता है। ज्ञानी को ससार असत्य और अज्ञानी को सत्य प्रतीत होता है। ससार की नश्वरता का प्रतिपादन सहजोबाई भोर के तारे के रूपक से करती है –

जगत तरैया भोर की, सहजो ठहरत नाहि।

जैसे मोती ओस की, पानी अजुली माहि।।

जो ज्यादा देर नहीं ठहरता है। यह उसी प्रकार अल्प जीवन वाला है जैसे ओस कणो को मोती समझने की भूल करना एव पानी को अजलि मे भरकर रखने की अभिलाषा। धुयें के गढ मे राज्य करने की इच्छा की तरह यह सत्य नहीं हो सकता है। केवल आत्मा ही नित्य है इसी नित्य रूप की पहचान करनी चाहिये, जिसे काल भी नष्ट नही कर सकता हैं।[3]

सच्चिदानन्द का अंग

"सच्चिदानन्द का अग" में **ब्रह्म के स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है। ब्रह्म** सत्-चित्-आनन्द रूप हैं। यह न तो नया है, न पुराना। इसमे घुन नहीं लगता, न यह मारने पर ही मर सकता हैं। इसमे भय भी व्याप्त नही होता है न इसमें कीडा लगता है, न नष्ट होता है, न घटता है, न किसी के आश्रय मे है, इसका रूप, वर्ण, रग, शरीर, मित्र, इष्ट जाति-पॉति, घर

---

1 सहज प्रकाश पृ० ३६

2 सहज प्रकाश पृ० ३६

3 सहज प्रकाश पृ० ३६

कुछ भी नहीं है। न इसकी उत्पत्ति होती है न मृत्यु, न यह बासी ही होता है। रात्रि, दिन, शीत उष्ण कोई स्थिति इसके साथ नहीं है, न तो इसे आग जला सकती है, न शस्त्र काट ही सकते है, धूप सुखा भी नहीं सकती है, पवन उडा नहीं सकता है। उसके न पिता है न माता है, न कुटुम्ब, न वह रक है न राजा, उसका आदि, अत, मध्य कुछ भी नहीं है। न तो प्रलय में आता है न पुन ·उत्पत्ति होती है। उस अनादि ब्रह्म को ह्रदय मे खोजना चाहिये उसकी प्राप्ति का अन्य कोई साधन नहीं है।[1]

नित्य अनित्य साष्य मत का अग

"नित्य अनित्य साष्य मत का अग" मे साष्य मत के नित्य अनित्य दोनों मतो का वर्णन है। दोनों का उद्देश्य मुक्ति पाना ही है। जाग्रत, सुषुप्त एव स्वप्न ये तीनों अवस्थायें शरीर से ही होती हैं। घटती, बढती एव क्षीण हो जाती है। आत्मा तुरीयावस्था में पहुँचकर इनके परे देखने की सामर्थ्य प्राप्त करती हैं। इन्द्रियॉ और मन उस अपार तत्व को नहीं देख सकते। जिह्वा न तो उसका आस्वादन कर सकती है न कान उसकी आवाज सुन सकते हैं। नेत्र उसे देख भी नहीं सकते हैं। नासिका एव त्वचा भी उसका सज्ञान प्राप्त नहीं कर सकती, उसे तो केवल अनुभव से जाना जा सकता है। चित्त, बुद्धि इस सदर्भ मे थक जाती है। जिसे तीनों प्रकार की हॅकार का ज्ञान है वह भी उसे नहीं प्राप्त कर पाता है। रस, रूप, गन्ध, शब्द, स्पर्श से रहित वह तो कुछ और ही है। तीनों गुणो (सत्, रज, तम) से परे त्रिगुणातीत उसे केवल चेतना की दृष्टि से देखा जा सकता है।[2]

सहज प्रकाश पृ० ३६-३७
सहज प्रकाश पृ० ३७-३८

निर्गुन-सर्गुन सशय निवारन भक्ति का अंग

''निर्गुन-सर्गुन सशय निवारन भक्ति का अग ' मे निर्गुण और सगुण ईश्वर की एकता प्रतिपादित की गई है। वह निर्गुण-सगुण दोनो है। भक्तों के उद्धार हेतु निर्गुण से सगुण होता है।

"निर्गुन सूँ सर्गुन भये, भक्त उधारनहार"[१] अयोध्या और वृज मे वही प्रकट हुये और अपार कौतुक किया। उसके नाम, रूप, कौतुक सव अनन्त है। गीता मे भी कृष्ण ने चर-अचर सब मे अपना निवास बताया है।[२] वह निराकार है फिर भी सभी रूपो मे व्याप्त है। निर्गुण है फिर भी गुणवान है। है भी और नहीं भी है। उसका कोई नाम भी नहीं है और सब नाम भी है। कोई रूप नहीं है और सब रूप भी है। इस तरह सब कुछ ब्रह्म रूप है, प्रकट रूप में भी और गुप्त रूप में भी।[३] ज्ञानी उसे अपने निकट अर्थात अन्तर्मन में ही प्राप्त कर लेता है और मूर्ख को वह दूर हीं दिखाई देता है।[४] योगी योग से, ज्ञानी विचार से, एव भक्त भक्ति से प्राप्त करता है।[५] सगुण एव निर्गुण मे जल एव पाले और सूर्य एव धूप की तरह कोई अन्तर नहीं है।[६] यह वही व्रह्म है जिनका ध्यान ब्रह्मादिक करते है। शिव सनकादि जिनका पार नहीं पाते। वही सखियों के साथ रास करते है। अनन्त लोकों की सर्जना एव सहार करते है, वही मोहन एव वृजराज कहलाते हैं। सयम, साधन एव ध्यान जिन ग्वालों को नहीं आता उन्हीं के सग क्रीडा करते हैं।[७] यहॉ पर

---

१ सहज प्रकाश पृ० ३८

२ सहज प्रकाश पृ० ३९

३ निराकार आकार सब, निर्गुन और गुनवन्त।
है नाहीं सू रहित है सहजो यो भगवन्त।।
नाम नाही औ नाम सब, रूप नहीं सब रूप।
सहजो सब कुछ ब्रह्म है, हरि परगट हरि गूप।। सहज प्रकाश पृ० ३८

४ ज्ञानी पावै निकट ही मूरख जानै दूर। सहज प्रकाश पृ० ३९

५ सहज प्रकाश पृ० ३९

६ सहज प्रकाश पृ० ३९

७ सहज प्रकाश पृ० ३९

सहजोबाई सगुण एव निर्गुण ब्रह्म को एक ही मानती है, कबीर की तरह उनका ब्रह्म पुहुप बास ते पातरा, धुँवा से अति झीन तो है ही, साथ ही वह सब नाम रूप गुण मे समाया है। समस्त चेतना उसी की है और अयोध्या और बृज मे कौतुक करने वाला भी वही है।

दशायें

दशाओ के अन्तर्गत जन्म दशा, मृत्युदशा, वृद्धावस्था, काल मृत्यु एव अकाल मृत्यु का वर्णन है। जीवन वेदना (प्रसव) से प्रारम्भ होकर वेदना (मृत्यु) मे पर्यवसित होता है। यह वर्णन बहुत ही सजीव एव वास्तविक है, किन्तु एक तरह से जीवन के प्रति वितृष्णा एव विगर्हणा का भाव भी जगाता है। जन्मदशा का वर्णन करती हुई सहजोबाई ये घृणास्पद चित्र खींचती है -

पापी जीव गर्भ जब आवै, भवन अधेरे वहु दुख पावै।

तल मूडी ऊपर को पाऊँ, मुख लिगी और विष्ठा ठाऊँ।।[१]

युवावस्था मे यौवन के मद में मत्त, विषय वासना में रगा, शक्ति में चूर पतनोन्मुख युवक का खाका कुछ इस तरह है

तरूनापा भया सकल शरीरा, अधा भया बिसारि हरि हीरा।।

विषय वसना मे मद मातो अहै आपदा के रग रातो।।

मूँछ मरोड अकडता डोलै, काहू ते मुख मीठ न बोलै।।

कहै बराबर मेरे नाहीं, बुद्धिमान कोई या जग नाहीं।।

---

१ सहज प्रकाश पृ० २२

२ सहज प्रकाश पृ० २४

बाल्यावस्था एव युवावस्था तो बिना किसी चिन्ता के बीत गई अब उसे अपनी असहाय स्थिति का ज्ञान होता है।

लागी विरध अवस्था चौथी, सहजो आगे मौताहि मोती।।
हाथ पैर सिर कॉपन लागे, नैन भये बिनु जोति अभागे[1]
जिस स्त्री-पुत्र के लिये सब कुछ किया वे अब पास भी नहीं फटकते
पूत बहू लख नाक चढावै, बहुत पुकारै निकटन आवै
निहुरि चलै लकडी ले हाथा, स्वजन कुटुम्ब नहि दुख के साथा।
तिन के मोह तजे जगदीसा, अब मन मे कलपै धुनि सीसा।
चरण दास गुरु कही विसेषी, हरि बिनयो जग जाता देखी।।[2]

ससारी जीव की करूण एव उपेक्षित स्थिति को व्यक्ति कर वे ससार की नि सारता प्रतिपादित करती हैं। मृत्यु की स्थिति तो अत्यन्त भयावह है -

[3] सहजो मृत्यु आइया, लेता पॉव पसार।
नैन फटे नाडी छुटी, सोही रहा निहार।।
सहजो मिरतू के समय पीडा होय अपार।
बीछू एक हजार ज्यो, डक लगै इकसार।।

---

[1] सहज प्रकाश पृ० २५
[2] सहज प्रकाश पृ० २५
[3] सहज प्रकाश दोहा ८४ पृ० २५

इस तरह समस्त जीवनका एक करूण, वीभत्स, नैराश्यपूर्ण एव विकर्षणयुक्त वर्णन सहजोबाई करती हैं, और मनुष्य मात्र को प्रबोधित करती हैं कि जो दिखाई पड रहा है वही सत्य नहीं है, उसके परे भी सत्य है, और वही परमसत्य है, वही सबका गतव्य है।

व्यक्तियो के कर्म ही उसके अगले जन्म का निर्धारण करते है। यह भारतीय चिन्तन का एक अनिवार्य अग है। "कर्म के अनुसार योनि" पर प्रकाश डालती हुई सहजोबाई भी इसमे विश्वास व्यक्त करती है -

पसु पछी नर सुर असुर, जलचर कीट पतग।

सबही उत्पत्ति कर्म की, सहजो नाना अग।।[१]

शरीर त्याग के समय जैसी आशा मन में रहती है वैसा ही जन्म एव वैसे ही घर मे वास मिलता है।[२] जिसकी कामना घर की होती है वह घूँस होकर घर में निवास करता है। धन की कामना होने पर काले नाग का जन्म मिलता है। स्त्री मे आसक्ति हो तो स्वान का जन्म मिलता है। श्रेष्ठ पुरुष की कामना हो तो भगी के घर कुतिया का जन्म मिलता है। पुत्र की आशा हो तो नीच वर्ण के व्यक्ति के घर मे सुअर होकर रहता है। वाहन की इन्छा हो तो अश्व योनि मिलती है। जहॉ जिसकी वासना रहती है वह वहीं जाता है।[३] अत वे वासना त्याग का मत्र देती है जो उनके गुरु ने उन्हे दिया है,[४] क्योंकि –

---

१ सहज प्रकाश पृ० २०

२ सहज प्रकाश पृ० २०

३ सहज प्रकाश पृ० २०-२१

४ चरणदास गुरु मोहि बताई।
तजो वासना सहजोबाई।। सहज प्रकाश पृ० २१

धन यौवन सुख सम्पदा, बाहर की सी छाँह।

सहजो आखिर धूप है, चौरासी के मॉह।।[1]

सोलह तिथि निर्णय

यह उनकी दूसरी प्राप्त रचना है। यह वेलविडियर प्रिटिग प्रेस से प्रकाशित "सहजोबाई की बानी" मे सकलित है। यह रचना "कुडलिया छद मे है। छदविधान का समुचित निर्वाह इसमे नहीं है। प्रत्येक तिथि के नाम का प्रथम अक्षर लेकर पद प्रारम्भ किया है। सोलह कुण्डलियो और चार दोहो मे यह रचना सम्पूर्ण हुई है। वर्ण्य विषय इसमें भी सहज प्रकाश का ही है जैसा कि वे स्वय कहती है।

चरनदास के चरन कूँ निस दिन राखूँ ध्यान।

ज्ञान भक्ति और जोग कूँ, तिथि में करूँ बखान।।[2]

पूर्णिमा तिथि के प्रसग में गुरु की महत्ता इस तरह प्रतिपादित की है -

पूनो पूरा गूरु मिलै मेटै सब सन्देह।
सोवत सूँ चेतन्न होय देखै जाग्रत गेह।।
देखै जाग्रत गेह जहाँ सूँ सुपने आयौ।
जग कूँ जान्यौ साँच रूप अपनो बिसरायौ।।
चरनदास कहै सहजिया गुरु चरनन चित लाव।
तिमिर मिटै अज्ञान कूँ, ज्ञान चाँदनो पाव।।[3]

---

१ सहज प्रकाश पृ० २१
२ सहजोबाई की बानी पृ० ४१
३ सहजोबाई की बानी पृ० ४५

पूर्णिमा की चॉदनी एव गुरु प्रदत्त ज्ञान के प्रभाव का चित्रण एक साथ एक अनूठा प्रयोग है।

सात वार निर्णय

यह उनकी तीसरी रचना है। यह भी सहजोबाई की बानी मे सकलित है। सात दिनों का वर्णन इस रचना मे है। यह भी कुण्डलिया छन्द मे है। चार दोहो एव सात कुण्डलियो मे रचना पूर्ण हुई है। इसका प्रतिपाद्य भी गुरु कृपा एव ससार की वास्तविकता है –

सात वार ये मै कहे, जा मे हरि का भेद।

जो कोई समुझै प्रीति सूॅ, छूटे सबही खेद।।

सातो वारों बीच मे, जग उपजै मिटि जाय।

सहजोबाई हरि जपो, आवागमन नसाय।।[१]

ससार की उत्पत्ति एव नाश इन्ही सातो दिवसो के क्रम में होता है। कुछ उदाहरण देखने योग्य है –

वृहस्पति·

वृहस्पति वारी आइया, पाई मनुखा देह।

सो तन छिन छिन घटत है, भयौ जात है खेद।।[२]

---

१ सहजोबाई की बानी पृ० ४७

२ सहजोबाई की बानी पृ० ४६

शुक्र

सुक्कर सर उपदेश का, लगा कलेजे नाहि।

ते नर पसू समान है, या दुनिया के मॉहि।[1]

इसी तरह अन्य दिनों का वर्णन है।

मिश्रित पद

पद शैली मे रचित ये पद भी सहजोबाई की बानी में सकलित है। ये विभिन्न राग रागिनियो मे निबद्ध हैं। इनकी सख्या चालीस है। इनका वर्ण्य विषय, गुरु की महिमा, स्वय की दैन्यता, भक्ति-ज्ञान की श्रेष्ठता है। सहज प्रकाश मे जहॉ ज्ञानी का ज्ञान है, वहीं इन पदो मे भक्त का हृदय है। कही-कहीं इन पदो मे सूर, तुलसी एव मीरा का सा भाव सौन्दर्य परिलक्षित होता है। इन पदो मे विनय की सातों स्थितियॉ एव शरणागति के छहों तत्व यत्र तत्र परिलक्षित होते हैं। गुरु की वन्दना करती हुई सहजोबाई उन्हे अभयदान दाता दुखहर्ता, पाप विनाशक कहती है।

हमारे गुरु पूरन दातार।

अभयदान दीनन को दीन्हें, कीन्हे भवजल पार।

जन्म जन्म के बधन काटे, यम को बध निवार।

देवै ज्ञान भक्ति पुनि देवै योग बतावन हार।

सब दुख गजन पातक भजन, रजन ध्यान विचार।

साजन दुर्जन जो चलि आवै एकहि दृष्टि निहार।

ऑनद रूप सरूप मई है, लिप्त नहीं ससार।[2]

---

[1] सहजोबाइ की बानी पृ० ४६

एक पद मे किशोर कृष्ण के रूप सौन्दर्य का वर्णन अत्यन्त मनोहारी शैली मे है एव मीरा के से पद का आभास देता है। अपनी लयात्मकता, सगीतात्मकता, कलात्मकता मे बेजोड यह पद श्री कृष्ण की नृत्य मुद्रा का है –

मुकट लटक अटकी मन मॉही।

नृत तन नटवर मदन मनोहर, कुण्डल झलक अलक बिथुराई।

नाक बुलाक हलत मुक्ताहल, होठ मटक गति भौंह चलाई।

ठुमुक-ठुमुक पग धरत धरनि पर बॉह उठाय करत चतुराई।

झुनक-झुनक नूपुर झनकारत, तताथेई थेई रीझ रिझाई।

चरनदास सहजो हिये अन्तर, भवन करौ जित रहौ सदाई।[1]

दैन्य भाव से ओत प्रोत एक पद मे उन्होने स्वय को महाअवगुणी एव खोटे कर्मों से युक्त बताया है- यहॉ पर विनय की प्रथम एव शरणागति की छठी स्थिति दीनता के कथन से जीव की लघुता एव प्रभु की सर्वशक्तिमत्ता का उल्लेख है।

तुम गुनवत मैं औगुन भारी।

तुम्हरी ओट-खोट बहु कीन्हें , पतित उधारन लाल बिहारी।

खान पान बोलत अरु डोलत पाप करत है देह हमारी

कर्म बिचारौ तौ नहि छूटौं, जौ छूटो तौ दया तुम्हारी।[2]

यह तो जीव का कर्तव्य है, ईश्वर का क्या कर्तव्य है वह भी याद दिलाना वे नहीं भूलती

---

२ मिश्रित पद पृ० ४९

१ मिश्रित पद पृ० ५१

२ मिश्रित पद पृ० ५६

हमरे औगुन पै नहि जाओ, तुमही अपना बिरद सम्हारो।

पतित उधारन नाम तुम्हारो यह सुनके मन दृढता आई।[1]

इसी तरह एक अन्य पद मे ईश्वर को माता एव स्वय को पुत्र कहकर सबध निर्वाह की कामना की है -

इस पद में विनय की पॉचवी स्थिति आश्वासन एव शरणागति की चतुर्थ स्थिति "रक्षक के रूप मे वरण" का उदाहरण प्राप्त होता है।

हम बालक तुम माय हमारी। पल-पल मॉहि करो रखवारी।

निस दिन गोदी ही मे राखो। इत वित वचन चितावन भाखो।

मै अनजान कछू नहि जानूॅ। बुरी भली को नहि पहिचानूॅ।

मारौ झिडकौ तौ नहि जाऊॅ। सरक सरक तुम ही पै आऊॅ।[2]

इन पदो मे सूर एव तुलसी की सी दैन्य भावना परिलक्षित होती है तुलसी जहॉ

तू दयालु दीन हौ तू दानि हौ भिखारी

हौ प्रसिद्ध पातकी तू पाप पुञ्ज हारी

तात मात, गुरु सखा तू सब विधि हेतु मेरो

---

१ मिश्रित पद पृ० ५७

२ मिश्रित पद पृ० ५७

कहकर स्वय को दीन, भिखारी, पातकी कहते है एव तात, मात, गुरु, सखा सब कुछ उन्हीं परमेश्वर को मान अपना सब कर्म उन्हे सौप देते है वहीं सहजोबाई भी -

मै अजान तुम सब कुछ जानो, घट-घट अतरजामी।

मै तो चरनन तुम्हारे लागी, हो किरपाल दयालहि स्वामी।[1]

कहकर दर्शन की निधि के लिये उन्हीं के द्वार पर पडी रहती है।

जीव का प्रबोधन करती हुई वे उसे ससार मे आने के वास्तविक कारण का बोध कराती हैं, कि क्या उसका जन्म मात्र पेट भरकर सोने के लिये है? नहीं, उसे तो भजन के द्वारा परमार्थ का द्वार खोजना है- यह पद विनय की चतुर्थ स्थिति भर्त्सना का उदाहारण प्रस्तुत करता है।

जग मे कहा कियौ तुम आय।

स्वान की ज्यों पेट भरि कै, सोवौ जन्म गॅवाय।

पहर पिछले नहि जागो, कियो न सुभ कर्म।

चरन दास कहै सहजिया, अब करौ भजन उपाय।[2]

एक पद मे मानस पूजा का भाव निहित है जिसमे विचार का धूप, समता का चदन, क्षमा का फूल, मीठे वचन का भोग, अनहद का घटा एव सूरत की लौ लगाने की बात है।[3]

---

[1] मिश्रित पद पृ० ५७

[2] मिश्रित पद पृ० ५८

इसके अन्तर्गत पॉच पदो मे अपने गुरु चरणदास के जन्म का कारण, जन्मोत्सव एव सदर्भ सहित तिथि का उल्लेख किया है। उनके जन्म का कारण इन पक्तियो मे निहित है -

दूसर कुल मे भक्ति नहीं, जा कूँ तारन आये।

कारन परमारथ तन धार्यो, बहुतक जीव उबारे।[1]

यौगिक शब्दावली से युक्त एक पद मे वे काया रूपी नगर बसाने की याचना करती है। ज्ञान की दृष्टि, सुरति की लौ एव अनहद वाद्य बजाकर वे निर्गुण मत के सिद्धान्त का प्रतिपादन करती है -

बाबा काया नगर बसावौ।

ज्ञान दृष्टि सूँ घट में देखो, सुरति निरति लौलावौ।

पॉच मारि मन बसि कर अपने तीनो ताप नसावौ।

सत सन्तोष गहौ दृढ सेती, दुर्जन मारि भजावौ।

सील छिमा धीरज कूँ धारौ, अनहद बब बजावौ।

पाप बानिया रहन न दीजै, धरम बजार लगावौ।

सुबस बास होवै जब नगरी बैरी रहै न कोई।[2]

सहजोबाई की तीनो रचनाओ मे सरलता, स्पष्टता है। विषय का निर्वाह सम्यक् रूप से हुआ है। सहज प्रकाश मे प्रसाद गुण और मिश्रित पदों में माधुर्य भाव परिलक्षित होता है। इनकी

---

[३] आतम पूजा अधिक जान कर सहजोबाईया को चाव। मिश्रित पद पृ० ५४

[१] मिश्रित पद पृ० ४९

[२] मिश्रित पद पृ० ५२

रचनाओ मे गूढ ज्ञान के साथ ही नारी सुलभ कोमलता, सहजता, भावुकता, अनुभूति की तीव्रता सर्वत्र व्याप्त है। सहज प्रकाश, सातवार निर्णय एव सोलह तिथि निर्णय में दोहा, चौपाई, अडियल और कुण्डलिया छन्दो का प्रयोग हुआ है। मिश्रित पद विभिन्न राग रागिनियो मे निबद्ध है जैसे राग गौरी, सोरठ, मलार, बिलावल, काफी, आसावरी, बसत, होरी धनासरी, होरी, ललित, रामकली, भैरो, ईमन, कडखा, परज, जैजैवती, पुरबी, कान्हरा, सारग। इनसे यह सिद्ध होता है कि उन्हे सगीत की राग रागिनियो का भी ज्ञान था।

भाषा सरल, सरस, प्राजल एव स्वच्छ है। कहीं-कहीं राजस्थानी के शब्द भी प्रयुक्त हुये है। पदो मे ब्रजभाषा का प्रयोग हुआ है। सम्पूर्ण रचना शान्त रस की है। स्थान-स्थान पर करुण, वीभत्स, श्रृगार रसो का भी प्रयोग है। सस्कृत के तत्सम शब्द और मध्यकाल मे बोल चाल की भाषा मे प्रयुक्त फारसी शब्द भी इनकी रचना मे आये हैं, जैसे– अरज, खुशी, रब्बार, निसानी, गरीब, बरबाद आदि। अलकारो का प्रयोग भी यत्र तत्र परिलक्षित होता है। यद्यपि काव्य कला का प्रदर्शन उनका उद्देश्य नहीं था तथापि स्वाभाविक रूप से अनेक अलकार काव्य की शोभा बढाते हैं– उपमा के प्रयोग में तो वे सिद्धहस्त हैं।

"जैसे मोती ओस की"

"धुवॉ को सो गढ बन्यो"

"ऐसे ही जग झूठ है"

"पानी का सा बुलबुला ऐसा यह तन ऐसा होय"

"जैसे सॅडसी लोह की, छिन पानी छिन आग"

ये उपमा अलकार के कुछ उदाहरण है जिनका वे किसी आलकारिक वर्णन के लिये नहीं वरन् ससार की वास्तविकता के प्रतिपादन के लिये प्रयोग करती हैं। रूपक अलकार का भी एक उत्कृष्ट उदाहरण दृष्टव्य है –

किरपा बल्ली हाथ मे राखो। काहू ते दुख वचन न भाखो।

अत सहजोबाई की रचना मे काव्यत्व के सभी गुण विद्यमान है। वे एक उत्कृष्ट कोटि की कवयित्री है, जिनका अभिव्यजना कौशल उनकी सभी रचनाओ मे परिलक्षित होता है। अपनी प्राजल भाषा, भाव को वहन करने की शैली एव काव्यत्व के अन्य सभी गुण सहजप्रकाश को उच्चकोटि के काव्यो की श्रेणी मे रखते है।

वे सन्त परम्परा की एक उत्कृष्ट कवयित्री है, जिन्होने ब्रह्म, जीव, जगत के वास्तविक स्वरूप का वर्णन किया है। उनका ब्रह्म निर्गुण भी है और सगुण भी। वह अनाम भी है और ससार के सभी नाम उसके है। उसका कोई स्वरूप नहीं है और सभी स्वरूप उसके है। यही ब्रह्म भक्तो की पुकार पर निर्गुण से सगुण होता है। ब्रज और अयोध्या में भी वहीं अवतरित होता है। चौबीसो अवतार उसी ब्रह्म के हैं। सगुण अैर निर्गुण में सूर्य और धूप एव जल एव पाले की तरह कोई भेद नहीं है। सत परम्परा में उनका यह ब्रह्म विषयक विवेचन अपने में विरल है, यह उन्हे तुलसी के ब्रह्म विषयक विवेचन के समीप रखता है।

सहजोबाई हिन्दी सन्त परम्परा मे विशिष्ट स्थान रखती हैं। वे भौतिक आकर्षणो से विरत ऐसी साधिका हैं जो जीवन और जगत के सत्य का साक्षात्कार करती हैं और अपना अनुभूत सत्य अपनी रचना के माध्यम से प्रकट करती है। उनका साहित्य सत साहित्य का मजबूत आधार है। आजीवन ब्रह्मचारिणी रहकर अपने उदात्त गुणो से सत मत की परम्परा को पुष्ट करने वाली सहजोबाई स्त्री सत कवयित्रियो मे शिरोमणि है। न केवल रचना वरन् आचरण से भी वे

सत परम्परा को पुष्ट करती है। सतमत मे गुरु का महत्वपूर्ण स्थान है, इन्होंने अपने गुरु चरनदास को अपनी रचना मे अत्यन्त आदर के साथ स्मरण किया है और अपना सम्पूर्ण जीवन गुरु सेवा, साधुसेवा, योग साधना एव सत्सग मे लगा दिया। सतमत मे सहजोबाई का योगदान अमूल्य है। वे चरणदास के बावन शिष्यो मे योग्यतम थीं।

(२) दयाबाई

दयाबाई भी सहजोबाई के ही समान चरणदासी सम्प्रदाय मे दीक्षित थीं। चरणदास जी इनके भी गुरु थे। इन्होने भी अपने बारे मे कोई साक्ष्य नहीं दिया है केवल अपनी रचना "दयाबोध" के रचनाकाल का निर्देश उक्त ग्रन्थ मे किया है-

सबत ठारा सै समै पुनि ठारा गये बीति।

चैत सुदी तिथि सातवीं भयो ग्रथ सुभ रीति।।

इससे यह निश्चित है कि सवत् १८१८ की चैत सुदी सप्तमी को ये अपना ग्रन्थ लिख चुकी थीं, अत इनका जन्मकाल १८वीं शती का उत्तरार्ध होना चाहिए। "वेलविडियर प्रिटिग वर्क्स" से प्रकाशित "दयाबाई की बानी" में इनका जन्म सवत् १७५०-१७७५ के मध्य माना गया है। यही मत गिरिजादत्त शुक्ल एव ब्रजभूषण शुक्ल का "हिन्दी काव्य की कोकिलायें" एव श्री गणेश प्रसाद द्विवेदी का "हिन्दी के कवि और काव्य" (भाग २) मे भी है। डा० सावित्री सिन्हा के मतानुसार इनका जन्म सवत् १७७५ के मध्य मे हुआ था।[१] डा० रामकुमार वर्मा के अनुसार इनका जन्म स० १८०० वि० है।[२] वियोगी हरि इनका समय स० १७४० से १८२० वि० मानते हैं[३] आ० परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार इन्होंने स० १७५० से १७७५ तक सत्सग किया। तदनन्तर एकान्त सेवन किया। इनकी मृत्यु के बारे में अनुमान है कि कदाचित् स० १८३० वि० में इन्होंने शरीर छोडा हो।[४]

---

[१] मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियॉ पृ० - ६७

[२] हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० - २८९

[३] सत सुधासार पृ० - २०५ (दूसरा खण्ड)

[४] उत्तरी भारत की सत परम्परा

इनका जन्म भी मेवात के डेहरा नामक गॉव मे हुआ था, जहॉ इनके गुरु चरणदास एव सहजोबाई का जन्म हुआ था। ये दूसर जाति की थीं एव सहजोबाई की बहन कही जाती हैं, यद्यपि इसका कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है, केवल डेहरा नामक गॉव में जन्म होने से एव दूसर जाति का होने से यह सभावना बनती है। बडथ्वाल जी ने दयाबाई का उल्लेख चरणदासजी की चचेरी बहन के रूप मे किया है। ये गुरु चरणदास जी के सानिध्य में दिल्ली में ही रहती थीं। उनकी सेवा मे जीवन व्यतीत किया एव वहीं इन्होने शरीर त्याग किया। "सतबानी सग्रह" (भाग-१) मे इन्हे पारमार्थिक दृष्टि के साथ-साथ सासारिक दृष्टि से भी सहजोबाई की बहन माना गया है।[१] नूतन भक्तकाल[२] एव दयाबाई की बानी[३] में इन्हें सहजोबाई की गुरु बहन कहा गया है। ये बाल ब्रह्मचारिणी थीं।[४] दयाबाई के द्वारा लिखी हुई दो रचनायें प्राप्त होती हैं-

(१) दयाबोध

(२) विनयमालिका

विनयमालिका में दयादास नाम की छाप है, अत कुछ लोग इसे इनकी रचना स्वीकार करने में संन्देह करते हैं, किन्तु दयाबोध में भी एक स्थान पर दयादास[५] नाम की छाप है, अत निर्विवाद रूप से विनयमालिका भी इन्हीं के द्वारा रचित है। दयाबोध में इनकी तीन प्रकार की नामछाप मिलती है, दया, दया कुॅवरि एव दयादास। "दया कुॅवरि" नाम छाप के विषय में ज्योति प्रसाद मिश्र "निर्मल" का मत है कि शायद ये राजघराने की स्त्री रही होंगी, क्योंकि "कुॅवरि" का

---

१ सत बानी सग्रह भाग- १ पृ० - १५४

२ हिन्दी साहित्य में निर्गुणोपासिका कवयित्रियॉ पृ० १०६

३ दयाबाई की बानी में जीवन चरित्र से

४ सत सुधासार, वियोगीहरि पृ० २०५ दूसरा खण्ड

५ दयादास हरि नाम लै या जग में ये सार पृ० - ३ दयाबोध

प्रयोग प्राय राजकुमारियो के नाम के साथ होता है।[1] सम्भावना यही बनती है कि ये तीनो नाम छाप दयाबाई के ही हैं। दयाबोध एव विनयमालिका मे इनका प्रतिपाद्य सतगुरु महिमा गान और भगवान के भक्त-भय-भजन, शरणागत प्रतिपालक स्वरूप का बोध कराना है। इनकी रचनाओ के अध्ययन से यह सिद्ध होता है कि ये उच्चकोटि की सत होने के साथ ही अत्यन्त ज्ञानी भी थीं, और उस ज्ञान से ही उन्हे गुरुतत्व, ईशतत्व एव दोनों के कृपा प्रसाद अनुग्रह तत्व की वास्तविकता का बोध हो गया था। यही बोध उस परम तत्व से एकात्मकता एव ससार से वैराग्य का कारण बना। दयाबोध मे उनका प्रतिपाद्य गुरु महिमा, सुमिरन, सूर, प्रेम, वैराग्य, साध, अजपा का विषय विवेचन है, और विनयमालिका में भगवान के विविध अवतारों द्वारा भक्त जन कल्याण एव उनका उद्धार वर्णन का विषय है। इन दोनो ही रचनाओं के द्वारा उन्होंने गुरु तत्व एव निर्गुण- सगुण ब्रह्म की सापेक्षिक निर्भरता वर्णित की है, जो कि ससार के सभी भक्ति विषयक ग्रन्थो मे विरल विषय है।

दयाबोध में दयाबाई के प्रतिपाद्य पर विचार करते हुये उन्हीं के द्वारा प्रयुक्त बिन्दुओं से विवेचन की प्रक्रिया प्रारम्भ करना उचित होगा।

(१) गुरु महिमा

सत मत मे गुरु की महत्ता सर्वविदित है। उसी परम्परा का अनुसरण करती हुई दयाबाई भी गुरुतत्व को ईशतत्व से बडा प्रमाणित करती है। दयाबाई

---

[1] हिन्दी साहित्य में निर्गुणोपासिका कवयित्रियॉं पृ० - १०७ से उद्घृत

'गुरु है ब्रह्म रूप भगवाना

एव

चरनदास गुरु देव जू ब्रह्म रूप सुखधाम"

कहकर गुरु एव ब्रह्म मे अभेद स्थिति को व्यक्त करतीं हैं[1] ब्रह्म और गुरु की इसी अभेद्य सूचक स्थिति को दृढता से प्रतिपादित करती हुई वे पुन कहतीं है, "सतगुरु ब्रह्म स्वरूप है, मनुष्य भाव मत जान'' मनुष्य रूप में गुरु को सम्मुख देखकर भी उन्हें मनुष्य नहीं समझना चाहिए। वे साक्षात् ब्रह्म स्वरूप हैं। इस प्रकार ब्रह्मतत्व एव गुरुतत्व की अभेदता, एकात्मकता, नित्यता व्यक्त करते हुये वे अपने गुरु चरणदास के प्रति अपनी अनन्य भक्ति भावना तो प्रदर्शित करती हीं है, एक नवीन सत्य का उद्घाटन भी करती है। उसी अनन्य भावना की रौ में बहते हुये वे उस मनुष्य को पशुतुल्य समझती हैं, जो गुरु मे देह भाव देखता है।[2]

गुरु कृपा से भक्ति भावना का विस्तार होता है,[3] अन्यथा योग, यज्ञ, जप, तप तो केवल ब्रह्म के विचार के साधन है। सतगुरु के समान इस ससार में दानी भी कोई नहीं है, जो शिष्य को अपने उपदेश दान से ससार सागर से पार कर देता हैं।[4] ससार रूप अध कूप में कर्मों के बधन से पडे हुये जीव का ज्ञान रूपी डोर पकडा कर गुरु ही उद्धार कर सकता है।[5] गुरुतत्व ऐसा तत्व है जिसके समीप जाने से मन की चञ्चलता नष्ट हो जाती है, समस्त कामनाओं कों विश्रान्ति मिल जाती है।[6] वह तीनों तापों (दैहिक, दैविक, भौतिक) का नाश करने वाले और

---

१ दयाबाई की बानी पृ० - २
२ वही पृ० - २
३ वही पृ० - १ दोहा १०
४ वही पृ० - १ दोहा ९
५ वही पृ० - १ दोहा ६
६ वही पृ० - १ दोहा ४

वास्तविक सुख को प्रदान करने वाले हैं।[१] गुरु के सदृश्य दीनो पर दया करने वाला दूसरा कोई नहीं है। शरणागत रक्षक एव प्रतिपालक स्वरूप मे वे शिष्य को विशिष्ट भावबोध प्रदान करते हैं।[२] दयाबाई इसीलिये मनसा-वाचाकर्मणा गुरु चरणो मे चित्त वृत्ति निक्षेपण करती है क्योकि ससार-सागर से पार जाने के लिये अन्य कोई उपाय नहीं है, आनन्दावस्था की प्राप्ति, त्रिविध तापो के नाश, ससार रूप स्वप्न का त्याग और अमरलोक की प्राप्ति केवल गुरु कृपा से ही सभव है।[३] दयाबाई ब्रह्म तत्व एव गुरुतत्व की अभेदता व्यक्त करते हुये भी गुरु को कबीर की भॉति भगवान के स्वरूप का साक्षात्कार कराने वाला मानती है।[४]

सतगुरु के बिना ज्ञान की प्राप्ति, ध्यान की प्राप्ति नहीं होती। चौरासी लाख योनियो मे जीव के भटकने के तथ्य को भी वे सत्य स्वीकार करती है, इस प्रकार जन्म और कर्म के बधन के फलस्वरूप योनि प्राप्ति के सिद्धान्त को सत्य मानते हुये इन योनियो मे जीव के भटकने का कारण गुरु के द्वारा जीव के कर्म बधनों का नाश न होना है। जिस जीव को गुरु की कृपा कटाक्ष प्राप्त हो जाता है, वह इन चौरासी लाख योनियों के चक्र मे नहीं फॅसता है।[५] ईश्वर के प्रति भक्ति एव अशुभ कर्मों का त्याग गुरु के बिना नहीं होता है।[६] गुरु में ही वह शक्ति है जो काग गति को हस गति में परिवर्तित करके समस्त सशयों का नाश कर देती है।

पलटै करै काग सूँ हसा।

मन को मेटत है सब ससा।।

---

१ वही पृ० - १ दोहा ५

२ वही पृ० - २ दोहा ११

३ वही पृ० - २ दोहा १४

४ वही पृ० - २ "दया सुखी कर देत है हरि सरूप दरसाय"।

५ वही पृ० - २

६ वही पृ० - २

गुरु करूणा के सागर, कृपा सागर है, हृदय की गॉठ को भलीभॉति खोल कर भ्रमो का नाश कर सुख-सागर मे निवास कराते है।[१]

(२) सुमिरन का अंग

सुमिरन का अग मे दयाबाई भगवान के नाम स्मरण को महत्व देती हुई नाम स्मरण के फलस्वरूप अनेक जीवो के उद्धार के लोक विश्रुत उपाख्यानो का उदाहरण देती है। नाम स्मरण की महत्ता प्रतिपादित करती हुई दयाबाई सगुण ईश्वर के बोधक मनमोहन, गोविन्द, राम, नारायण आदि नामो का उल्लेख करती हैं।

ये हरिनाम भी उन्हे ब्रह्म स्वरूप सतगुरु से ही प्राप्त हुआ है, जिससे उनके समस्त कार्य पूर्ण हो जाते हैं।-

श्री गुरु देवदया करी, मैं पायौं हरि-नाम।

एक राम के नाम ते होत सॅपूरन काम ।।[२]

नामस्मरण से काल सर्प और दुख की ज्वाला से बचा जा सकता है,[३] और सबसे बडी बात तो ये है कि, नाम स्मरण के फलस्वरूप मनुष्य स्वय हरि ही हो जाता है, और उस परमतत्व का भेद जान जाता है।[४] यहॉ पर दयाबाई कबीर के उस मतव्य से पूर्णतया साम्य रखती है जब

---

१ वही - पृ० २
२ वही पृ० - ५
३ वही पृ०- ३
४ वही पृ०- ३ हरि भजते हरि ही भये पायौ भेद अपार।

वे कहते है- कि 'लाली देखन मैं गई मैं भी हो गयी लाल"। राम नाम स्मरण से अनेक पापो का नाश हो जाता है [१]

हरिस्मरण के प्रसग मे वे उन हरि विमुखो की भर्त्सना करती हैं और उनके सम्मुख मुख खोलने से मना करती हैं, और अपने ह्रदय को केवल राम नाम मे रत रहने वालों के सामने व्यक्त करने का उपदेश देती हैं।[२] हरि नाम स्मरण से नरदेह में ही नारायण की प्राप्ति हो जाती है, इसलियै ससार मे आने का सबसे बडा लाभ यही है कि भगवान का स्मरण किया जाय, क्योंकि पाच तत्वो से निर्मित यह शरीर छल रूप है क्षण मे भग होने वाला है-

दया जगत मे यह नफो, हरि सुमिरन कर लेह।[३]

छल रूप छिन-भग है, पॉच तत की देह।।

इस ससार सागर से पार जाने का केवल एक ही रास्ता हे कि नौका हरि नाम की हो, खेवैया सतगुरु हो और साधु जनो का सग हो।[४]

इस प्रकार नाम स्मरण पापों का नाश करने वाला, पापियों का उद्धार करने वाला, मन को निर्मल करने वाला, नारायण को नर देह में ही मिलाने वाला है।

---

[१] वही पृ०- ४ दोहा ६
[२] वही पृ०- ४ दोहा ५
[३] वही पृ०- ४
[४] वही पृ०- ४- दोहा १५

प्रेम मगन गद्‌गद वचन पुलकि रोम सब अग।

पुलकि रह्‌यो मन रूप मे दया न ह्वै चित भग।।[1]

प्रेम की उन्मत्तावस्था का चित्रण भी दयाबाई बडी कुशलता से करती है--

कहूँ धरत पग परत कहूँ डिगमिगात सब देह।

दया मगन हरि रूप मे दिन-दिन अधिक सनेह।।

हँसि गावत रोवत उठत गिरि-गिरि परत अधीर।

पै हरि रस चसको दया सहै कठिन तन पीर।।[2]

प्रेम की पीडा जब बहुत अधिक बढ जाती है, तो उन्हे दिन-रात कभी भी चैन नहीं पडता। इस विरह व्यथा का कारण प्रेमी से मिलने की उत्कठा है। जन्म-जन्मान्तर से बिछुडे प्रेमी से मिले बिना अब उनसे रहा नहीं जा रहा है। इस अटपटे प्रेम पथ पर चलने वाले प्रेमी की स्थिति, पीडा का भान किसी को नहीं होता, इसका अनुभव तो केवल वह ही कर सकता है, जो विरही हो या जिसने इस पीडा का अनुभव किया हो। मीरा की भाँति (घायल की गति घायल जाने कि जो कोई घायल होय) वे भी "कै मन जानत आपनों कै लागी जेहि पीर" कहकर उस टीस को व्यक्त करती हैं।

इस प्रेम पथ पर चलती हुई दया अपनी असामान्य स्थिति को व्यक्त करती हैं--

बौरी ह्वै चितवत फिरूँ हरि आवैं केहि ओर।

छिन उठूँ छिन गिरि परूँ राम दुखी मन मोर ।।

---

[1] दया बोध पृ० ६ दोहा ६

[2] वही पृ०- ६ दोहा - ७-८

प्रेमास्पद का रास्ता देखते-देखते उनके नेत्र और हाथ थक गये हैं, लेकिन प्रेम सिन्धु में पडकर पुन निकलना असम्भव है, इसी मार्मिक स्थिति का चित्रण दयाबाई करती हुई कहतीं है-

काग उडावत कर थके, नैन निहारत बाट ।

प्रेम सिन्धु में पर्‌यो मन ना निकसन को घाट ।।[१]

जिसके हृदय में प्रेम तत्व प्रकट हो जाता है वह ईश्वर की वास्तविकता को जान लेता है, ईश्वर प्रेम रूप है। प्रेम के वशीभूत है, प्रेम का अनुभव ईश्वरानुभव है --

प्रेम पुञ्ज प्रगटै जहाँ तहाँ प्रगट हरि होय । [२]

(५) बैराग का अंग

"बैराग का अग" में दयाबाई ने ससार की नि सारता, क्षण भगुरता का वर्णन किया है। यह ससार स्वप्न की भॉति असत्य है।[३] इस ससार में कुछ भी स्थिर नहीं है। सराय के यात्री की भाँति यहाँ प्रतिपल यात्री बदलते रहते हैं।[४] यह ओस के मोती के समान क्षण में नष्ट होने वाला है।[५] काल इतना प्रचण्ड है कि तीनों लोकों के सभी जीवों को घेर कर ले जाता है।[६] इसका उदर इतना विशाल है कि राजा, रानी, छत्रपतियों, सबको ग्रसता हुआ भी जरा सी देर के लिये नही

---

१ दयाबोध पृ० ६

२ वही पृ० ७

३ वही पृ० ७

४ वही पृ० ७

५ वही पृ० ७

६ वही पृ० ८

तृप्त होता है।[१] काल रूपी नदी में सारे जीव भजन नौका के बिना बहे जाते हैं। बार-बार उत्पन्न होते हैं बार बार नष्ट हो जाते हैं।[२]

नाम, रूप के मोहक जाल में न फँसने के लिये जीव मात्र को प्रबोधित करती हुई वे नाम, रूप को वायु के द्वारा तितर-बितर कर दिये गये बादल के सदृश क्षणभगुर कहती है।[३]

ससार में जो भी आया है वह अवश्य ही मरेगा इस तथ्य का प्रतिपादित करती हुई वे जीव को होशियार करती हैं-

तात मात तुम्हरे गये तुम भी भये तयार ।

आज काल्ह में तुम चलौ दया होहु हुसियार ॥[४]

(६) साध का अंग

साध का अग में साधुजनों (सज्जनों) के लक्षण बताये हैं। दयाबाई ने जीव और साधु में विभेद किया हैं जब तक ससार के प्रति राग भावना है तक तक बह जीव हैं इस राग भावना के तिरोहित होते ही साधु का परमपद प्राप्त होता है।[५] "जगत सनेही जीव है राम सनेही साध" कहकर वे जीव में तो साधु तत्व है जो ससार के प्रति राग के समाप्त होते ही जाग्रत होता है किन्तु साधु मे जीव भाव नहीं है, इस मत की पुष्टि करती हैं। जीव का तात्पर्य ही है अज्ञान

---

[१] वही पृ० ८
[२] वही पृ० ८
[३] वही पृ० ८
[४] वही पृ० ७
[५] वही पृ० ८

तिमिराछन्न जीव, जिसे प्रबोधन की आवश्यकता है। वे साधु मे जीव तत्व नहीं देखती क्योकि साधु प्रबोधित हो चुका है, उसकी समस्त वृत्तियॉ समाप्त हो चुकी है। सम्पूर्ण भक्तिकालीन साहित्य में यह सर्वथा नवीन भाव परिलक्षित होता है।

इस साध प्रकरण मे वे साधु की सगत्ति को दुर्लभ मानती हैं, और उसके प्राप्त हो जाने के पश्चात समस्त भदो के ज्ञान होने का रहस्य भी बताती है।[१] वे षट्विकारो (काम क्रोध मद मोह, मत्सर और लोभ) से रहित रहते है, ब्रह्म भाव मे निमग्न रहते है,[२] राम के अतिरिक्त दूसरे भाव में लिप्त नहीं होते[३] सिह के समान है जैसे सिह की गर्जना से समस्त छुद्र जीव भाग जाते हैं, वैसे ही साधु के अनुभव के ज्ञान की गर्जना से कर्मो के भ्रम और अज्ञान नष्ट हो जाते है।[४]

सत्सगति त्रिविध ताप (दैविक, दैहिक, भौतिक) को मिटाने वाली,[५] जीव की दुविधा नष्ट करने वाली[६] क्षण भर मे ही समस्त पापों को नष्ट करके हरि नाम के प्रति रति उत्पन्न करने वाली,[७] करोडो यज्ञो, व्रतो, नियमो का पुण्य प्रदान करने वाली[८] विषय व्याधि मिटाकर सुख शान्ति प्रदान करने वाली है। इसीलिये शेष, महेश, सभी साधु की महिमा का गायन करते हैं।

हर्ष, शोक से रहित, मान, बडाई का त्याग करके आठों प्रहर हरिनाम स्मरण करने वाला साधु इस ससार मे विरला है। ऐसे साधु की सगति ही कलि काल मे ससार सागर से पार जाने के जिये सहायक हो सकती है –

---

[१] दयाबोध पृ० ८ साध का अग दोहा २
[२] दयाबोध पृ० ९ साध का अग दोहा ४
[३] दयाबोध पृ० ९ साध का अग दोहा ५
[४] दयाबोध पृ० ९ साध का अग दोहा ६
[५] दयाबोध पृ० ९ साध का अग दोहा ६
[६] दयाबोध पृ० ९ साध का अग दोहा ८
[७] दयाबोध पृ० ९ साध का अग दोहा ९
[८] दयाबोध पृ० ९ साध का अग दोहा १०

कलि केवल ससार मे और न कोउ उपाय।

साध सग हरि नाम बिन मन का तपन न जाय।।[1]

(७) अजपा का अंग

सतमत मे जप (काष्ठ की माला द्वारा नाम जप की गणना) से परे अजप की प्रक्रिया होती है, जो प्रत्येक श्यास–प्रश्वास के साथ सम्पन्न होती है, अत गणना काष्ठ की माला के साथ न होकर प्रत्येक श्वास की डोर से हाती है। जब श्वास की स्थिति होती है तब स (ब्रह्म) की और जब प्रश्वास की स्थिति होती है तब अहम् (जीव) की प्रतीति होती है यही अजपा जाप है, जो "सोऽह्म्" के रूप मे ब्रह्म और जीव की अभेद अवस्था का परिचायक है।

दयाबाई ने अजपा जाप की प्रक्रिया का उल्लेख किया है, और यह स्पष्ट किया है कि इस प्रक्रिया का ज्ञान उन्हे अपने गुरु चरणदास से प्राप्त हुआ है। उनके अनुसार,"पद्मासन मे अवस्थित होकर नासिका के आगे दृष्टि रखकर, श्वॉस की गति मे मन को एकाग्र करके सभी इन्द्रियो को वशीभूत करके बिना जिह्वा और करमाल के द्वारा केवल श्वास-प्रश्वास से अजपा जप सम्पन्न होता है और इसी प्रक्रिया के अनन्तर त्रिकुटी (दोनो भौहो के मध्य का स्थान) मे परब्रह्म का दर्शन होता है।[2] इस अजपा जप की स्थिति मे श्वास-श्वास की प्रक्रिया को नटिनी के करतब से उपमिन करती हुई वे कहती हैं –

प्रथम पैठि पाताल सूँ धमकि चढै आकास।

दया सुरति नटिनी भई, बाधि बरत निज श्वॉस।।

---

[1] दयाबोध पृ० ९ साध का अग दोहा १५

[2] दयाबोध अजपा का अग पृ० १०

छिन छिन मे उतरत चढत कला गगन मे लेत।

दया रीझि गुरुदेव जू दान अभय पर देत।।[1]

सत मत मे अजपा जाप के साथ अनाहत नाद की प्रक्रिया भी सचालित होती है। अनाहत नाद अर्थात् ध्वनिरहित नाद। क्या किसी ऐसी ध्वनि की परिकल्पना हो सकती है जो ध्वनिरहित हो, किन्तु जैसे अजप की स्थिति मे जप सम्भव हो जाता है, वैसे ही ध्वनिरहित स्थिति मे नाद का श्रवण भी हो जाता है, और इस अनाहत नाद की प्रक्रिया मे घटा, ताल मृदग, मुरली और सिह गर्जना का स्वर योगी ध्यास्थ अवस्था मे सुनता है। "सुनत नाद अनहद दया कहकर दयाबाई ने स्वय की उस अवस्था का उल्लेख किया है, जिस अवस्था मे ये दोनो प्रक्रियाये सम्पन्न होती हैं, और अब वे ऐसी स्थिति को प्राप्त हो गई है, जब उस अनन्त सत्ता से उनका साक्षात्कार होता है और तन मन सब शीतल हो जाता है–

अनॅत भान उॅजियार तहॅ प्रगटी अद्‌भूत जोत।

चकचौधी सी लगत है मनसा सीतल होत।

सेत सिहासन पीव को महा तेज मय धाम।

पुरूषोत्तम राजत तहॉ दया करत परनाम।।

श्वेत सिहासन पर विराजमान महातेस्वी प्रियतम के दर्शन होते ही "समरसता की स्थिति"[4] उत्पन्न होती है और जागतिक सत्य की अनुभूति भी होती है, कि एक ही चेतन रूप आत्मतत्व

---

[1] दयाबोध अजपा का अग पृ० ११
[2] दयाबोध अजपा का अग पृ० ११
[3] दयाबोध पृ० ११ अजपा का अग
[4] दयाबोध पृ० ११ अजपा का अग

पिड और ब्रह्माण्ड सबमे व्याप्त है।[1] वह न कोई कार्य करता है और न किसी वस्तु का भोग ही करता है। वह किसी कर्म के परिणाम का भी भोग नहीं करता है।[2] एक ओर "चेतन रूपी आत्मा बसै पिड ब्रह्मड" कहकर समस्त चेतन प्राणियो मे उसका निवास स्वीकार करती हैं और दूसरी ओर "नाकरता ना भोगता अद्वै अचल अखड" कहकर वह कोई कर्म नहीं करता है, न भोग करता है, अर्थात् चेतन रूप होते हुये भी किसी कार्य से उसका सम्बन्ध नहीं है, तो फिर चेतना किसकी है, वह चेतन स्वरूप क्यो है। यदि वह चेतन स्वरूप है और केवल एक है दूसरा कोई नहीं है, समस्त प्राणियो में व्याप्त चेतन तत्व उसी का चेतन स्वरूप है, तो कुछ न करने, कुछ भोग न करने की स्थिति कहॉ है। जब सब ब्रह्मस्वरूप है, तब सारे सचालित होते हुये कार्य व्यापार ब्रह्म द्वारा किये गये कार्य व्यापार है तब ये द्वैत भाव कहॉ से आया। वह अद्वैत है तो कर्म करने वाला, भोग करने वाला दूसरा कौन हुआ। पुन मणिका (माला) में डोर के सदृश जड-चेतन, कीट-पतग सब मे उसी एक का वास स्वीकार करती है–

वही एक व्यापक सकल ज्यों मनिका में डोर।

थिर चर कीट पतग में 'दया' न दूजो और।[3]

इसी ज्ञान के प्रकाश में वे अविद्या रूप अन्धकार के नाश को स्वीकार करती है,[4] और स्वय की वास्तविकता का ज्ञान भी प्राप्त करती हैं, कि जीव और ब्रह्म मे कोई अन्तर नहीं है, सब मे एक ही तत्व का निवास है–

जीव ब्रह्म ऑतर नहि कोय।

एकै रूप सर्ब घट सोय।।[5]

---

१ दयाबोध पृ० १२ अजपा का अग

२ दयाबोध पृ० १२ अजपा का अग

३ दयाबोध पृ० १२ अजपा का अग

४ दयाबोध पृ० १३ अजपा का अग

५ दयाबोध पृ० १३ अजपा का अग

उनके अनुसार ब्रह्म का स्वरूप कुछ इस तरह है–

जग बिबर्त सूँ न्यारा जान।

परम अद्वैव रूप निर्बान।।

बिमल रूप व्यापक सब ठॉई।

अरध उरध मधि रहत गुसॉई।।

महा सुद्ध साच्छी चिद्रूप।

परमातमा प्रभु परम अनूप।।[1]

इस शुद्ध, बुद्ध, साक्षी, चित्स्वरूप, विमल, सर्वव्यापी ब्रह्म की सत्यता का बोध ही इस मनुष्य जीवन का चरम लक्ष्य है, इस बोध के पश्चात किसी प्रबोधन की आवश्यकता नहीं रह जाती।

विनय मालिका

दयाबाई की दूसरी रचना है "विनय मालिका"। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि यह विनय भाव की रचना है, इसमे विनय भाव के रत्न एक लडी में पिरोये से प्रतीत होते हैं। विनय मालिका के रचना वैशिष्ट्य के बारे में स्वय दयाबाई का कथन है–

चार बेद छ सास्त्र हैं, अरु दस आठ पुरान।

सब ग्रन्थन को सोधि कै, कीन्हीं विनय बखान।।[2]

---

[1] दयाबोध पृ० १३ अजपा का अग

[2] विनय मालिका दयाबाई की बानी पृ० २६

इसे हम तुलसीदास की विनयपत्रिका के अनुक्रम मे रख सकते हैं। इस रचना मे वे ईश्वर के सभी अवतारो की चर्चा करती है, और उनके द्वारा उद्धार किये गये प्राणियो को भी चर्चा करती है। इस भगवद्यश वर्णन प्रसग मे वे तारे जाने वाले (उद्धारणीय) प्राणियो के क्रम मे स्वय को रखकर अपने उद्धार की भी प्रार्थना करती है। इस रचना मे विनय भाव की पराकाष्ठा देखते ही बनती है। दयाबाई के सारे नाते केवल भगवान से ही है –

निरपच्छी के पच्छ तुम, निराधर के धार।
मेरे तुम ही नाथ इक, जीवन प्रान अधार।।
काहू बल अप देह को, काहू राजहि मान।
मोहि भरोसो तेरही, दीन बन्धु भगवान।।
हौं गरीब सुन गोबिद, तुही गरीब निवाज।
दयादास आधीन के, सदा सुधारन काज।।
हौं अनाथ के नाथ तुम, नेक निहारो मोंहि।
दयादास तन हे प्रभु, लहर मेहर की होहि।।[१]

इसी क्रम मे वे उस भगवान से माता पुत्र के सबध के अनुसार स्वय की गल्तियों को माता द्वारा पुत्र की गल्तियो के उदाहरण से भूल जाने को कहती हैं, क्योकि माता और पुत्र के सबध से अधिक प्रगाढ और स्वार्थरहित सबध और कोई नहीं है, और उसमे भी उज्जवल पक्ष पुत्र का नहीं माता का है।

---

[१] विनय मालिका दयाबाई की बानी पृ० १६

लाख चूक सुत से परै, सो कछु तजि नहि देह।

पोष चुचुक ले गोद मे, दिन दिन दूनों नेह।।

नहि सजम नहि साधना, नहि तीरथ व्रत दान।

मात भरोसे रहते है, ज्यो बालक नादान।।[१]

कर्म पाश मे बधे हुये जीव को केवल बन्दीछोर (कृष्ण का एक नाम) ही छुडा सकते हैं, निराशा के स्वर मे वे उसी बन्दीछोर का स्मरण करती हैं–

कर्म फॉस छूटै नहीं, थकित भयो बल मोर।

अब की बेर उबारि लो, ठाकुर बन्दीछोर।।[२]

इस रचना मे भगवान के विविध अवतारो के भक्त-भय-भञ्जन स्वरूप की झॉकी दैन्य भाव में प्रस्तुत की गई है। वे कूर्मरूप, नृसिहरूप, परशुराम, गिरिवरधारी, ग्रहसाल (गज-ग्राह के प्रसग मे ग्राह का वध करने वाले) कस के काल स्वरूप, दशमुख रावण के कालस्वरूप छवियो का स्मरण करती हैं। इसी नाम स्मरण के क्रम में वे अनुप्रासो की अनुपम सृष्टि करती हैं–

कान्हा कूरम कृपानिधि, केसव कृश्न कृपाल।

कुजबिहारी क्रीटधर, कसासुर को काल।।

राम रमैया रमापति, रामचन्द्र रघुवीर।[३]

राघव रघुबर राधवा, राधारमन अहीर।।

---

[१] विनय मालिका दयाबाई की बानी पृ० १७

[२] विनय मलिका दयाबाई की बानी पृ० १५

[३] विनय मालिका दयाबाई की बानी पृ० १४

ऐसे भक्तावत्सल भगवान के ही सम्मुख वे शीश झुका सकती है, झगडा भी केवल वे उसी से कर सकती है–

सीस नवै तौ तुमहि कूँ, तुमहि सुँ भाखूँ दीन।

जो झगरौं तौ तुमहि सूँ, तुम चरनन आधीन।।[१]

क्योकि ये ससार उनका है, सबकुछ उनका है। दयाबाई भी उन पर इसी भाव से आश्रित है यदि वे उन पर दया नहीं करते तो हॅसी किसकी होगी, भगवान की ही न –

देह धरौ ससार में तेरी कहि सब कोय।

हॉसी होय तो तेरिही, मेरी कछु न होय।।[२]

पुन चिडिया के असहाय, उडने में असमर्थ बच्चे के समान[३] स्वय की असमर्थता और सभी सासारिक नातो से रहित स्वय की कष्टपूर्ण एव त्रासद स्थिति मे[४] अनाथों के नाथ,[५] गरीब नेवाज[६] अधमों का उद्धार करने वाले दयासिधु[७] के सम्मूख अपने कुटिल कर्मों की पोटली खोल ही देती है –

जेते करम हैं पाप के, मोसे बचे न एक।

मेरी ओर लखो कहा, विर्द बानो तन देख।।[८]

---

१ विनय मालिका दयाबाई की बानी पृ० १९

२ विनय मालिका दयाबाई की बानी पृ० १७

३ विनय मालिका दयाबाई की बानी पृ० १९ (चिरहटा के पख ज्यो)

४ विनय मालिका दयाबाई की बानी पृ० १८ (हैं अनाथ तोहि विनय करि)

५ विनय मालिका दयाबाई की बानी पृ० १६ (हौ अनाथ के नाथ तुम)

६ विनय मालिका दयाबाई की बानी पृ० १६ (तुही गरीब नेवाज)

७ विनय मालिका दयाबाई की बानी पृ० १६

८ विनय मालिका दयाबाई की बानी पृ० १६

असख जीव तरि तरि गये लै ले तुम्हरो नाम।

अब की बेरी बाप जी परो मुगध से काम।।

दयाबाई ने भगवान के पतितो का उद्धार करने वाले और दीनो की रक्षा करने वाले दोनो स्वरूपो का वर्णन किया गया है। उन्होने लोक विश्रुत उपाख्यानो मे वर्णित भाव सम्पदाओ का प्रयोग विनय मालिका मे किया है। इस तरह गजग्राह प्रसग, प्रह्लाद हिरण्याकश्यप प्रसग, द्रौपदी-दु शासन प्रसग, अजामील-गणिका- पूतना-यमलार्जुन-राजानृग-विद्याधर-रावण के उद्धार प्रसग, और सुदामा, धना जाट, नामदेव, पीपाजी, कबीर, रैदास, वाल्मीकि, शबरी, करमातेलिन, सदन कसाई, सेननाई, विदुर, नरसी मेहता, आहिल्या, ध्रुव, तुलसी, मीरा, आदि पर किये गये कृपा प्रसग वर्णित हैं।

विनय के सात स्तम्भ होते हैं, जिनसे विनय भाव मे पूर्णता आती है। ये सात स्तम्भ हैं दीनता, मानमर्षण, भयदर्शन, भर्त्सना, आश्वासन मनोराज्य और विचारणा। प्रथम चार स्थितियॅा अहकार के नाश में सहायक होती हैं, इनमे दीनता प्रमुख है। बाद की तीन स्थितियो से निराशा का निवारण होता है, इनमें आश्वासन प्रमुख है। विनय-मालिका में विनय की इन सातो स्थितियों के उदाहरण प्राप्त होते हैं - जैसे-

दीनता - हौं पॉवर तुम हौ प्रभु, अधम उधारन ईस।

दयादास पर दया हो, दयासिधु जगदीस।।[1]

मानमर्षण-जेते करम हैं पाप के, मोसे बचे न एक।

मेरी ओर लखो कहा, बिर्द बानो तन देख।।[2]

---

[1] दयाबाई की बानी पृ० १६

[2] दयाबाई की बानी पृ० १६

भयदर्शन-भवजल नदी भयावनी, किस बिधिउतरूँ पार।[1]

भर्त्सना- ठग, पापी, कपटी, कुटिल, ये लच्छन मोहिमाहि।

जैसो तैसो तेरही, अरू काहू को नाहि।।[2]

जौ मेरे करमन लखो, तौ नहि होत उबार।[3]

आश्वासन-काहू बल अप देह को, काहू राजहि मान।

मोहि भरोसो तेरही, दीनबन्धु भगवान।[4]

मनोराज्य-दुख तजि सुख की चाह नहि, नहि बैकुठ बेवान।

चरन कमल चित चहत हौ, मोहि तुम्हारी आन।[5]

विचारणा- बीचहि बीच बिबस भया, पॉच पचीस के भीर।

ऐचा, खैंची करत हैं, अपनी-अपनी ओर।।

इन क्रमागत सातो स्थितियो से विनय भाव पूर्ण होता है। इनमे स्वय की तघुता और आराध्य की पूर्णता का स्वीकार, जगत् की वास्तविकता, पुन स्वय के योगक्षेम का भार आराध्य पर डालकर चितामुक्त जाने की स्थिति यही जीव के बधनों का नाश करने वाले और कल्याण कारी तत्व हैं।

---

१ दयाबाई की बानी पृ० १५

२ दयाबाई की बानी पृ० १६

३ दयाबाई की बानी पृ० १८

४ दयाबाई की बानी पृ० १६

५ दयाबाई की बानी पृ० १७

विनय भाव के पुष्ट होने पर जीव के प्रभुतासपन्न ईश्वर के शरणापन्न होने की स्थिति भी विनय मालिका मे उल्लिखित है। अपनी सीमा मे बद्ध ससारी जीव आत्म कल्याणर्थ, शरणागत होता हैं। शरणागति के छ तत्व होते हैं-

अनुकूलस्य सकल्प प्रतिकूलस्य वर्जनम्।

रक्षिस्यतीति विश्वास , गोप्तृत्व वरण तथा ।।

आत्म निक्षेप कार्पण्ये, षड्विधा शरणागति ।।[1]

अर्थात् अनुकूलता का सकल्प, प्रतिकूलता का निवारण, प्रभु रक्षा करेगे ऐसा विश्वास, रक्षक के रूप मे आराध्य का वरण, आत्मसमर्पण और दीनता ये शरणागति के छ तत्व हैं, जिनसे शरणागति मे पूर्णता आती है। प्रथम दो तत्व तो विरोधमूलक हैं अर्थात जब अनुकूलता का सकल्प होगा तो प्रतिकूलता का निवारण अपने आप हो जायेगा। इसके सर्वप्रमुख अतरग तत्व हैं, रक्षक के रूप में वरण और आत्मसमर्पण। ये छहो स्थितियो विनय मालिका मे उल्लिखित हैं -

१ अनुकूलता का सकल्प[2]

हौ गरीब सुन गोबिन्दा, तुही गरीब-निवाज।

दयादास आधीन के सदा सुधारन काज।।

२ प्रतिकूलता का निवारण[3]

किस विधि रीझत हौ प्रभु, का कहि टेरूँ नाथ।

लहर मेहर जब हीं करो, तब ही होऊँ सनाथ।।

---

[1] अहिबुर्ध्न्यय सहिता द्वितीय खण्ड ३७-१२८-३९

[2] दयाबाई की बानी पृ० १६

[3] दयाबाई की बानी पृ० १४

३ रक्षा का विश्वास

भयमोचन अरू सर्बभय, व्यापक अचल अखण्ड।

दया सिधु भगवान जू, ताकै-सिव ब्रह्मड[१]

४ रक्षक के रूप मे वरण

पैरत थाकी हे प्रभु, सूझात वार न पार।

मेहर मौज जब हीं करो, तब पाऊँ दरबार।[२]

साहिब मरी अरज है सुनिये बारम्बार।[३]

५ आत्मसमर्पण

चौरासी चरखान को, दु ख सहो नहि जाय।

दयादास तातो लई, सरन तिहारी आय।।[४]

६ कार्पण्य

कर्मरूप दरियाव से, लीजै मोहि बचाय।

चरन कमल तर राखिये, मेहर जहाज चढाय।।[५]

इस तरह से विनय मालिका में विनय और शरणागति के भाव अपने सभी तत्वों के साथ सुपुष्ट रूप मे परिलक्षित होते हैं। दयाबाई ने सब कुछ ईश्वर के ऊपर छोड दिया है जो करना हो करे, क्योकि यदि उन्होने उनपर दया दृष्टि नहीं की तो अपयश का भागी भी उन्हे ही बनना

---

[१] दयाबाई की बानी पृ० १४
[२] दयाबाई की बानी पृ० १५
[३] दयाबाई की बानी पृ० १५
[४] दयाबाई की बानी पृ० १५
[५] दयाबाई की बानी पृ० १६

पडेगा। "हॉसी होय तो तेरिही मेरी कछू न होय।"[1] कहकर सबकुछ उसे ही समर्पित कर देती है, क्योकि यदि उन्हे अपने विरद का स्मरण है तो वे अवश्य उनकी पुकार सुनेगें -

अधम उधारम, बिरद सुन, निडर रहयौ मन मॉहि।

बिर्द बानो की हार देव, की तारो गहि बॉहि।।[2]

दयाबाई की दोनो रचनाये दयाबोध और विनयमालिका ज्ञान, योग, और भक्ति का सुन्दर समन्वय है। ये गूढ ज्ञान के साथ सरल भक्ति को बडे सहज रूप मे प्रस्तुत कर देती है। विनयमालिका तो सुन्दर भावो की लडी है। विनय भाव मे डूबी दयाबाई ईश्वर से प्रश्न करती है –

किस विधि रीझत हौ प्रभु, का कहि टेरूँ नाथ।

आप- स्वय ही अपने प्रसन्न होने की विधि और जो नाम आपको प्रिय हो बताइये, तो दयाबाई की ईश्वर पर दृढ भक्ति स्पष्ट हो जाती है। अपनी रचना का प्रारम्भ भी वे इन्हीं दैन्य भाव पूरित पक्तियो से करती हैं।

दयाबाई का प्रतिपाद्य भक्ति है। काव्य कला का प्रदर्शन नहीं, तथापि उनकी दोनों रचनाओं मे कहीं काव्यत्व दोष परिलक्षित नहीं होता। भाषा, भाव, रस, छन्द, अलकार की दृष्टि से रचनाओ का अपना वैशिष्ट्य है। भाषा सरल, सरस प्रवाहवान है। भाषा का लालित्य और सौष्ठव अपने मे अनूठा है। भाषा भावानुसार प्रसगो को वहन करने मे समर्थ है। दयाबोध मे दोहा, चौपाई और सोरठ छन्दो का प्रयोग हुआ है। विनय मालिका दोहा छन्द में रचित है।

---

[1] दयाबाई की बानी पृ० १७

[2] दयाबाई की बानी पृ० १७

इनकी रचना मे ब्रज और खडी बोली का समन्वित रूप प्रयुक्त हुआ हैं। सस्कृत और फारसी के शब्द यत्र-तत्र दृष्टव्य है। जैसे मेहर, मिहरबान, गरीब, कसाई, कबूली, साहिब आदि फारसी शब्द प्रयुक्त हुये है। सस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्दों का प्रयोग भी स्थान स्थान पर हुआ है। यथा सर्वमय, ब्रह्माण्ड, विश्वरूप, बाधाहरन, विसभर, पुरषोत्तम, पीताम्बर, अविनाशी, निरजन नि कलक आदि। किरीटधर, परमहस खडी बोली के प्रभाव से क्रीटधर और पर्महस हो गया है।

इनकी रचना शान्त और वियोग श्रृंगार की है। कबीर की भॉति वे भी अनन्त प्रतीक्षा मे रत विरहिणी हैं, जो बावरी सी अपने प्रिय का मार्ग देखती रहती है–

बौरी ह्वै चितवत फिरूँ, हरि आवै केहि ओर।

छिन उठूँ छिन गिर परूँ, राम दुखी मन मोर।।

दयाबाई की रचनायें भावात्मकता के साथ साथ कलात्मकता से भी युक्त है। अनेक अलकारों का सुष्ठु प्रयोग उनकी रचनाओं में हुआ है। जगत की अनित्यता के वर्णन क्रम में वे उपमा अलकार का बडा ही सुन्दर प्रयोग करती है –

"जैसो मौती ओस का, तैसो यह ससार।"

"जैसो बास सराय को, तैसो यह जग होय।"

गुरु की कृपा से अज्ञान उसी प्रकार नष्ट हो जाता है जिस प्रकार सूर्य के उदय होने से सारा अन्धकार दूर हो जाता है। सूर्य के द्वारा अन्धकार नाश की शाश्वत् प्रक्रिया का गुरु कृपा

के सन्दर्भ मे प्रयोग सत परम्परा में अनेक कवियो ने किया है। दयाबाई का इस सबध में कथन है कि –

जैसे सूरज के उदय, सकल तिमिर नस जाय।

मेहर तुम्हारी है प्रभु, क्यो अज्ञान रहाय।।

सम्पूर्ण ससार के सभी जीवो मे ब्रह्म की व्याप्ति है यह व्याप्ति मनिका मे डोर के सदृश है। उत्प्रेक्षा अलकार के माध्यम से ब्रह्म की सर्वव्यापकता का तथ्य उद्घाटित करती हैं –

"वहीं एक व्यापक सकल, ज्यो मनिका मे डोर।"

रूपक अलकार का प्रयोग भी इनकी रचना मे मिलता है जैसे –

१ "अध कूप जग मे पडी दया करम बस आय"

२ "गोविन्द रूपी गदा गहि, मारों करमन डीठ"

३ बहे जात है जीव सब काल नदी के माहि।

दया भजन नौका बिना उपजि उपजि मरि जाहि।।

यमक अलकार का एक प्रयोग दृष्टव्य है -

विरह सूँ हूँ विकल दरसन कारन पीव।

दया दया की लहर करि क्यो तलफावो जीव।।

इसमे यमक अलकार के साथ गहन विरहानुभूति का प्रयोग हुआ है। अनुप्रास अलकार काबडा ही सुन्दर प्रयोग दयाबाई ने किया है विनय मालिका मे तो सर्वत्र आनुप्रासिक शब्दावली परिलक्षित होती है। जैसे

१ ब्रह्म विसभर वासुदेव विस्वरूप बलबीर।

व्यास बोध बाधाहरन, व्यापक सकल सरीर"

२ कान्हा कूरम कृपानिधि केसव कृस्न कृपाल।

कुन्जबिहारी क्रीटघर कसासुर को काल।।

इनकी शैली प्राजल है। उसमे सर्वत्र प्रवाह, सरसता, सरलता और काव्यात्मकता विद्यमान है। वह भाव को वहन करने मे समर्थ है।

अत भावात्मकता के साथ ही काव्यात्मकता में भी वे सिद्धहस्त है। इनकी आत्मानुभूति को व्यक्त करने में इनकी भाषा-शैली सक्षम है। इनकी दोनो रचनाये सत परम्परा की अमूल्य निधि हैं। इससे सत परम्परा के आचार, विचार, भावनायें, भक्ति, स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त होती है। ये एक सरल हृदय के उद्गार हैं, जो सृष्टि के कण-कण में व्यापक ब्रह्म के साथ तादात्म्य की अवस्था के सूचक है। वे एक उत्कृष्ट कोटि की कवयित्री ही नहीं, वरन् योग साधना को समर्पित साधिका थीं, जिन्होने सत परम्परा के सिद्धान्तो के परिवर्धन में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। उनकी रचनाये माधुर्य भाव के साथ साथ ओज गुणो से भी युक्त है। उनका ब्रह्म निर्गुण-सगुण का समन्वित रूप है। साधना के लिये वे भी अजपा एव अनाहत नाद की प्रक्रिया का उल्लेख करती हैं और यह भी स्पष्ट करती है कि वे इन क्रियाओं से परिचित थीं, अत योग साधना में

भी उनकी पहुॅच थी, यह उनकी रचना से प्रमाणित होता है। वे शब्दमार्गी थीं। आजीवन ब्रह्मचारिणी रहते हुये जीवन के वैराग्य पक्ष को अगीकृत करके इन्होने चरणदासी सम्प्रदाय के सिद्धान्तो के प्रचार-प्रसार मे योगदान दिया। हिन्दी सन्त परम्परा मे सहजोबाई के साथ ही दयाबाई भी विशिष्ट स्थान की अधिकारिणी है, इनकी विशिष्टता इस सदर्भ में भी है कि मध्यकाल मे सम्पूर्ण नारी जाति अन्धकार के कूप में पडी हुई थी, ऐसी विषम परिस्थिति में इनता गूढ ज्ञान वह भी सन्त परम्परा के माध्यम से जनमानस को देना, पुरुष सन्तों की अहमन्यता के बीच स्वय को स्थापित करना भी एक साधना ही है।

(३) बावरी साहिबा

सत परम्परा मे बावरी साहिबा अप्रतिम स्थान रखती हैं। वे बावरी पन्थ की चतुर्थ सत थीं। बावरी-पथ को सन्त सम्प्रदायो मे महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इस पत के प्रवर्त्तक के विषय में दो मुख्य मत हैं। प्रथम मत पर विश्वास करने वाले यह कहते हैं कि इस पथ के प्रवर्त्तक रामानन्द जी थे, जो बनारस जिले के अन्तर्गत किसी पटना गॉव के निवासी थे। द्वितीय मत के अनुसार इस पथ की प्रवर्तिका बावरी साहिबा थीं, कदाचित् यह मत कल्याण के ''सत विशेषाक'' पर आधारित है। इस अक मे बावरी साहिबा ही इसकी सस्थापिका मानी गई हैं, परन्तु इस मत की पुष्टि के लिये कोई उचित प्रमाण नहीं दिया गया है।[१] आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार ''बावरी साहिबा की परम्परा सत परम्परा की आधे दर्जन बडी परम्पराओं में से एक हैं। इसका प्रभाव क्षेत्र प्रधानत दिल्ली प्रान्त तथा उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों तक विस्तृत है। इसके अन्तर्गत उच्चकोटि के अनेक महात्मा हो चुके हैं, जिनके कारण कुछ नवीन पथ भी प्रचलित हो गये हैं

जनश्रुतियों के अनुसार इस पथ का प्रारम्भ उत्तर प्रदेश के गाजीपुर जिले से हुआ था, किन्तु पंथ की रूपरेखा दिल्ली प्रान्त में जाकर निर्मित हुई। अपने अधिक और पूर्ण विकास के लिये इसे एक बार पुन पूर्व की ओर ही लौटना पडा। पथ के प्रथम पॉच प्रचारकों ने इसको सगठित करने का कदाचित कुछ भी यत्न नहीं किया। इनमें से चतुर्थ प्रवर्त्तक को हम एक योग्य नारी बावरी साहिबा कि रूप में पाते हैं, जिसका व्यक्तित्व विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसी कारण यह परम्परा इनके नाम पर आज प्रसिद्ध चली आ रही है।[२] डा० नगेन्द्र ने इन्हें उच्च कुल की महिला माना है।[३] आ० परशुराम चतुर्वेदी उनका सबध किसी राजघराने से होना

---

[१] सत पलटू दास और पलटू पथ पृ० १० डॉ० राधाकृष्ण सिह

[२] उत्तरी भारत की सत परम्परा पृ० ५३९

[३] हिन्दी साहित्य का इतिहास डा० नगेन्द्र पृ०-१३९

सम्भव मानते हैं।[1] डा० भगवती प्रसाद शुक्ल ने अपने शोध प्रबध में इन्हें दिल्ली के किसी सभ्रान्त कुल मे उत्पन्न माना है।[2] सत दास माहेश्वरी ने भी इन्हे दिल्ली के ऊँचे खानदान की महिला माना है।[3] और कदाचित् यही कारण है कि मुसलमान और हिन्दू दोनों ही इनसे प्रभावित थे। बावरी साहिबा के प्रयत्न से ही इस मत का प्रचार प्रसार हुआ और इसने सुव्यवस्थित रूप मे एक पथ का रूप धारण किया। इस प्रकार रामानन्द द्वारा प्रणीत इस पथ ने बावरी साहिबा के समय अपना अलग अस्तित्व बना लिया।[4] बावरी साहिबा अकबर की समकालीन कही जाती है। आ० परशुराम चतुर्वेदी[5] और डा० नगेन्द्र[6] उन्हें अकबर का समकालीन स्वीकार करते हैं। "बावरी पथ के हिन्दी कवि" मे डा० भगवती प्रसाद शुक्ल इनका आर्विभाव अकबर के सिहासनारोहण (स० १५९९) से कुछ समय पूर्व मानते हैं।[7] अत उपर्युक्त आधार पर इनका अकबर के समय होना स्वीकार किया जा सकता है । डा० नगेन्द्र के अनुसार इनका समय १५४२-१६०५ ई० के लगभग माना जाना चाहिये।[8] ये दादूदयाल और हरिदास निरजनी की भी समकालीन कहीं जाती हैं।[9] "महात्माओ की वाणी" (राम वरनदास) से ज्ञात होता है कि बावरी साहिबा मयानद की शिष्या थीं। रामानद के शिष्य का नाम दयानद था तथा उनके शिष्य का नाम मयानद कहा जाता है। बाल्यकाल से ही अध्यात्म में विशेष रूचि होने के कारण सत्यानुभूति और ब्रह्म की साधना में यत्र तत्र भटकते हुये इन्हें समस्त सतों में मयानन्द सबसे योग्य सत प्रतीत हुये और इन्होंने

---

१ सत काव्य पृ०- २८१
२ हिन्दी साहिन्य में निर्गुणोंपासिका कवयित्रियॉं डा० आशा श्रीवास्तव पृ० ८०
३ हिन्दी साहित्य मे निर्गुणोंपासिका कवयित्रियॉं डा० आशा श्रीवास्तव पृ० ८०
४ सत पलटू दास और पलटू पथ डा० राधा कृष्ण सिह
५ उत्तरी भारत की सत परम्परा पृ०-११
६ हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ०-१३९
७ हिन्दी साहित्य में निर्गुणोपासि का कवयित्रियॉं से उद्घृत पृ०-८०
८ हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ०-१३९
९ उ० भा० की सत परम्परा

मयानद को अपना गुरु स्वीकार कर लिया।[1] इसके अतिरिक्त इनकी साधना पद्धति व्यक्तिगत जीवनी और काव्य के विषय मे कोई विशेष सूचना प्राप्त नहीं होती।

बावरी साहिबा के नाम के विषय मे भी कोई स्पष्ट सूचना नहीं मिलती है। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि यह इनका मूल नाम नहीं था। यह तो उनकी चित्तवृत्ति का परिचायक ''उपनाम'' सा है, जिसे लोगो ने उनके विचित्र स्वभाव को लक्ष्य करके बावली (पगली) के अर्थ में सगोपित कर दिया होगा। कहा जाता है कि भगवान के प्रेम में पागल होकर ये अपने घर से निकल पडी थीं। घरवालो तथा सबधियो के द्वारा ये बहुत सताई गई, परन्तु अपनी टेक से विरत नहीं हुई।[2] हो सकता है इसी कारण इनका नाम बावरी प्रसिद्ध हो गया हो। इनके द्वारा रचित ''बावरी रावरी का कहिए'' वाला पद इनकी इसी चित्तवृत्ति को दर्शाता है। कृतित्व के नाम पर इनके अधोलिखित केवल दो पद प्राप्त हैं–

१. सवैया

बावरी रावरी का कहिये, मन ह्वै के पतग भरे नितभावरी,[3]

भावरी जानहि सत सुजान, जिन्हें हरि रूप हिये दरसावरी।

सावरी सूरत मोहिनी मूरत, देकर ज्ञान अनन्त लखावरी,

खावरी सौंह तेहारी प्रभू, गति रावरी देखि भई मति बावरी।।

---

१ सत पलटू दास ओर पलटू पथ डा० राधा कृष्ण सिह पृ०-११

२ हिन्दी साहित्य मे निर्गुणोपासिका कवयित्रियॉ पृ०-८० डा० आशा श्रीवास्तव

३ सत काव्य परशुराम चतुर्वेदी पृ०-२०१

२. प्रभाती

अजपा जाप सकल घट बरतै, जो जानै सोइ पेखा,

गुरु गम जोति अगम घर बासा, जो पाया सोई देखा।

मैं बन्दी हौं परम तत्व की जग जानत की भोरी,

कहत बावरी सुनो हो बीरू, सुरति कमल पै डोरी[१]।।

उक्त पदो का मनन करने से उनकी उच्च आध्यात्मिक स्थिति और साधना की सिद्धावस्था का परिचय मिलता है। स्वय के "बावरी" कहे जाने को लक्ष्य करके वे कहती हैं, कि मन पतग के सदृश ब्रह्म स्वरूप अलौकिक प्रकाश मान सत्ता के चतुर्दिक भॉवरी भर रहा है और इस भॉवरी का सही प्रतिपाद्य केवल सत जन लक्षित कर सकते हैं, जिन्हें हृदय में ही उस ईश्वर का रूप दिखाई देता है। फलस्वरूप जागतिक दृश्यमान सत्य में ही उस अनन्त ईश्वर के दर्शन हो जाते हैं और आपकी (ईश्वर की) यही स्थिति लक्ष्य करके मेरी वुद्धि बावरी हो गयी है। अत उनकी मनोदशा और उनका नाम एक इसरे के सार्थक प्रतिबिम्ब हो गये हैं। इनके द्वारा रचित सम्पूर्ण पद रचना राशि के प्रकाश में न आने से इनका सम्प्रदायगत अभिप्राय जानना कुछ कठिन है तथापि इनका "अजपा जाप सकल घट" वाला पद इनकी साधना पद्धति पर बहुत कुछ प्रकाश डालता है। इस पद के आधार पर हम उन्हें "सुरति-शब्दमार्गी" कह सकते हैं। उनका कथन है कि, सभी प्राणियों के शरीर में स्वत अजपा जाप की क्रिया हो रही है किन्तु इसे वही समझ सकता है, जिसने इसका अनुभव किया हो। उस प्रकाशमान परमतत्व की अनुभूति जब गुरुकृपा से होती है, तभी साधक सफल होता है। अपने शिष्य बीरू साहब को सम्बोधित करती हुई वे कहती हैं कि मैं उस परमतत्व की दासी हूँ और यह ससार मुझे भोरी (पगली) मानता है।

---

[१] सत काव्य परशुराम चतुर्वेदी पृ० २८१

सुरति रूपी डोर को ब्रह्मरन्ध्र रूप कमल से सम्पृक्त रखने की आवश्यकता है। इस "सुरति-शब्द योग" मे काष्ठ की माला इत्यादि की आवश्यकता नहीं होती।

उनकी रचनाओ मे प्राप्त अजपा-जाप, सुरति, कमल, डोरी इत्यादि शब्दों के आधार पर हम उन्हे निर्गुण शब्दमार्गी साधिका कह सकते हैं। "मन ह्वै के पतग भरे नित भॉवरी" उनकी भगवत्प्रेम मे तन्मयता की स्थिति का परिचायक है। "भॉवरी जानहि सत सुजान" कहकर सत समुदाय द्वारा उस तन्मयता एव तल्लीनता की वास्तविक अनुभूति और उनकी तल्लीनता के कारण का वास्तविक ज्ञान सतों को ही है, क्योकि सत जन भी इसी तन्मयता का अनुभव करते हैं, इस तथ्य का दिग्दर्शन कराती हैं। ''गुरु गम जोति अगम घर बासा जो पाया सोइ, देखा'' कहकर वे गुरु द्वारा निर्दिष्ट साधनापद्धति पर अग्रसर होते हुये परम तत्व की अनुभूति प्राप्त करने का सत्य उल्लिखित करती हैं। उक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि निर्गुण मतावलम्बियो द्वारा अनुमोदित एव मान्य सिद्धान्त बावरी पथ में भी अपनायें गये। साथ ही "बावरी रावरी का कहिये" वाले पद में सूफी प्रेमोन्माद भी परिलक्षित होता है। अत विलक्षण भाव बोध मे निमग्न रहने वाली "बावरी" साहिबा उच्चकोटि की साधिका सिद्ध होती हैं।

बावरी साहिबा का व्यक्तित्व अत्यन्त आकर्षक तथा प्रभावकारी था, जिसके कारण जाति-पॉति के बधन अस्वीकार करते हुये बहुत से लोग इनके प्रभाव से अपने को वचित न कर सके और इनके शिष्य हो गये।[1] सख्या की दृष्टि से कम होते हुये भी इनके पदों का उच्च आध्यात्मिक स्तर इन्हें उच्चकोटि की कवयित्री सिद्ध करता है, और सत मत में इनके महत्व और प्रभाव को भी रेखाकित करता है। समृद्ध शिष्य परम्परा (बावरी-बीरू-यारी साहब-बुल्ला साहब-जगजीवन साहब) उनके इस महत्व का परिचायक है।

इस प्रकार निर्गुण-सत-परम्परा को समृद्ध करने वाली स्त्री सत कवयित्रियों में बावरी साहिबा का महत्वपूर्ण स्थान है।

---

[1] हिन्दी साहित्य मे निर्गुणोपासिका कवयित्रियॉ पृ० ८३ डा० आशा श्रीवास्तव

(४) उमा

स्त्री सत काव्य परम्परा मे ''उमा महत्वपूर्ण सथान रखती है। वे राम सनेही सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक स्वामी रामचरण दास जी के शिष्य रामजन की शिष्या कही जाती हैं।[1] रामजन रामसनेही सम्प्रदाय के शाहपुरा शाखा के थे। जैसा कि उन्होने स्वय कहा है–

"उमा राम जहा के सरणै निरभै पर पाइ रे।"

"मध्यकालीन हिन्दी कवियित्रियॉ" की लेखिका डा० सावित्री हिन्हा उनके गुरु का नामोल्लेख किये बिना उनके द्वारा किसी सत को गुरु बनाने का उल्लेख करती है। "उमा भी किसी सत को गुरु बनाकर उनसे सतगुरु का भेद जाने की जिज्ञासु कोई शिष्या प्रतीत, होती है।[2] रामजन स० १८३९ वि० (सन् १७८२) में विद्यमान थे, अतएव उमा का भी यही समय माना जाना चाहिये। नागरी प्रचारिणी सभा की खोज में उपलब्ध हस्त लिखित हिन्दी ग्रन्थों का सत्रहवॉ त्रैवार्षिक विवरण के पृष्ठ ७९ पर इनका उल्लेख है।[3] इनके जीवन के बारे में और कोई भी उल्लेख नहीं मिलता है।

कृतित्व

इन्होंने कितने पदों की रचना की है, यह निश्चित नहीं है, क्योंकि इनके पदों का कोई भी सकलन प्राप्त नहीं है। हस्तलिखित रूप में इनके सात (७) पद मिलते हैं। हो सकता है, इन्होंने

---

१ हिन्दी साहित्य मे निर्गुणोपासिका कवयित्रियॉ पृ०-१५६

२ मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियॉ पृ०-४६

३ हिन्दी में निर्गुणोयासिका कवयित्रिया पृ० १५६

और भी पद रचे हो, किन्तु सकलन न हो पाने के कारण ये पद नष्ट हो गये हों। इनके प्राप्त सातो (७) पद निम्नाकित हैं।

राग परज

(१) आयों मारे दिन-दिन सुजस वाइ रे सता छै। टेक

धन सतगुरु तुमे परमहस हो नीर षीर नरणों कराई रे ॥१॥

पर करती परव्रती त्यागी नस्वर तीन गसाई रे ॥२॥

सत पुरुष मुगति के दाता भरम कोले भेर मेटाइ रे ॥३॥

तरगुण रहित निरजन देवा ज्याको ध्यान धराइ रे ॥४॥

उमा रामजना के सरणै निरभै पदवी पाइ रे ॥५॥[1]

(२) ऐसे जन पुज वु जु राम रग राते हैं ॥ टेक ॥

ग्यान ध्यान सै सव सुजलीया, भारी समता धन मैं ऐसे सत माते हैं ॥१॥

पॉच पचीस तीन गुण सु रहीत स्याई है, आप सो अलपत स्वामी सोई सत कहाई है॥२॥

भरम करम के भार जु दूर करावै, आप सरूप सामी सब में कुहावै ॥३॥

सुध-बुध सु सैन सुष पावै पारब्रह्म एक तारधार कै एक भाव रहावै है ॥४॥

सतगुरु सूरासावत है अवनासी उमा नित दरसणा पावै सरणा में दासी ॥५॥[2]

---

[1] हिन्दी में निर्गुणोपासिका कवयित्रियॉ पृ-१५६

[2] वही पृ० १५७ से उद्धृत

राग बसंत

(३) सातो सुरत सुन्दरी नाही जाय ।

पलक पीया सग क्यू न आय ।। टेक ।।

पीया के सग अमर सुष पाय ।

इमरत रास (रस) का फल खाय ।।

जनम मरण का दुष वलाय ।। १।।

ऐसो सुष सतगुरु बगसाय ।

अनन्त कोट जनमै मा गाय ।।

सुरत सबद मेरा षोय ।।

अमरापुर मे वासो होय ।।२।।

ओ अवसर अब बन्यो है आय ।

अवसर सुका (चूक्या) फेर पसताय (पछताय),,

नागरी (नगुरा) नर दो जग (दोजख) मा ।

उमा सतगुर सरणोधया ।।३।।[१]

पद

(४) सहेल्या हमारो बौहौत सुप्यारौ सैण सतगुरु जी सैण चलायौ है ।। टेक ।।

राम तमारा ना मै हौ रैण दिवस तलफाय ।

---

[१] हिन्दी साहित्य के निर्गुणोपासिका कवयित्रिया पृ० १५८

नेरा सु दूरा क्यू होइ मुझ मै सुकवताय ।।१।।

सुरत नरत कर पथ जी हार करम लोगे आठ ।

बिरहन कू विसवास दीजै तुम बिन रह्यौ न जाई ।।२।।

बौहत दिना रौ अतरौ भागौ असमो माह ।

सतगुरु म लय जाइया हौ मिलिया पूरण ब्रह्ममाह ।।३।।[1]

(५) ऐसे फाग खेले राम राय।

सुरत सुहागण सम्मुख आय।।

पच तत को वन्यो है बाग।

जामे सामन्त सहेली रमत फाग।।

जहँ राम झरोखे बैठे आय।

प्रेम पसारी प्यारी लगाय।।

जहाँ सब जनन को बन्यो है ज्ञान गुलाल लियो हाय।

केसर गारो जाय।[2]

(६) सैया हो मेरी सब ही न बीरी हो गुनो।

करुणानन्द सामी अरज सुनो।।

कामी, कपटी क्रोधी मन बसु लालच मे अतिलीन।

अधम उधारन विरद तुम्हारो से क्यो होवेगा दीन?

---

१ हिन्दी म निर्गुणोपासिका कवयित्रियॉ पृ०-१५८

२ मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियॉ पृ०-४७

जो तुम तारी सन्तन का हो मेरी समारत नाहि।

अधम उधारन नाम सुना हो खुसी रहुँ मन मॉह।[1]

(७) जागी जोति जगत गुरदरस्या अगम सनाबे।।

रचनॉ बना राम धुन लागी जॉने सत सुनॉ नावे ।। टेक ।।

गगन कमल मै गाजै अनहर सुन है वन का नाबै ।

चरन बना जहॉ नर-तरकत है, देखत है ब्रस दा नाबै।।

भॉति-भॉति सुषदाइ नाटक प्रेम मगन गलता नाबे।।

रीत रमइया मो जा बगसी जौ षत भरण माराणबे।।

सोग सताप सनेही लागा निति आनद वलसा नाबे।।

नो तम प्रीत नरजन सेती कवल कवल बगसा नाबे।।[2]

उक्त पदो के अतिरिक्त उन्य कोई भी रचना उनकी प्राप्त नहीं है। इन पदो के आधार पर उनकी साधना का स्वरूप बहुत कुछ स्पष्ट हो जाता है। नामस्मरण के लिये इन्होंने भी ''राम' का नाम लिया है किन्तु कबीर के ''राम'' की भॉति इनके राम भी दाशरथि राम न हो कर त्रिगुणातीत, ''नरजनदेवा जाकी ध्यान धराइ रे" निर्विकारी, निर्लेप, निरञ्जन ब्रह्म हैं जो चिरकाल से पच तत्वो से निर्मित शरीर रूप वाटिका मे प्रेम रूप पिचकारी और ज्ञान रूप गुलाल से चिर सहचरी (आत्मा) के साथ फाग खेलने काउपकम करते हैं–"ऐसे फाग खेले राम राय"।–आत्मा रूपी विरहिणी भी रात दिन उनके वियोग मे तडपती रहती है। "राम तमारा नाम मैं हौ रैण दिवस तलफाय'' विरहन कू विसवास दीजै तुम बिन रह्यो न जाई ।[1] इनके पदों के मनन से यह

---

[1] मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियॉ पृ०-४८

[2] हिन्दी साहित्य मे निर्गुणोपासिका कवयित्रियॉ पृ० १५९

ज्ञात होता है कि इन्हे यौगिक शब्दावली का पूर्ण परिचय प्राप्त था। सुरत, निरत, सुहागण, पच तत, बाग, फाग, गगन, महल, कवल, सहेली, ऐसे ही शब्द हैं जो सत परम्परा मे आत्मा परमात्मा के चिर साहचर्य ओर जीव द्वारा अहर्निश ध्यानावस्था के विभिन्न सोपानो के लिये प्रयोग किये जाते है।

ज्ञान प्राप्ति के लिये सतगुरु की आवश्यकता होती है। उमा भी अपने गुरु रामजन के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुये उन्हे परमहस की श्रेणी मे रखती है जिन्होने उन्हे विवेक की दृष्टि प्रदान की –

''धन सतगुरु तुमे परमहस हो नीरषीर नरणे कराई रे ''

उमा राम जना के सरणै नरभै पदवी पाइ रे।''

वियोग व्यथा से विवश आत्मा सतगुरु का सैन (इशारा) पाकर व्याकुल सी पुकार उठती है–

सहेल्या हे मारो बौहौत सुप्यारौ, सतगुरु जी सैण चलायो।

राम तमारा नाम मैं हौ रैण दिवस तलफाय ।।

और अत मे सतगुरु के माध्यम से पूर्ण ब्रह्म में लय हो जाने की इच्छा को प्रकट करती है–"सतगुरु मे ल्य जाइया हो मिलिया पूरण ब्रह्म माह''। वे सतगुरु से विनय करती हुई सन्तो के जीवन मे समाये हुये फाग की प्राप्ति चाहती है–

"सतगुरु जी फगवा बगसाव उमा की अरदास सुनो।"

---

[1] मध्य कालीन हिन्दी कवायित्रियॉ पृ०-४७

वे ऐसे सतो की भी अभ्यर्थना करती है जो राम के रग मे रगे हैं, पॉच तत्वो, तीन गुणो के गुणो अवगुणो से निर्लिप्त है, वे ही सत जन कहलाने के अधिकारी है और उमा ऐसे सत जनो की पूजा करती है–

ऐसे जन पुज वु जु राम रग राते है।

पॉचपचीस तीन गुण सुरहीत स्याई है, आप सो अलपत स्वामी सोइ सत कहाइ है।

एक अन्य पद मे अपनी दीनता और तुच्छता करती हुई अपने आराध्य से अपने अवगुणो की ओर ध्यान न देने की बात कहती है। उनके सैया करूणानन्द है। यहॉ पर उनका आराध्य साकार और निराकार का समन्वित रूप है। वह केवल सूक्ष्म ब्रह्म रूप ही नहीं वरन अधमो का उद्धार करने वाला साकार विग्रह भी है –

सैंया हो मेरी सब ही न बीरी हो गुनो,

करूणा नन्द सामी अरज सुनो।

कामी, कपटी, क्रोधी मन बसु लालच मे अतिलीन

अधम उधारन विरद तुम्हारों सो क्यो होवेगा दीन?

जो तुम तारी सन्तन का हो मेरी समारत नाहि।

अधम उधारन नाम सुना हो खुशी रहुँ मन मॉह।

निर्गुण सत मार्गी साधना का लक्ष्य है अनाहत नाद श्रवण षट्चक्रों मे चौथा चक्र है अनाहत। इसका स्थान है हृदय। चक्रो के भेदन के कम मे कुण्डलिनी शक्ति जब आनाहत चक्र का भेदन करती है तब अनाहत नाद निकलता है। ये नाद दस प्रकार के होते हैं घटा,शख,

बासुरी, वीणा, मधुरतान, ताल, मृदग, नगाडा, मेघ की गर्जना और प्रणव यानी ॐकार की ध्वनि। पातञ्जलि योग सूत्र मे इन नादो का वर्णन आया है। उमा ने भी गगन महल मे अनाहत नाद के श्रवण की बात कही है, जो इनकी आध्यात्मिक ऊँचाई और योग मे इनकी गहरी पैठ का परिचायक है।

जागी जोति जगत गुरु दरस्या अगम सनाबे

रचनॉ बना राम धुन लागी जॉने सत सुनॉ नावै ।

गगन महल मै गाजै अनहद सुन है वन का नाबै ।।

अत उमा की साधना पद्धति के बारे मे कहा जा सकता है कि वे निर्गुण ब्रह्म की उपासिका थीं। सत मत के अनुसार आत्मा की अमरता मे विश्वास करने वाली थी (सतगुरु सूरा सावत है अविनासी) गुरु को ब्रह्म से साक्षात्कार कराने वाला मानती हैं, (सतगुरु मे लय जाइया हो मिलिया पूरण ब्रह्म मॉह) भक्ति के अन्य गुण दैन्य, विनय, आत्मनिवेदन, अत्मविह्वलता की इनके काव्य मे दृष्टव्य है।

इनकी भाषा राजस्थानी मिश्रित हिन्दी है। भाषा मे तद्भव रूप का बाहुल्य है। भाषा कहीं-कहीं ग्रामीणता के कारण दुरूह हो गई है। पदो मे भी कहीं-कहीं मात्राये अधिक हैं, कहीं कम है। अत ये काव्य शास्त्र के ज्ञान से रहित प्रतीत होती है। वैसे भी इन आत्मलीन सतो मे सौन्दर्य के बाह्य तत्व खोजना न केवल इनकी कविता के साथ अन्याय है अपितु इन सतों की भावनाओ के साथ भी खिलवाड है। कविता तो इनकी अन्तर्तम की गहन अनुभूतियो का प्रकाशन हैं, अत इनको इसी परिप्रेक्ष्य मे देखना चाहिये।

सम्पूर्ण सत काव्य मे सतो की नारियो के प्रति नकारात्मक दृष्टि होते हुये भी इस परम्परा मे हम बहुत से स्त्री रत्न खण्डो से परिचय प्राप्त करते हैं। इनमे महानता सतो की भी है जो स्त्रियो के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण रखते हुये भी उन्हे अपनी शिष्या के रूप मे ज्ञान के योग्य पाते है और इन शिष्याओ की भी जो इनके दृष्टिकोणो से भली भॉति परिचित होते हुये भी इन्हीं की शरण मे ससार की गति देखती है। उमा भी ऐसी ही एक शिष्या हैं, जिन्होंने सत परम्परा मे अपना बहुमूल्य योगदान दिया।

(५) पार्वती

मध्यकालीन सत कवयित्रियो की चर्चा करते समय ''पार्वती ' का उल्लेख भी आवश्यक हो जाता है। उनके सबध मे किसी भी सूचना का अभाव होने के कारण उनका काल निर्धारण नहीं हो सकता है। उनके पारिवारिक सन्दर्भ का भी कहीं उल्लेख नहीं है। अन्त साक्ष्य के द्वारा केवल इतना ही स्पष्ट होता है कि वे ''किसी'' (गुरु का भी नामोल्लेख उन्होने नहीं किया है।) निस्पृह, निहस्वादी कामदग्धी गुरु की शिष्या थीं।

निस्प्रही निहस्वादी कामदग्धी दिने दिने।

तासु शिष्यॉ देवी पार्वती।।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इनके स्त्री होने के बारे मे सन्देह प्रकट करते हुये लिखा है" नाथ योगियो की प्राप्त वाणियो मे नामो की विचित्र तोड मरोड है। कभी-कभी एक ही नाम को उच्चारण विकृति के कारण भिन्न-भिन्न मान लिया जाता है। ऐसा जान पडता है कि परबत सिद्ध बाद मे उसी प्रकार "पार्वती" या "पारबती" बना दिये गये जिस प्रकार काणेरी पाद "सती काणेरी" हो गये। इसका एक कारण यह भी है कि ' परबत शब्द का तृतीयान्त या सप्तम्पन्त पुराना रूप परबीत होता है।[1] किन्तु उनकी रचनाओ के अन्तिम पद से उनका स्त्री होना प्रमाणित होता है जैसे

नाद बिन्दु घटि जरै।

ताकी सेवा पारबती करै।

*   *   *   *

---

[1] ' हिन्दी साहित्य मे निर्गुणोपासिका कवयित्रीयॉ पृ० ४१

मिष्या भोजन सहज मे फिरै।

ताकी सेवा पार्वती करै।।

पार्वती द्वारा रचित किसी रचना का उल्लेख नहीं मिलता। केवल कुछ पद "काशी" नागरी प्रचारिणी सभा", वाराणसी के पुस्तकालय मे "सेवादास की वाणी" नामक हस्तलिखित ग्रन्थ मे सकलित है। इसमे अनेक सतो की वाणियो का सग्रह है। इसी ग्रन्थ मे क्रमाक १२७३ पृष्ठ २९४ में "पारबती जी की सबदी" के नाम से कुछ पद सकलित हैं, जो इस प्रकार है--

जलमल भरीया तल। अनगिन बलैनाभि कैतल

अगनिन बलै न प्रगटै किरन। ता कारनिया पारबती जगमकार्मन।

अरूठ कोठि के थरी जल मथरी। नासिका पवन बैलै नाभि-किलली।

उलटै पवन गगन समाई। ता कारनि ये सब मरि-मरि जाई।

रूख बष गिरि कदर वास। निरधन कथा रहै उदास।

मिष्या भोजन सहज मै फिरै। ताकी सेवा पारबती करै।

काक दृष्टि बगो ध्यानी। बाल अवस्था भुवगम आहारी।

अवधूत सो बैरागी पारबती। दूजा सब भेष धारी।

धन जोवन की करे न आस। चित्त न राषै कामणि पास।

नाद बिन्दु जाकै घट जरै। ताकी सेवा पावती करै।

निर्धन के कथा ह विस्तार। जुगति निरतरि रहनि अपार।

नाद बिद जाके घटि जरै। ताकी सेवा पारवती करै।

निष्प्रेही निहस्वादी। कामदग्धी दिने-दिने।

तासु शिष्या देवी पारबती । मोधि मुक्ति तत्त धिते।[1]

---

[1] हिन्दी साहित्य मेनिर्गुणोपासिका कवयित्रियॉ से उदघृत पृ० ४३

उपयुर्क्त उक्तियो के आधार पर कहा जा सकता है कि पार्वती किसी निस्पृह कामदग्धी गुरु की शिष्या थीं। अपनी रचना मे प्रयुक्त शब्दावली से वे योगमार्गी सिद्ध होती हैं, जो समाज के धन-वैभव-आर्कषण से पूर्णतया विरत प्रतीत होती है। वे मनुष्य को धन, यौवन से विरत रहने का उपदेश देती है, क्योकि इन आर्कषणो के मध्य साधना नहीं हो सकती है। इनके पद इन्हे शुष्क योगमार्गी सिद्ध करते है। प्रेम की सान्द्रता इनके पदो मे नहीं है।

उपर्युक्त कुछ पक्तियो के आधार पर उनके काव्य का मूल्याकन करना कवयित्री के साथ अन्याय है। उनके बारे मे इतना ही कहा जा सकता है कि वे सासारिक वातावरण, क्रिया-कलाप से दूर, नाथ पथ की ही तरह के किसी पथ की साधिका थीं।

रूक्ख वष गिरि कदर बास।

निरधन कथा रहै उदास।।

से इसकी पुष्टि होती है। कबीर की भॉति उलटवॉसियों का भी प्रयोग उन्होने किया है--

उलटै पवन गगन समाई

ता कारनि ये सब मरि-मरि जाई।

योग-साधना के लिये "काग दृष्टि बगोध्यानी" होना आवश्यक है। वे नाद, बिन्दु की साधिका थीं, जो प्राणायाम केनियमो से परिचित थीं।

''नासिका पवन बैलै नाभि कित्तली '

उपसंहार

उपसंहार

भारत का आदर्श है- आत्मा की मुक्ति। यहॉ मानव का केवल एक ही कर्तव्य बतलाया गया है और वह है इस अनित्य, क्षणभंगुर जगत में नित्य, शाश्वत तत्व का प्राप्ति। उसकी प्राप्ति के लिये कोई एक निश्चित मार्ग नहीं है। मनुष्य को इस ध्येय की ओर ले जाने वाला हर मार्ग सही है।

इसमे सन्देह नहीं है कि हमारा मूल स्वरूप दिव्य या सच्चिदानन्दमय है, किन्तु ससारोन्मुखता एव भोगैषणा की प्रवृत्ति के कारण हम अपने ब्रह्मभाव का उद्घाटन नहीं कर पाते। वस्तुत ईश्वर प्राप्ति की साधना का मार्ग छूरे की धार पर चलने के समान कठोर और दुर्गम है। शास्त्र कहते हैं-

"पराञ्चिखानि व्यतृणत् स्वयभू, स्वस्मत्पराङ्पश्यति नान्तरात्मन्।
कश्चिद्धीर प्रत्यगात्मान मैक्षदा, वृत्त चक्षुरमृतत्वमिच्छन्।।"

अर्थात् परमात्मा ने इन्द्रियों की ऐसी रचना की है कि वे बाह्य जगत की ओर उन्मुख रहती हैं, अन्तर्जगत की ओर नहीं। सयोगवश थोडे से बुद्धिमान् अमृतत्व के अभिलाषी व्यक्ति अपने नेत्रों को भीतर की ओर प्रत्यावर्तित कर अपने आत्मस्वरूप का अवलोकन कर पाते हैं। गीता में भगवान कृष्ण कहते हैं-

मनुष्याणा सहस्रेषु कश्चित् यतति सिद्धये।
ययतामपि सिद्धाना कश्चिन्माम् वेत्ति तत्वत ।। ७/३।

अर्थात् सहस्रो मनुष्यो मे कदाचित् दो-एक व्यक्ति ही मुक्ति प्राप्ति की चेष्टा करते हैं और सहस्रो जिज्ञासुओ मे दैवाति ही कोई उस परमतत्व को जान पाता

है। जब तक मनुष्य को आशा, तृष्णा के दृढ रज्जुओ से बधे होने का अनुभव नहीं होता, तब तक उसमे मुक्ति की आकाक्षा जाग्रत नहीं होती। बधन का अनुभव एव उसे काटकर अपने मूल स्वरूप को प्राप्त करने की व्याकुलता अमृतत्व (मुक्ति) की प्राप्ति का प्रथम सोपान है। इस भारत भूमि मे अमृतत्व के अभिलाषी परम सत्य की अनुभूति करने वाले ऋषियो की दीर्घ परम्परा रही है।

प्राचीन काल स ही भारत मे स्त्रियो का स्थान घर की निभृत चहार-दीवारी मे रहा है। आत्मत्याग, सहिष्णुता और सतीत्व का प्रतीक सीता और सावित्री भारतीय स्त्रियो का आदर्श रही है। सतीत्व के इस आदर्श के साथ मातृत्व का आदर्श भी जोड दिया गया है। उन्हे शास्त्र-ज्ञान प्राप्त करने के योग्य नहीं समझा गया, किन्तु ऐसी स्थिति आरम्भ से नहीं थी। वैदिक सस्कृति में ऐसी भी स्त्रियॉ मिलती हैं जो ऋषि थीं, जिन्होने सत्य का साक्षात्कार किया था, और जो सामान्य स्त्री पुरुषो से काफी ऊपर थीं। ऐसा कैसे सभव हुआ कि जिस स्त्री ने सत्य का साक्षात्कार कर मानवता को कुछ नया देने की ऊँचाई को प्राप्त किया था, वही अपने इस स्तर से गिर गई? यह स्थिति लगभग दो हजार वर्षों से ही दिखाई पडती है, जब पुरुषो ने शास्त्र ज्ञान पर एकाधिकार कर लिया और स्त्रियो को इसके अयोग्य घोषित कर उसे इससे वचित कर दिया। किन्तु किसी शास्त्र मे ऐसा नहीं कहा गया है कि स्त्रियॉ ज्ञान-भक्ति की अधिकारिणी नहीं हो सकती है। वेदान्त मे तो कहा गया है कि एक ही चित् सत्ता सर्वभूतों मे विराजमान है। परब्रह्मत्व मे लिग-भेद नहीं है। हमे, मै तुम की भूमि मे ही यह लिग भेद दिखाई देता है। श्वेताश्वतर उपनिषद् मे ऋषि कहते हैं- ' त्व स्त्री त्व पुमानसि, त्व कुमार उत वा कुमारी''। परमात्मन् तुम्हीं स्त्री हो, तुम्ही पुरुष का

रूप धारण करते हो और तुम्हीं कुमार या कुमारी हो। वस्तुत स्त्री-पुरुष मे बाह्य भेद रहने पर भी आत्मिक दृष्टि से कोई भेद नहीं है, अत यदि पुरुष ब्रह्मज्ञ बन सकते है तो स्त्रियॉ ब्रह्मज्ञ क्यो नहीं बन सकती हैं? इसी धारणा को मध्यकालीन सतकवयित्रियॉ सत्य प्रमाणित करती दिखाई देती हैं, जिन्होने पारिवारिक दायित्वो से मुक्त होकर अपने को पूरी तरह आध्यात्मिक साधना एव ईश्वर भक्ति मे अर्पित कर दिया, और अपने आध्यात्मिक सघर्ष और अनुभवो की अनमोल धरोहर हमारे लिये सुन्दर पदो और गीतों के रूप में छोड गईं।

इन्होने हमे क्या दिया, इस मूल प्रश्न की पर्यालोचना से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि तब हमारी स्थिति क्या थी, हम कहॉ थे। हम थे ऐसे परिमण्डल में जहॉ सब था, नहीं था तो ईश्वर के प्रति हमारा सच्चा आकर्षण, नहीं थे ईश्वर। ईश्वर के प्रति आकर्षण को एव ईश्वर को हमने खो दिया था। खो गये थे हम हिन्दू, मुसलमानो के अन्तसघर्ष में, कट्टर हिन्दू समाज की नाना शाखा-प्रशाखाओ के साम्प्रदायिक कलह के विभ्रान्तिकर आवर्त्त में एव अनेकों कुसस्कार और सकीर्णताओ के विराट आर्वजना स्तूप में। इन सत कवयित्रियो ने ईश्वर के प्रति हमारे खोये आकर्षण को पुन लौटा दिया। हमारे जीवन का परम ऐश्वर्य है यह ईश्वर प्रेम। मध्ययुग में धर्मीय नैराज्य (अव्यवस्था) के वातावरण में, अविश्वास एव सशय के क्षणों में एव धर्म के नाम पर कुसस्कार और असहिष्णुता के निर्बाध विस्तार के युग में हमारे जीवन से यह ऐश्वर्य यह सपदा अदृश्य हो गई थीं। इन सतो ने हमारे जीवन में फिर से ईश्वर प्रेम एव ईश्वर को लौटा दिया। इनका उद्देश्य है मनुष्य का उत्तोलन, मनुष्य का उत्तरण मनुष्य का उर्ध्वायन। इस उर्ध्वायन मे मनुष्य का मार्गदर्शक है सद्गुरु। गुरु में ही वह शक्ति

है जो मनुष्य की वृत्तियो को उर्ध्वगामी करके परमतत्व तक पहुँचने का मार्ग आलोकित करता है। गुरु शब्द की व्याख्या करते हुए शास्त्र वचन कहते हैं-

गुशव्दशचान्धकार स्याद्रुशब्दस्तन्निरोधक।
अन्धकार निरोधित्वात् गुरुरित्यभिधीयते।।

गु शब्द का अर्थ है अन्धकार, रु का अर्थ है निरोधक, अर्थात् अन्धकार को जो निरूद्ध करे उन्हे गुरु कहा जाता है। गुरुस्तोत्र मे भी कहा गया है कि-

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलित येन तस्मै श्री गुरवे नम ।।

अर्थात् अज्ञान तिमिराच्छन्न व्यक्ति के चक्षुओं को ज्ञानाञ्जन शलाका से उन्मोचित करने वाले गुरु है। गुरु शब्द की यही व्याख्या, यही महत्ता सत कवयित्रियो के साहित्य मे उल्लिखित है।[1] गुरुवाणी मे विश्वास, उसका अन्तर से मन-प्राण से ग्रहण, मनुष्य के चञ्चल सशयाकुल मन की विश्रान्ति के लिये आवश्यक है।

इनकी रचनाओ का प्रतिपाद्य भगवान के नाम का गुणगान, साधुसग, नित्यानित्य विचार, गुरुमहिमा का उद्देश्य एक ही है, मन से ससार के प्रति राग भावना का त्याग कर, भगवान के प्रति, चित् शाश्वत तत्त्व के प्रति अपनी मनोवृत्तियो का निक्षेपण। ये अपनी वाणी से ही नहीं वरन् आचरण से भी मनुष्य को भोगैषणा से उबारने का महत्वपूर्ण कार्य करतीं हैं। विरागमूलक सत साहित्य का अन्त प्राण ही है, सच्चिदानन्द स्वरूप की प्राप्ति। इन सत कवयित्रियों ने

---

[1] उक्त शोध प्रबन्ध मे चतुर्थ एव पचम अध्याय देखिये।

समाज मे प्रचलित अनेक अन्धविश्वासो, आडम्बरो, तीर्थाटन आदि की नि सारता प्रतिपादित करके अत्यन्त निकट अपने हृदय में ही उस ईश्वर को खोजने की अन्तर्दृष्टि प्रदान की। "एक सत विप्रा बहुधा वदन्ति" की ही तरह अनेक साधना पद्धतियो को एक ही ईश्वर तक पहुँचने के अनेक रास्ते बताये। स्वय में सब प्राणियो को एव सब प्राणियो मे स्वय को देखने की विराट मानवतावादी दृष्टि इन सत कवयित्रियो के काव्य की मूल अन्तर्वस्तु है। इनके काव्य में ज्ञानी का ज्ञान एव भक्त का हृदय दोनो एक साथ परिलक्षित होता है। ये परत-दर-परत मनुष्य की अज्ञान की ग्रन्थियो को खोलते हुए, मनुष्य की अनेक समस्याओ का अत्यन्त सरल समाधान प्रस्तुत करती है। आश्चर्य होता है इस सत साहित्य पर, क्योकि मध्यकाल में वे इतनी निरीह, इतनी पदाक्रान्त, इतनी अशिक्षित, इतनी दलित हैं, दलित ही नहीं अतिदलित हैं, ऐसी स्थिति में इतनी विपुल ज्ञान राशि, वह भी उसी साधना पथ मे जिसमें वे अत्यन्त तिरस्कृत हैं, मनुष्य मात्र को प्रदान करती हैं, आश्चर्य नहीं महाआश्चर्य है।

रवीन्द्र नाथ टैगोर ने एक स्थान पर कहा है कि, "भारत विचित्रताओं का देश है। वैचित्र्य ही भारतवर्ष का सत्य है एव इस वैचित्र्य के बीच एकत्व की सृष्टि करना ही भारत वर्ष की साधना है।" उक्त विचार भारत की विविध साधना पद्धतियो के बारे मे भी उतना ही सत्य है, जितना अन्य अनेक क्षेत्रों के विषय में। प्रस्तुत शोध कार्य के अध्ययन के समय भी मुझे इसी सत्य का आभास पग-पग पर होता रहा। पूर्व से पश्चिम एव उत्तर से दक्षिण तक देश का आत्मिक स्वर एक ही है- सत्य का साक्षात्कार एव प्रसुप्त मुमुक्षत्व को जाग्रत करके चिद्सत्ता से चिर साहचर्य। उत्तर की लालदेद या देवी रूप भवानी हों, या दक्षिण की

मुक्ताबाई, बहिणाबाई, जनाबाई, अक्काबाई, महादायिसा बयाबाई एव मल्ला हो, पश्चिम की कृष्णाबाई, गवरीबाई, इन्द्रामती, पुरीबाई, दिवालीबाई, राधाबाई हों या हिन्दी प्रदेश की सहजोबाई, दयाबाई, बावरी साहिबा, उमा, पार्वती हों, सर्वत्र इसी आत्मिक ऐक्य के दर्शन होते हैं। अनेक विभिन्नताओं के होते हुए भी इनके विचार, आचरण साधना पद्धति मे आश्चर्यजनक समानताये हैं। इनका उद्‌घाटित एव आचरित सत्य एक है और वह है इनका ईश्वर के प्रति प्रेम, ईश्वर विभिन्न नामो से पुकारा जाता हुआ भी एक है, और वह अपने चेतन स्वरूप में सब प्राणियो मे व्याप्त है। सतकवयित्रियों की यह विराट मानवतावादी दृष्टि भारत की विश्वबन्धुत्व की अग्रणी भूमिका का सत्य उद्‌घाटित करती है। भारत में ही वह शक्ति है कि वह जगद्‌गुरु होकर विश्व को सत्य की ओर ले जा सकता है।

सत कवयित्रियो का साहित्य विस्तार है स्वय का जगत् के अन्य प्राणियो के साथ, गति है परमगति मान सत्ता के साथ, लय है परब्रह्म में लयमान होकर दृश्यमान जगत् से भी परे ब्रह्माण्ड के सत्य जानने का, नाद है नाद ब्रह्म में समाहित होकर समस्त चेतन तत्वों के नाद-स्वर पहचानने का, दृष्टि है स्वय में अन्य प्राणियों को एव अन्य प्राणियों में स्वय को अन्तर्भूत देखने की, परम सत्य मार्ग है उस परम सत्य तक पहुँचने का। यह वह आत्मिक स्वर है जिसे हम किसी भी भाषा के साहित्य मे मनुष्य के ससीम से असीम होने के क्रम में सुन सकते हैं।

—❀—

परिशिष्ट

परिशिष्ट

चतुर्थ उप पञ्चम अध्याय मे सकलित सत कवियित्रियो के अतिरिक्त भी अनेक सतकवयित्रियो का उल्लेख प्राप्त होता है। इन सत कवयित्रियों के बारे में वृहद सूचना का अभाव एव इनकी रचनाओ के प्राप्त न होने की स्थिति में इनका उल्लेख परिशिष्ट के अन्तर्गत करना मै उचित समझती हूँ, जिससे आगामी शोध को दिशा एव विषय मिल सके।

(१) अक्काबाई

ये समर्थ रामदास की शिष्या थीं। ये करहाद के रूद्राजी पन्त देशपाण्डे की पुत्री थीं। इनका असली नाम चिमनाबाई था। लेकिन वे अक्का के नाम से प्रसिद्ध थीं, जो परिवार मे बडी बहन को कहा जाता है। वे छाफल और पार्ली के मठों की प्रमुख थीं। उन्होने विपरीत परिस्थितियो मे तीस वर्ष तक मठों का प्रबन्धन किया जो उनकी योग्यता का प्रमाण है। उनकी कोई भी रचना प्राप्त नहीं है। अत उन्होने कितनी मात्रा मे रचना की यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है। उनकी मृत्यु १७२१ई० में हुई।

(२) कान्हूपात्रा

कान्हूपात्रा १५वीं शती मे हुई। ये पण्ढरपुर के समीप मगलवेद कस्बे की रहने वाली थीं। ये एक वेश्या श्यामा की पुत्री थीं। ये अतीव सुन्दरी थीं। इन्होंने मॉ के पेशे वेश्यावृत्ति के प्रति अरूचि प्रकट की। एक बार वारकरी सम्प्रदाय के लोग भजन गाते हुये मगलदेव से गुजर रहे थे, कान्हूपात्रा ने उनसे पूछा, तुम

लोग किसकी प्रशसा के गीत गा रहे हो उन्होने उत्तर दिया, "भगवान विट्ठल के" पुन प्रश्न करने पर कि क्या वे मुझे स्वीकार कर लेंगें, भक्तों ने कहा अवश्य। इस तरह कान्हूपात्रा उस समूह मे शामिल हो पण्ढर पुर पहुँच गई। भगवान विट्ठल के सम्मुख गायन एव नृत्य इनके नित्य का क्रम बन गया। उनके सौन्दर्य से प्रभावित हो बीदर के राजा ने अपने सिपाहियो को कान्हूपात्रा को लाने के लिये भेजा। कान्हूपात्रा विट्ठल के दर्शन करने गयीं और वही शरीर त्याग दिया। उपर्युक्त घटना उनकी निश्छल भक्ति की परिचायक है जिसे उन्होंने अपने वातावारण के प्रतिकूल विद्रोह करके प्राप्त किया था। उन्होंने विपुल मात्रा मे रचना की है, किन्तु उनकी सख्या निश्चित नहीं है क्योंकि वे कुछ ही मौखिक रूप मे प्राप्त हैं।

(३) कृष्णा बाई

ये सौराष्ट्र प्रदेश की रहने वाली नागर ब्राह्मण थीं। इनकी मुख्य कृति सीताजीनी कानचाली है, जो रामायण के एक उपाख्यान पर आधारित है। उन्होंने कृष्ण के जीवन से सम्बन्धित कुछ छोटी कवितायें भी लिखी है।

(४) गवरी बाई

ये भी नागर ब्राह्मण थीं एव डूँगरपुर की रहने वाली थीं। इनका जन्म सन् १७५९ मे हुआ था। पॉच या छ वर्ष की अवस्था में उनका विवाह हो गया था और वे शीघ्र ही विधवा हो गईं। तत्पश्चात् उन्होंने अपना मन शिक्षा एव भक्ति में लगाया। उन्होने बडी सख्या मे रचनायें कीं। उनकी ६५२ कविताओं की एक

पाण्डुलिपि है जिसमे से कुछ गीत प्रकाशित भी हुये हैं। उनकी रचनाओं से ऐसा प्रतीत होता है कि प्रारम्भ मे ये सगुणोपासक थीं एव बाद में निर्गुणोपासक बन गई। गुजरात की निर्गुणधारा की कवयित्रियों में वे उच्च स्थान की अधिकारिणी हैं।

(५) पुरी बाई

इनके जीवन के बारे मे कुछ ज्ञात नहीं है। उनकी एक कविता सीता मगल बहुत प्रसिद्ध है। गुजरात की कुछ जातियों में स्त्रियॉ इन्हें विवाह के समय गाती हैं।

(६) दिवाली बाई

ये बडौदा के निकट दभोई की रहने वाली थीं। ये जाति से ब्राह्मण थीं। इनके जन्म मरण की तिथियॉ अज्ञात हैं। १७८१ के भयानक दुर्भिक्ष में उनके पिता ने इनके पालन पोषण में स्वय को असमर्थ पाकर इन्हें एक सन्यासी को सौंप दिया। सन्यासी के द्वारा धार्मिक पुस्तकों के अध्यापन से इनमें भक्ति की प्रवृत्ति जाग्रत हुई। इन्होने राम के जीवन की विविध घटनाओं पर सैकडों छोटी कविताये लिखीं।

(७) राधाबाई

ये महाराष्ट्रीय ब्राह्मण थीं, जो बडौदा मे बस गई थीं। उनके जीवन के बारे मे कुछ भी ज्ञात नहीं है। वे एक पुण्यात्मा अवधूतानाथ की शिष्या थीं। इन्होने पर्याप्त मात्रा मे रचना की है जिसमे गुजराती, मराठी और हिन्दी का मिश्रण है।

(८) जानी बाई

जानी बाई शाक्त सम्प्रदाय की थीं। ये गुजरात मे शाक्त सम्प्रदाय के महान व्याख्याकार मिठू महाराज की शिष्या थीं। उन्होने नवनायिका दर्शन एव नाथ जी प्राकट्य नामक दो प्रसिद्ध कविताओं की रचना की। वे शाक्त सम्प्रदाय की रहस्यमयी शिक्षाओ और दार्शनिक मतों की अच्छी जानकार थीं। इनकी मृत्यु १८१२ मे हुई।

(९) संत सांई

ये गिरधर कविराय की पत्नी कही जाती हैं, किन्तु प्रमाण के अभाव मे इन्द्रामती की तरह इनका भी अस्तित्व सदिग्ध है, क्योकि कुछ लोग "साई" को गिरधर कविराय का उपनाम मानते हैं। "महिला मृदुबानी" तथा "स्त्री कवि कौमुदी" मे इन्हे गिरधर कविराय की पत्नी ही माना गया है। डा० सावित्री सिन्हा ने भी इन्हे गिरधर कविराय की पत्नी माना है। यदि साई वास्तव मे उपनाम न होकर गिरधर कविराय की पत्नी ही थीं तो नि सन्देह वे एक उच्चकोटि की नीति विषयक रचना करने वाली कवयित्री थीं। इनका एक पद मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियॉ मे उद्धृत है[1] जिसके आधार पर इन्हे सन्तमार्गी कह सकते हैं।

---

[1] मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियॉ पृ० २९४

साई जग मे योग करि, युक्ति न जाने कोय।

जब नारी गौने चली, चढी पालकी रोय।।

चढी पालकी रोय, न जाने कोई जी की।

रही सुरत तन छाय, सुछतियॉ अपने ही की।।

कहु गिरधर कविराय, अरे जनि होहु अनारी।

मुहॅ से कहे बनाय, पेट मे बिनवे नारी।।

सहायक पुस्तकें

सहायक पुस्तकें

क्रम स०	पुस्तके	लेखक
१	उत्तरी भारत की सत परम्परा	आ० परशुराम चतुर्वेदी
२	सस्कृति के चार अध्याय	रामधारी सिह दिनकर
३	ग्रेटविमन ऑफ इन्डिया	अद्वैत आश्रम अल्मोडा स प्रकाशित
४	कल्चरल हेरिटेज ऑफ इन्डिया	
५	मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य मे नारी भावना	डा० उषा पाण्डेय
६	मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियॉ	डा० सावित्री सिन्हा
७	सतकाव्य मे नारी	डा० कृष्णा गोस्वामी
८	सत बानी सग्रह	वेलविडियर प्रेस इलाहाबाद
९	चरण दास	डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित
१०	सत दादू और उनकी वाणी	स० राजेन्द्र कूमार एण्ड ब्रदर्स
११	ऋग्वेद	दयानन्द सस्थान दिल्ली
१२	यजुर्वेद	तदैव
१३	अथर्ववेद	तदैव
१४	सामवेद	तदैव
१५	मनुस्मृति	प० अयोध्या प्रसाद भार्गव (टीका)
१६	याज्ञवल्क्य स्मृति	प० भीमसेन शर्मा (टीका)
१७	मध्यकालीन हिन्दी सत विचार और साधना	केशनी प्रसाद चौरसिया
१८	सगुण एव निर्गुण हिन्दी साहित्य का तुल्नात्मक अध्ययन	डा० आशागुप्ता
१९	सत साहित्य की भूमिका	डा० राजदेव सिह
२०	मध्यकालीन भारतीय सभ्यता एव सस्कृति	दिनेश चन्द्र भारद्वाज
२१	मध्य कालीन भारतीय सस्कृति	दिनेश चन्द्र भारद्वाज
२२	भारत का इतिहास	रोमिला थापर
२३	मध्यकालीन भारत	हरिशकर शर्मा
२४	मध्यकालीन भारत	पी० डी० गुप्ता और एम०एल० शर्मा
२५	प्राचीन भारतीय सस्कृति कला राजनीति धर्म दर्शन	डॉ० ईश्वरी प्रसाद एव शैलेन्द्र शर्मा
२६	हिन्दी को मराठी सतो की देन	आ० विनयमोहन शर्मा
२७	हिन्दी साहित्य मे निर्गुणोपासिका कवयित्रियॉ	डा० आशा श्रीवास्तव

क्रम स०	पुस्तकें	लेखक
२८	भक्ति काल मे नारी	डा० गजानन शर्मा
२९	सहज प्रकाश	वेलविडियर प्रेस इलाहाबाद
३०	दयाबाई की बानी	वेलविडियर प्रेस इलाहाबाद
३१	मीराबाई	डा० राजेन्द्र प्रसाद मोहन भटनागर
३२	मीराबाई की पदावली	अ० परशुराम चतुर्वेदी
३३	लल्लेश्वरी वाक्यानि	लालदेद (राजानक भास्कराचार्य के सस्कृत पद्यानुवाद सहित)
३४	मध्यकालीन कवि और उनका काव्य	राजनाथ शर्मा
३५	मध्यकालीन भारत की सामाजिक अवस्था	अल्लामा अब्दुल्लाह युसुफ अली
३६	हिन्दी साहित्य का इतिहास	स० डा० नगेन्द्र
३७	हिन्दी साहित्य का इतिहास	रामचन्द्र शुक्ल
३८	हिन्दी साहित्य का इतिहास	लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय
३९	सूरदास	स० हरबस लाल शर्मा
४०	कबीर	स० विजयेन्द्र स्नातक
४१	सत पलटू दास और पलटू पथ	डा० राधाकृष्ण सिह
४२	मध्य कालीन सत साहित्य	डा० राम खेलावन पाण्डेय
४३	सत काव्य	आ० परशुराम चतुर्वेदी
४४	पलटू साहब की बानी	वेलविडियर प्रेस इलाहाबाद
४५	सत मत में साधना का स्वरूप	
४६	मध्यकालीन भारतीय सभ्यता एव सस्कृति	उ० श० मेहरा
४७	दादू दयाल की बानी	वेलविडियर प्रेस इलाहाबाद
४८	धरनीदास जी की बानी	वेलविडियर प्रेस, इलाहाबाद
४९	पोजीशन ऑफ विमेन इन हिन्दू सिविलाईजेशन	ए० एस० अल्टेकर
५०	मध्यकालीन धर्म साधना	हजारी प्रसाद
५१	आधुनिक हिन्दी काव्य की नारी भावना	डा० शैलकुमारी
५२	हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	डा० राम कुमार वर्मा
५३	सत सुधासार	वियोगी हरि
५४	भागवत सम्प्रदाय	बलदेव उपाध्याय
५५	रामचरित मानस	तुलसीदास
५६	कबीर ग्रन्थावली	माता प्रसाद गुप्त
५७	कबीर साखी सग्रह	वेलविडियर प्रेस, इलाहाबाद
५८	कबीर साहब की शब्दावली	वेलविडियर प्रेस, इलाहाबाद
५९	दूलनदास जी की वाणीं	वेलविडियर प्रेस इलाहाबाद

क्रम स०	पुस्तकें	लेखक
६०	घट रामायण	वेलविडियर प्रेस, इलाहाबाद
६१	गुलाल साहब की बानी	वेलविडियर प्रेस, इलाहाबाद
६२	दरिया साहब बिहार वाले के चुने हुये शब्द	वेलविडियर प्रेस, इलाहाबाद
६३	चरणदास जी की बानी	वेलविडियर प्रेस, इलाहाबाद
६४	जगजीवन साहब की बानी	वेलविडियर प्रेस, इलाहाबाद
६५	मलूक दास जी की बानी	वेलविडियर प्रेस, इलाहाबाद
६६	दरिया सागर	वेलविडियर प्रेस इलाहाबाद
६७	कवितावली	तुलसीदास
६८	हिन्दी नीतिकाव्य का विकास	डा० रामस्वरूप
६९	निर्गुण काव्य दर्शन	डा० सिद्धि नाथ तिवारी
७०	हिन्दी काव्य मे निर्गुण सम्प्रदाय	डा० पीताम्बर दत्त बडथ्वाल
७१	सुन्दर दास ग्रन्थावली	वे० प्रेस, इलाहाबाद
७२	सुन्दर विलास	वे० प्रेस, इलाहाबाद

पत्रिकायें

प्रबुद्ध भारत, अप्रैल ९६ अक	अग्रेजी भाषा मे कलकत्ता से प्रकाशित रामकृष्ण मिशन का मुखपत्र
प्रबुद्ध भारत, मई ९६ अक	तदैव
प्रबुद्ध भारत, जून ९६ अक	तदैव
प्रबुद्ध भारत, जुलाई ९६ अक	तदैव
प्रबुद्ध भारत, अगस्त ९६ अक	तदैव
विवेक ज्योति	राम कृष्ण मिशन, रायपुर
निबोधत, जनवरी ९७ अक	शारदामठ, दक्षिणेश्वर कलकत्ता से प्रकाशित बगला भाषा की पत्रिका
कल्याण, सत अक	गीता प्रेस गोरखपुर से प्रकाशित
कल्याण, नारी अक	गीता प्रेस गोरखपुर से प्रकाशित